दो शब्द

जैन साहित्य विशाल है। इस साहित्यका विपुल भाग अपभ्रंश और हिन्दी भाषामें लिखा गया है। अपभ्रंश भाषा हिन्दीकी जननी है। हिन्दीका विकास और विस्तार अपभ्रंशसे ही हुआ है। शैली एवं आकृतिगठनमें हिन्दी अपभ्रंश भाषाकी ऋणी है। हिन्दीमे महाकाव्यों का प्रणयन सस्कृत साहित्यके महाकाव्योंके आधारपर नहीं हुआ है, बल्कि अपभ्रंश भाषाके महाकाव्योंके आधारपर हुआ है। रामचरित-मानस और पद्मावत जैसे प्रसिद्ध काव्यग्रन्थोकी शैली अपभ्रंशकी है। देशीभाषामें भी जैन कवियोंने अनेक काव्यग्रन्थोका निर्माण किया है। इस भाषामे भी अनेक महाकाव्य, खण्डकाव्य और गीतिकाव्य लिखे गये है। अतः प्रत्येक निष्पक्ष जिज्ञासुके हृदयमें इतने विशाल साहित्यके जाननेकी इच्छा बराबर हुआ करती है।

साहित्यरत्नके विद्यार्थियोंको अध्यापन कराते समय मुझे अनेक आलोचनात्मक ग्रंथोंको देखनेका अवसर मिला। श्री डॉ॰ रामकुमार वर्मा, आचार्य शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे प्रसिद्ध इतिहास-कार और आलोचकोंने जैन साहित्यके विवेचनके समय केवल अपभ्रंश भाषामें निबद्ध साहित्यपर ही विचार किया है तथा यह विचार भी उपलब्ध अपभ्रंश साहित्यको देखते हुए अपर्याप्त ही है। हिन्दी जैन साहित्यके अमूल्य रत्नोंके अवलोकनका समय या अवसर हिन्दीके हमारे मान्य आलोचकोंको मिला ही नहीं, इसके कई कारण हैं—सबसे प्रबल एक कारण तो यह है कि हिन्दी जैन साहित्य अभी सर्वसाधारणके लिए उपलब्ध नही है। अधिकाश उच्चकोटिके ग्रन्थ अभी भी अप्रकाशित है। जो प्रकाशित भी है, वे भी सभीको उपलब्ध नहीं तथा उनकी छपाई-सफाई आदि बहुत प्राचीन एवं निम्नस्तरकी है, जिससे एक सुरुचि सम्पन्न पाठकको ऐसी पुस्तकें छूनेका भी साहस नहीं होता। अतः अधिकाश आलोचक जैन साहित्यके सम्बन्धमें यही लिखकर छोड़ देते हैं कि इस साहित्यका भाषाकी दृष्टिसे महत्त्व है, विचारोकी दृष्टिसे नहीं।

पर वास्तविकता इससे बहुत दूर है ; क्योंकि जैन साहित्यका भाषाकी दृष्टिसे उतना महत्त्व नहीं, जितना विचारोंकी दृष्टिसे है । इस साहित्यमें मानवताको अनुप्राणित करनेवाली भावनाओंकी प्रचुरता है । ससारके किसी भी साहित्यके समक्ष इस साहित्यको तुलनाके लिए प्रस्तुत किया जा सकता है । नवरसमयी हृदयको आन्दोलित करनेवाली पिच्छिल रसधारा इस साहित्यमें विद्यमान है । शब्द और अर्थकी नवीनता, शब्दों के सुन्दर विन्यास, भावोंका समुचित निर्वाह, कल्पनाकी ऊँची उड़ान, मानवके अन्तरंग और बहिरगका सजीव विश्लेषण इस साहित्यमें सर्वत्र मिलेगा। अतः हृदयमें एक भावना उत्पन्न हुई कि कतिपय हिन्दी जैन ग्रन्थोंका अध्ययन कर एक अनुशीलन प्रस्तुत किया जाय। यद्यपि हिन्दी भाषामें निबद्ध जैन साहित्य विशाल है, उसका सागोपाग अनुशीलन प्रस्तुत करना, तनिक कठिन है, तो भी इस प्रयासमे लब्धप्रतिष्ठ कवियों एवं लेखकोंकी प्रमुख रचनाओंका परिशीलन उपस्थित करनेका आयास किया गया है ।

अपभ्रंश भाषाका साहित्य इतना विशाल है कि इस साहित्यपर एक बृहत्काय अनुशीलनात्मक ग्रन्थ लिखना आवश्यक है, अतएव प्रस्तुत परिशीलनमें इस भाषाकी दो-एक रचनाएँ ही ली गई हैं। मैंने अपनी रुचिके अनुसार महाकवि स्वयम्भूदेव, पुष्पदन्त, बनारसीदास, भैया भगवतीदास, भूधरदास, द्यानतराय, दौलतराम, वृन्दावन प्रभृति प्राचीन हिन्दी जैन कवियों एव अनूपशर्मा, धन्यकुमार सुधेश, बालचन्द्र एम. ए. आदि नवीन कवियोंकी उन्हीं रचनाओंका परिशीलन प्रस्तुत किया है, जो मुझे रुचिकर हुई हैं ।

यह परिशीलन दो भागोंमें प्रकाशित हो रहा है। प्रथम भागमें प्राचीन कवियोंकी काव्य रचनाओंका परिशीलन है तथा इस परिशीलन में भी सभी प्राचीन कवियोंकी रचनाएँ नहीं भी आ सकी है । रचनाओं का निर्वाचन मैंने किसी क्रमसे नहीं किया है और न रचनाओंके मान-दण्डको ही प्रधानता दी है । जो ग्रन्थ मेरे अध्ययनका विषय रहा है तथा किसी भी कारणसे जो मुझे प्रिय है, उसीका परिशीलन उपस्थित किया

गया है। अतः बहुत संभव है कि श्रेष्ठ रचनाएँ छूट भी गयी हों और निम्न कोटिकी रचनाओंको स्थान मिल गया हो।

मेरी इच्छा इस परिशीलनमें कवि और उनकी रचनाओंके सम्बन्धमें ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत करने की थीं, किन्तु जिन दिनों इस परिशीलनको तैयार कर रहा था, उन दिनो श्री बाबू कामताप्रसादजीका 'हिन्दी जैन साहित्यका सक्षिप्त इतिहास' प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तककी ऐतिहासिक भूलोंपर जैन आलोचकोंकी रोष-चिनगारियाँ उद्‌बुद्ध हो रही थीं, अतएव ऐतिहासिक क्षेत्रमे कदम बढ़ानेका साहस नहीं हुआ। भूल होना स्वाभाविक बात है, अतः प्रत्येक मनुष्य अपूर्ण है। आलोचकोंका कर्त्तव्य है कि सहिष्णुतापूर्वक आलोचना करते हुए भूलोंकी ओर संकेत करें। उन आलोचनाओंको देखकर मुझे ऐसा लगा कि कतिपय लब्धप्रतिष्ठ प्राचीन लेखक नवीन लेखकोंको इस क्षेत्रमें आया हुआ देखकर असहिष्णु हो उठते हैं और सहानुभूति एव सहृदयतापूर्वक आलोचना न कर तीव्र रोष और क्षोभ दिखलाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि आज जैन साहित्यपर आलोचना-प्रत्यालोचनात्मक ग्रन्थोंका प्रायः अभाव है। नवीन लेखकोंको कहींसे भी प्रोत्साहन नहीं मिलता, बल्कि निराशा ही मिलती है। कतिपय ग्रन्थमालाओंसे उन्हीं विद्वानोंके ग्रन्थ प्रकाशित होते है, जो उनसे सम्बद्ध हैं या उन सम्बद्ध विद्वानोंके मित्र है। कहनेके लिए सभाओंमें हमारे मान्य आचार्य बहुत कुछ कह जाते हैं, पर वे अपने हृदयको टटोलें कि सत्य क्या है? यदि ख्यातनामा विद्वान् प्रोत्साहन दे और नवीन लेखकोंका मार्ग प्रदर्शन करें तो जैन साहित्यपर बेजोड़ कृतियाँ शीघ्र ही प्रकाशमे आ सकती हैं। अस्तु,

परिशीलन शब्द परि उपसर्ग पूर्वक शील धातुसे भाव अर्थमे ल्युट् प्रत्यय करनेपर बनता है, जिसका अर्थ होता है सभी दृष्टियोंसे आलोडन-विलोडन कर अध्ययन प्रस्तुत करना। उपर्युक्त अर्थकी दृष्टिसे तो इस कृतिका नाम सार्थक नहीं है, यतः समस्त दृष्टिकोणोंसे रचनाओंका शीलन नहीं किया गया है, पर इस शब्दका व्यावहारिक और प्रचलित अर्थ यह भी लिया जाता है कि शास्त्रीय दृष्टिसे रचनाओंका विश्लेषण करना। मेरी दृष्टि प्रधानतः यह रही है कि परिशीलित रचनाओंका कथानक भी अवश्य दिया जाय। क्योंकि जैन साहित्यकी अधिकाश कथाएँ इस प्रकारकी हैं, जिनका आधार लेकर श्रेष्ठतम नवीन काव्य लिखे जा सकते है। अतएव आलोचनाके साथ कथावस्तु देनेकी चेष्टा की गयी है।

इस परिशीलनके तैयार करनेमें वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध श्री पं० नाथूरामजी प्रेमीसे मुझे पर्याप्त सहयोग मिला है। आपने एकवार इसे आद्योपान्त देखा तथा अपने बहुमूल्य सुझाव उपस्थित किये, इसके लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। नींवकी ईंटकी तरह समस्त भार वहन करनेवाले श्री पं० अयोध्याप्रसादजी गोयलीयका आभार प्रकट करनेके लिए मेरे पास शब्द नहीं। आप एकवार आरा पधारे थे, मैंने उस समय इस कृतिके कुछ अंश पढ़कर आपको सुनाये। आपने मेरी पीठ ठोकी, फलतः आपके द्वारा प्राप्त उत्साहसे यह रचना कुछ ही समयमें तैयार हो गयी। इस कृतिको परिष्कृत रूप देनेका श्रेय लोकोदय ग्रन्थमालाके सुयोग्य सम्पादक श्री बाबू लक्ष्मीचन्द्रजी जैन एम०ए० को है, आपने इसे संक्षिप्त रूप देकर एक कुशल मालीका कार्य किया है। अन्यथा इस कृतिके पाँच-पाँच सौ पृष्ठके दो भाग होते। प्रेस-कापी तैयार करनेमें श्रीजैन बालाविश्राम आराकी साहित्य विभागकी छात्राओं, वहाँके शिक्षक श्री पं० माधवराम शास्त्री और अपने भतीजे आयुष्मान् श्रीराम तिवारीसे भी पर्याप्त सहयोग मिला है। परामर्श प्राप्त करनेमें पूज्य भाई प्रो० खुशालचन्द्रजी गोरावाला एम० ए०, साहित्याचार्य, मित्रवर बनारसीप्रसाद 'भोजपुरी', प्रो० रामेश्वरनाथ तिवारीसे भी समय-समयपर सहयोग प्राप्त होता रहा है।

भारतीय ज्ञानपीठ काशीके अधिकारी एवं प्रूफसंशोधनमें सहायक श्री चतुर्वेदीजीका भी हृदयसे आभारी हूँ। समस्त ग्रन्थोंकी प्राप्ति जैन-सिद्धान्तभवन आराके ग्रन्थागारसे हुए, अतः उस पावन-संस्थाके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ। अन्तमें समस्त सहायक महानुभावोंके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ।

जैनसिद्धान्त भवन, आरा
२ फरवरी ५६ } —नेमिचन्द्र शास्त्री

विषय-सूची

प्रथमाध्याय

द्वितीयाध्याय

तृतीयाध्याय

चतुर्थाध्याय

पञ्चमाध्याय

छठवाँ अध्याय

सातवाँ अध्याय

हिन्दी-जैन-साहित्य-परिशीलन

•

प्रथमाध्याय

हिन्दी-जैन-साहित्यका प्रादुर्भाव

प्राचीन परम्परामे साहित्यको सनातन सत्यकी उपलब्धिका साधन माना है। इसीलिए कतिपय मनीषियोंने "आत्म तथा अनात्म भावनाओंकी भव्य अभिव्यक्तिको साहित्य कहा है। यह साहित्य किसी देश, समाज या व्यक्तिका सामयिक समर्थक नहीं, बल्कि सार्वदेशिक और सार्वकालिक नियमोसे प्रभावित होता है। मानवमात्रकी इच्छाएँ, विचार-धाराएँ और कामनाएँ साहित्यकी स्थायी सम्पत्ति हैं। इसमे हमारे वैयक्तिक हृदय-की भाँति सुख-दुःख, आशा-निराशा, भय-निर्भयता एव हास्य-रोदनका स्पष्ट स्पन्दन रहता है" आन्तरिक रूपसे विश्वके समस्त साहित्योमे भावो, विचारो और आदर्शोंका सनातन साम्य-सा है; क्योंकि आन्तरिक भाव-धारा और जीवन-मरणकी समस्या एक है। प्राकृतिक रहस्योंसे चकित होना तथा प्राकृतिक सौन्दर्यको देखकर पुलकित होना मानवमात्रके लिए समान है। अतएव साहित्यमे साधना और अनुभूतिके समन्वयसे समाज और ससारसे ऊपर सत्य और सौन्दर्यका चिरन्तन रूप पाया जाता है। इसीकारण साहित्यकार चाहे वह किसी भी जाति, समाज, देश और धर्मका हो अनुभूतिका भाण्डार समान रूपसे ही अर्जित करता है। वह सत्य और सौन्दर्यकी तहमें प्रविष्ट हो अपने मानससे भावराशिरूपी मुक्ताओंको चुन-चुनकर शब्दावलीकी लड़ीमे शिवकी साधना करता है।

सौन्दर्य-पिपासा मानवकी चिरन्तन प्रवृत्ति है। जीवनकी नश्वरता और अपूर्णताकी अनुभूति सभी करते है, सभी इसका मर्म जाननेके लिए उत्सुक रहते हैं, इसी कारण साहित्य अनुभूतिकी प्राचीपर उदय लेता है। मानवके भीतर चेतनाका एक गूढ़ और प्रबल आवेग है, अनुभूति इसी आवेगकी, सच्ची, सजीव और साकार लहर है। इस अनुभूतिके लिए

व्यक्ति, धर्म, जाति, समाज और देशका तनिक भी बन्धन अपेक्षित नही। इसी कारण मनीषियोने आत्म-दर्शनको ही साहित्यका दर्शन माना है, अपनेमें जो आभ्यन्तरिक सत्य है, उसे देखना और दिखलाना साहित्यकारकी चरम साधना है।

जैन-साहित्य-स्रष्टाओने अखण्ड चैतन्य आनन्दरूप आत्माका ही अपने अन्तस्में साक्षात्कार किया और साहित्यमे उसीकी अनुभूतिको मूर्त्त रूप प्रदान कर सौन्दर्यके शाश्वत प्रकाशकी रेखाओ-द्वारा वाणीका चित्र अकित किया। इन्होने अपनी अनुभूतिको आत्म-साधनाका विषय बनाकर चिरन्तन मगल-प्रभातका दर्शन किया। इन्होंने आभ्यन्तरिक धरातलमे अंकुरित अशान्ति एवं असन्तोषका उपचार ऊपरी सतहपर लगे दोषोंके परिमार्जनसे न कर प्रस्फुटित अनुभूतिके झरनेमे मज्जन कर, किया।

परम्परा

जैन-साहित्यकारोने अधूरी और अपूर्ण मानवताके मध्यमे उस सक्रान्ति एवं उथल-पुथलके युगमें, जब कि भारतकी राजनीतिक, सास्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ प्रबल वेगके साथ परिवर्तित होती जा रही थीं, खडे होकर पूर्ण मानवका आदर्श प्रस्तुत किया। जैनाचार्य आरम्भसे ही लोक-भाषामे मानवताका पाठ पढाते आ रहे है। भगवान् महावीरका उपदेश भी उस कालकी सार्वजनीन अर्धमागधी भाषामें हुआ था। अतः सातवी-आठवीं शतीमें जैन-लेखकोने प्राकृत और सस्कृतका पल्ला छोड प्रताड़ित और बिखरी हुई मानवताको तत्कालीन लोक-प्रचलित अपभ्रश भाषामे सुरक्षित रखनेका प्रयास किया।

नवीं शतीमें जन-साधारणकी भाषा बन जानेके कारण अपभ्र शका प्रचार हिमालयकी तराईसे गोदावरी और सिन्धसे ब्रह्मपुत्र तक था। यह जीवट और भाव-प्रवणमें सक्षम भाषा थी, अतः जैनाचार्योंने मानवके आदर्शोंके प्रचारके लिए तथा मूर्छित मानवताको सचेतन बनानेके लिए इस भाषामें प्रभूत साहित्य रचा। स्तोत्र-काव्य, कथा-काव्य, महाकाव्य

और खण्डकाव्य जैन-लेखकों-द्वारा विरचित इस भाषामे पाये जाते है। शृंगार, वीर और नीतिकी स्फुट रचनाऍ भी इस भाषामे बड़ी मार्मिक और गम्भीर मिलती हैं। स्वयम्भू कविने (८-१०वी शती) 'हरिवंशपुराण' और 'पउमचरिउ' की रचना की, पश्चात् इनके पुत्र त्रिभुवनने पिताके अधूरे कार्यको पूरा किया। इसी शताब्दीमे धनपालने 'भविसयत्तकहा' और महाकवि धवलने 'हरिवंशपुराण' की रचना की। ग्यारहवीं शतीमें पुष्पदन्त कविने 'महापुराण', श्रीचन्द मुनिने 'कथाकोष', सागरदत्तने 'जम्बूस्वामीचरित' और 'आराधनाकथाकोष' की रचना की। अभयदेव सूरिका 'जयतिभुवन गाथास्तोत्र', देवचन्द्रका 'सुलसाख्यान' और 'शान्तिनाथचरित', वर्द्धमान सूरिका 'वर्द्धमानचरित', अब्दुल रहमानका 'सन्देश रासक' और धाहिड़ कविका 'पद्मिनी चरित' बारहवी शतीकी प्रमुख अपभ्रंश रचनाऍ हैं। हेमचन्द्रके पश्चात् तेरहवी शतीमे योगचन्द्रने 'योगसार' और 'परमात्मप्रकाश' तथा माइल्लधवलने 'नयचक्र' लिखा। अपभ्रंशकी ये रचनाऍ पुरानी हिन्दीके बहुत निकट है।

अपभ्रंश और पुरानी हिन्दीके जैन-कवियोंने लोक-प्रचलित कहानियोंको लेकर उनमे स्वेच्छानुसार परिवर्तन करके सुन्दर काव्य लिखे। मध्यकालके आरम्भमे समाज और धर्म संकीर्ण हो रहे थे, अतः जैन-लेखकोने अपने पुरातन कथानकों और लोकप्रिय परिचित कथानकोमे जैनधर्मका पुट देकर अपने सिद्धान्तोके अनुकूल उपस्थित किया तथा पञ्चनमस्कार फल या किसी व्रतसे सम्बद्ध दृष्टान्त प्रस्तुत कर जनताके हृदय-पटलपर मानवोचित गुण अंकित किये।

बाहरी वेश-भूषा, पाखण्ड आदिका—जिनसे समाज विकृत होता जा रहा था—बड़ी ही ओजस्वी वाणीमे जैन-साहित्यकारोने निराकरण किया। मुनि रामसिंहने भेषकी व्यर्थता दिखलानेके लिए उसे सॉपकी केंचुलीकी उपमा दी है। ऊपरी आवरणको छोड देनेपर सॉप नवीन आवरण धारण करता है, पर विष उसका ज्यों-का-त्यो बना रहता है।

इसी तरह वेश बदल साधु हो जानेसे मनुष्य शुद्ध नही हो सकता, इसके लिए भोग-प्रवृत्तिका त्याग करना परम आवश्यक है।

चौदहवी और पन्द्रहवी शताब्दीमे जैन-कवियोने व्रज और राजस्थानी भाषामे रासा ग्रन्थोकी रचना की। गौतम रासा, सप्तक्षेत्ररासा एवं संघपति समरा रासा आदिमे अहिंसातत्त्वके कथानको-द्वारा सुन्दर अभिव्यञ्जना की गयी है। सोलहवीं शताब्दीमे ब्रह्म जिनदास कवि हुए, जिन्होंने मानवता-की प्रतिष्ठा करनेवाली 'आदिनाथपुराण' 'श्रेणिकचरित' आदि कई रचनाएँ लिखी। वास्तवमे इनसे ही प्रादेशिक भाषामे काव्य-रचनाका आरम्भ होता है। सत्रहवी शताब्दीमें महाकवि बनारसीदास, रूपचन्द और हेमविजय आदि अनेक कवि हुए, जिन्होने राजस्थानी और व्रज-भाषामें गद्य-पद्यात्मक रचनाएँ लिखीं।

इस प्रकार सातवी शतीसे आजतक जैन-हिन्दी-साहित्यकी धारा मानव जीवनकी विभिन्न समस्याओका समाधान करती हुई अपनी सरसता और सरलताके कारण गृहस्थ जीवनके अति निकट आयी। इस धाराका सन्त कवियोपर गहरा प्रभाव पड़ा; जिस प्रकार जैन-कवियोने घरेलू जीवन-के दृश्य लेकर अपने उपदेश और सिद्धान्तोका जन-साधारणमें प्रचार किया, उसी प्रकार सन्त-कवियोने भी। अहिंसा सिद्धान्तकी अभिव्यक्ति करनेवाले लोक-जीवनके स्वाभाविक चित्र जैन-साहित्यमें उपलब्ध हैं; इस साहित्यमे सुन्दर, आत्मपीयूष रस छल-छलाता है। धर्मविशेषका साहित्य होते हुए भी उदारताकी कमी नही है। आत्मस्वातन्त्र्य प्रत्येक व्यक्तिके लिए अभीष्ट है। प्रत्येक मानव स्वावलम्बी बनना चाहता है और चाहता है उद्घाटित करना आत्मानुभूति-द्वारा अपने भीतरके तिरोहित देवांशको।

दार्शनिक आधार

हिन्दी जैन-साहित्यकी भित्ति जैन-दर्शनपर आश्रित है। इसी कारण जैन-साहित्यकारोंने विलास और शृङ्गारसे दूर हटकर आत्मसमर्पण और उत्सर्गकी भावनाका अंकन किया है। अतएव शृगार-रसका

वर्णन अल्प परिमाणमे हुआ है। नायिकाके यौवन, रूप, गुण, शील, प्रेम, कुल, वैभव और आभूषणोका निरूपण न्यूनतम मात्रामे उपलब्ध है। यह बात नहीं कि हिन्दी-जैन-साहित्यमे अज्ञातयौवनाका भोलापन, ज्ञातयौवनाका मानसिक विश्लेषण, नवोढाकी लज्जाकी ललाई, प्रौढ़ाका आनन्द-संमोहन, विदग्धाका चातुर्य्य, मुदिताकी उमग, प्रोषितपतिकाकी मिलनोत्कण्ठा, प्रवत्स्यत्पतिकाकी बेचैनी, आगमिष्यत्पतिकाकी अधीरता, खण्डिताका कोप एव कलहान्तरिताका प्रेमाधिक्यजन्य कलहका चित्रण नहीं है, पर प्रधानतया इसमे मानवकी उन भावना और अनुभूतियोको पृष्ठाधार रूपमे स्वीकार किया गया है, जिनपर मानवता अव-लम्बित है।

दार्शनिक पृष्ठभूमि

हिन्दी जैन-साहित्यके मूलाधारभूत जैन-दर्शनके मुख्य दो भाग है—एक तत्त्वचिन्तनका और दूसरा जीवन-शोधनका। 'जगत्, जीव और ईश्वरके स्वरूप-चिन्तनसे ही तत्त्वज्ञानकी पूर्णता नहीं होती है, किन्तु इसमें जीवन-शोधनकी मीमासाका भी अन्तर्भाव करना पडता है। जैन-मान्यतामे जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व माने गये हैं। इनके स्वरूपका मनन, चिन्तनकर आत्मकल्याणकारी तत्त्वोंमें प्रवृत्ति करना जैन-तत्त्वज्ञानका एक पहलू है। उक्त सातो तत्त्वोंमें जीव और अजीव ये दो मुख्य तत्त्व हैं। सच्चिदानन्द मय आत्मा या जीव ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुणोंका अक्षय भाण्डार है। यह अखण्ड, अमूर्त्तिक पदार्थ है, जो न शरीरसे बाहर व्याप्त है और न शरीरके किसी विशेष भागमें केन्द्रित है, किन्तु मनुष्यके समग्र शरीरमे व्याप्त है।

आत्माऐं अनेक है, सबका स्वतन्त्र अस्तित्व है। कर्म-अजीव (पुद्गल) के सम्बन्धके कारण ससारी आत्माऐं अशुद्ध है, राग-द्वेषसे विकृत हैं; जब कर्म-बन्धन हट जाता है, तब कोई भी आत्मा शुद्ध हो जाती है। वह शुद्ध आत्मा ही ईश्वर या मुक्त कहलाती है। प्रत्येक आत्मामे ईश्वर बननेकी

योग्यता विद्यमान है; अपने पुरुषार्थकी हीनाधिकताके कारण आत्माएँ भिखारी या भगवान् बननेकी ओर अग्रसर होती है।

आत्माकी शुद्धिके लिए राग-द्वेषको हटाना आवश्यक है तथा राग-द्वेषको हटानेके लिए दृढ़तर प्रयत्न करना ही पुरुषार्थ है। यह पुरुषार्थ प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गों-द्वारा सम्पन्न किया जाता है। प्रवृत्ति-मार्ग कर्म-बन्धका कारण है और निवृत्ति-मार्ग अबन्धका। यदि प्रवृत्ति-मार्गको घूम-घुमावदार गोलघर माना जाय, जिसमे कुछ समयके पश्चात् गमन स्थान पर इधर-उधर दौड़ लगानेके अनन्तर पुनः आ जाना पडता है, तो निवृत्ति-मार्गको पक्की सीधी ककरीली सीमेंटकी सडक कहा जा सकता है, जिसमें गन्तव्य स्थानपर पहुँचना सुनिश्चित है, पर गमन करना कष्टसाध्य है। जैन-दर्शन निवृत्ति-प्रधान है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय ही निवृत्ति-मार्ग है। जीवादि सातों तत्त्वोकी सच्ची श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन, इन तत्त्वोंका सच्चा ज्ञान सम्यग्ज्ञान और आत्मतत्त्वको प्राप्त करनेका सम्यक् आचरण ही सम्यक्चारित्र कहलाता है। इस मार्गपर आरूढ़ होनेसे ही जन्म-मरणका दुःख दूर हो निःश्रेयस् या मोक्षकी प्राप्ति होती है।

जैन-दर्शनमें आत्माकी तीन अवस्थाएँ मानी गयी हैं—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। जब अज्ञान और मोहकी प्रबलताके कारण आत्मा वास्तविक तत्त्वका विचार न कर सके तथा कल्याणकी दिशामें बिल्कुल न बढ़ सके, बहिरात्मा कही जाती है। जब सच्चा विश्वास उत्पन्न हो जाता है, विवेकशक्तिके जागृत होनेसे राग-द्वेषके सस्कार क्षीण होने लगते हैं, तब अन्तरात्मा कही जाती है और आत्मिक शक्तिको आच्छादित करनेवाले कारणोंके क्षीण हो जानेपर परमात्मा अवस्थाका प्रादुर्भाव होता है। आत्माकी ये तीनो अवस्थाएँ रत्नत्रयके अभाव, प्रादुर्भाव और विकासके कारण होती हैं। निष्कर्ष यह है कि जब तक रत्नत्रयकी उत्पत्ति नहीं होती, आत्मा अपने स्वरूपको भूलकर अन्यथा रूपसे प्रवृत्त होती है। रत्नत्रयका

प्रादुर्भाव हो जानेपर आत्मा स्वोन्मुखरूपसे प्रवृत्त करती है, जिससे राग-द्वेषके सस्कार शिथिल और क्षीण होने लगते है तथा रत्नत्रयके परिपूर्ण होनेपर आत्मा परमात्मा अवस्थाको प्राप्त हो जाती है। अतः आत्म-शोधनमें सम्यक् श्रद्धा और सम्यग्ज्ञानके साथ सदाचारका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

जैन-सदाचार अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप है। इन पॉचो व्रतोमे अहिंसाका विशेष स्थान है, अवशेष चारो अहिंसाके विभिन्न रूप हैं। कषाय और प्रमाद—असावधानीसे किसी जीवको कष्ट पहुँचाना या प्राणघात करना हिंसा है, इस हिंसाको न करना अहिसा है। मूलतः हिसाके दो भेद है—द्रव्यहिसा और भावहिसा। किसीको मारने या सतानेके भाव होना भावहिंसा और किसीको मारना या सताना द्रव्यहिसा है। भावोंके कलुषित होनेपर प्राणघातके अभावमें भी हिंसा-दोष लगता है।

अहिसाकी सीमा गृहस्थ और मुनि—साधुकी दृष्टिसे भिन्न-भिन्न है। गृहस्थकी हिसा चार प्रकारकी होती है—संकल्पी, आरम्भी, उद्योगी और विरोधी। विना अपराधके जान-बूझकर किसी जीवका वध करना सकल्पी हिंसा है। इसका दूसरा नाम आक्रमणात्मक हिसा भी है। प्रत्येक गृहस्थ-को इस हिसाका त्याग करना आवश्यक है। सावधानी रखते हुए भी भोजन बनाने, जल भरने, कूटने-पीसने आदि आरम्भ-जनित कार्योंमें होनेवाली हिंसा आरम्भी; जीवन-निर्वाहके लिए खेती, व्यापार, शिल्प आदि कार्योमे होनेवाली हिंसा उद्योगी एवं अपनी या परकी रक्षाके लिए होने-वाली हिसा विरोधी कही जाती है। ये तीनों प्रकारकी हिंसाएँ रक्षणात्मक हैं। इनका भी यथाशक्ति त्याग करना साधकके लिए आवश्यक है। 'स्वयं जियो और अन्यको जीने दो' इस सिद्धान्त वाक्यका सदा पालन करना सुख-शान्तिका कारण है। राग, द्वेष, घृणा, मोह, ईर्ष्या आदि विकार हिंसामें परिगणित है।

जैनधर्मके प्रवर्तकोने विचारोको अहिसक बनानेके लिए स्याद्वाद-विचार समन्वयका निरूपण किया है। यह सिद्धात आपसी मतभेद अथवा पक्षपात-

पूर्ण नीतिका उन्मूलन कर अनेकतामे एकता, विचारोमे उदारता एव सहिष्णुता उत्पन्न करता है। यह विचार और कथनको संकुचित, हठ एव पक्षपातपूर्ण न बनाकर उदार, निष्पक्ष और विशाल बनाता है। वस्तुतः जीवन अहिंसक तभी बन सकता है, जब आचार और विचार दोनो अहिंसक हो जायें। पूर्ण अहिसक ही राग-द्वेष और कर्म-बन्धनका ध्वंसकर मोक्ष या निर्वाणको प्राप्त करता है। मानव-जीवनका चरम लक्ष्य निर्वाण या मोक्षको प्राप्त करना ही है।

इस सक्षिप्त दार्शनिक विवेचनके प्रकाशमें हिन्दी-जैन-साहित्यकी पृष्ठ-भूमिकी निम्न भावनाऍ है :—

सम्यग्दर्शन जन्य—

१—अपनेको स्वयं अपना भाग्यविधाता समझकर परोक्ष शक्ति—ईश्वरादि शक्ति सुख-दुःख देनेवाली है, विश्वासको छोड़ पुरुषार्थमें प्रवृत्त होना।

२—आत्माके अस्तित्वका विश्वासकर मन-वचन-कायके अपने प्रत्येक क्रिया-व्यापारको अहिंसक बनाना।

३—अपने पुरुषार्थपर विश्वासकर सर्वतोमुखी विशाल दृष्टि प्राप्त करना।

४—राग-द्वेषादि सस्कार अनात्मभाव है, यह विश्वास उत्पन्न करना।

सम्यग्ज्ञान जन्य—

१—वैयक्तिक विकासके लिए हृदयकी वृत्तियोसे उत्पन्न अनुभूतियोको विचारके लिए बुद्धिके समक्ष उत्पन्न करना और बुद्धि-द्वारा निर्णय हो जानेपर कार्यमें प्रवृत्त हो जाना।

२—विरोधी विचार सुनकर घबड़ाना नहीं, अपने विचारोके समान अन्यके विचारोका भी आदर करना तथा अपने विचारोपर भी तीव्र आलोचनात्मक दृष्टि रखना।

३—मिथ्याभिमान छोड़कर उदारतापूर्वक विचार-सहिष्णु बनना तथा अपनी भूलको सहर्ष स्वीकार करना।

४—तत्त्वज्ञानके चिन्तन-द्वारा अहंभावका इदंभावके साथ सामञ्जस्य प्रकट करना।

सम्यक्चारित्र जन्य—

१—निर्भय और निर्वैर होकर शान्तिके साथ जीना और दूसरोंको जीवित रहने देना।

२—अहिंसा और संयमके समन्वय-द्वारा अपनी विशाल और उदार-दृष्टिसे विश्वबन्धुत्वकी भावनाको जागृत करना।

३—वासना, इच्छा और कामनाओंपर नियन्त्रण करना तथा आत्मालोचनमें प्रवृत्त होना।

४—दया, ममता, करुणा आदिके उद्घाटन-द्वारा मानवताको प्रतिष्ठित करना।

५—भौतिकवादकी मृगमरीचिकाको अध्यात्मवादकी वास्तविकता-द्वारा दूर करना।

६—शोषित और शोषकमें समता लानेके लिए अपरिग्रहवाद और संयमको जीवनमें उतारना।

७—शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके लिए शुद्ध आहार-विहार करना।

पुरातन काव्य-साहित्य

[८वीं शतीसे १९वीं शतीतक]

अपभ्रंश भाषाकी उत्पत्ति पाँचवीं शतीमें हुई थी और छठवीं शतीमें यह देशी भाषाका रूप ग्रहण कर चुकी थी। अतः छठवीं शतीसे ग्यारहवीं शतीतक इस भाषामें पुष्कल परिमाणमें साहित्यका सृजन होता रहा। आगे चलकर इसी भाषाने हिन्दी-भाषी प्रान्तोंमें हिन्दीका रूप और अन्य भाषा-भाषी प्रान्तोंमें मराठी, गुजराती आदि भाषाओंका रूप धारण किया।

जैन-कलाकारोने मध्यकालमे इसी देशी भाषाका आधार लेकर अपने आन्तरिक भावोकी अधिक-से-अधिक स्पष्ट, मनोरजक और प्रभावपूर्ण ढगसे अभिव्यञ्जना की। जीवनका चिरन्तन सत्य, मानव कल्याणकी प्रेरणा एव सौन्दर्यकी अनुभूतिको अनुपम, मधुर देशी भाषामे ही प्रकट करना अधिक उपादेय समझा गया। अतः प्रस्तुत प्रकरणमे देशी भाषा—अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी, व्रजभाषा और राजस्थानीके काव्य साहित्यकी विवेचना की जायगी।

लोक-भाषा होनेके कारण देशी भाषामे आरम्भमें गीत ही रचे गये। इन गीतोमे जन-साधारणकी भावनाएँ अभिव्यञ्जित हुई है। सर्वसाधारणके सुख-दुःख, हर्ष-विषाद और हास-विलास इनके वर्ण्य विषय थे। भावनाओकी सघनताकी अभिव्यञ्जना होनेके कारण इन गीतोके लिए छन्दके बन्धनोंकी आवश्यकता नही थी। ८-९वी शतीमे भक्ति, प्रेम, वीरता, करुणा, हास्य आदिकी अभिव्यक्तिके लिए दोहा, चौपाई, कडावक, घत्ता, छप्पय, रोला आदि मात्रा-वृत्तोंका भी देशी भाषामे प्रयोग होने लगा, फलस्वरूप इस भाषामे प्रबन्ध काव्योका आविर्भाव हुआ।

जैन-हिन्दी-साहित्यमे प्रबन्ध काव्यकी धारा आठवीं शतीसे ही प्रवाहित हुई और अबतक प्रवाहित हो रही है। इसका कारण यह है कि हिन्दी-जैन-कवियोंने प्राचीन कथाओंको लेकर ही अपने काव्यभवनका निर्माण किया है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती और नारायण आदि महान् व्यक्तियोके सरस और हृदयग्राही जीवनाकन-द्वारा दिव्य और चिरन्तन सौन्दर्यको प्रकाशित करना उन्होने सरल तथा मानवताके कल्याणके लिए उपादेय समझा। हिन्दी-जैन-प्रबन्ध-साहित्यकी उषाने मध्यकालमे जनसाधारणके सर्वाङ्गीण जीवन-क्षितिजको आनन्द-विभोर बना दिया, जिससे जीवनका कोना-कोना आलोकित हो उठा।

हिन्दी-जैन-प्रबन्ध काव्य

प्रबन्ध-काव्यमे इतिवृत्त, वस्तुव्यापारवर्णन, भावव्यञ्जना और सवाद ये चार अवयव होते है। कथामे पूर्वापर क्रमबद्धताका रहना तो अनिवार्य

है ही, इसके विना कोई काव्य प्रबन्ध कोटिमे नही आ सकता है। देशी भाषा और पुरानी हिन्दीमें जैन-प्रबन्ध-काव्योंकी भरमार है। व्रजभाषा और राजस्थानी, ढूढारी भाषामें भी कतिपय सुन्दर जैन-प्रबन्ध-काव्य हैं।

देशी भाषा के जैन प्रबन्ध-काव्य

अपभ्रंश भाषामे 'पउमचरिउ—रामायण, हरिवंशचरित—कृष्ण-चरित, रिट्ठनेमिचरिउ, भविसयत्तकहा, तिसट्ठिमहापुरिसगुणालकार और वैरसामिचरिउ प्रमुख है। प्रबन्ध-काव्यकी सफलता कथाकी पूर्वापरक्रमबद्धताके साथ उसके मर्मस्थलोंकी पहिचानपर निर्भर है। जो कथाके मर्मस्थलोंकी परख रखता है, उसे प्रबन्ध-काव्यके सृजनमें पूर्ण सफलता प्राप्त होती है। देशी भाषाके जैन कवियोंने कुटुम्बियोके विछोह होनेपर इष्ट जनोका विलाप, युद्धमे योद्धाओकी उमगे, रणयात्राका सजीव चित्रण, विरहके गीत आदि मर्मस्पर्शी स्थलोकी परखसे मानवकी सहृदयता और सहानुभूति बढानेमें बेजोड सफलता प्राप्त की है।

'पउमचरिउ' मे वर्णित रावणकी वीरगति हो जानेपर मन्दोदरीके करुणापूर्ण विलापको सुनकर निठुरता भी रुदन किये विना नही रह सकती। कविकी अनुभूति कितनी गहराईतक पहुँची है, वर्णनमे कितनी सजीवता है, यह निम्न उदाहरणसे स्पष्ट है।

आएहिं सी आरियहि, अट्ठारह हिव जुवइ सहासेहिं।
णव घण माला डंबरेहि, छाइउ विज्जु जेम चउपासेहिं॥

रोवइ लंकापुर परमेसरि।
हा रावण! तिहुयण जण केसरि॥
पइ विणु समर तूरु कहों वज्जइ।
पइ विणु बालकील कहों छज्जइ॥
पइ विणु णव गह एक्कीकरणउ।
को परिहेसइ कंठा हरणउ॥

पइ विणु को विज्जा आराहइ।
पइ विणु चन्दहासु को साहइ॥
को गंधव्व वापि आडोहइ।
कण्णहो छवि-सहासु संखोहइ॥
पइ विणु को कुवेरु भंजेसइ।
तिजग-विहुसणु कहो वसे होसइ॥
पइ विणु को जमु विणिवारेसइ।
को कइलासुद्धरणु करेसइ॥
सहस-किरणु णलकुव्वर-सक्कहु।
को अरि होसइ ससि-वरुणक्कहु॥
को णिहाण रयणइ पालेसइ।
को बहुरूविणि विज्जा लएसइ॥

सामिय पइँ भलिएण विणु, पुप्फविमाणे चडेवि गुरुभत्तिए।
मेरु-सिहरे जिण-मंदिरइ, को महएसइ वंदण-हत्तिए॥

इसी प्रकार हनूमानके युद्धका वर्णन भी बहुत ही ओजस्वी और मर्मस्पर्शी है, पढ़ते ही हृत्तन्त्रियाँ झंकृत हो उठती हैं, मनमे उत्साह और स्फूर्ति जाग्रत हो जाती है। समस्त वातावरण युद्धोन्मुख दिखलायी पड़ता है, निर्जीव और शुष्क धमनियोमे भी स्वस्थ रक्तका संचार होने लगता है।

अपभ्रंश भाषाके पउमचरिउ, हरिवंशचरित, भविसयत्तकहा आदिके प्रबन्धमें तनिक भी शिथिलता या विशृंखलता नहीं है। कथाको न तो अनावश्यक विस्तार दिया गया है और न अक्रमबद्धता। कथानकमें गति-स्वाभाविकता और प्रवाह है। वस्तुव्यापारवर्णन और भावाभिव्यञ्जना भी अनुपम है। चरित्र-चित्रणमें इन कवियोने अपनी पूरी पटुता प्रदर्शित की है। रामके वन-गमनके समय दशरथकी मानसिक अवस्थाका चरित्र-चित्रण पितृहृदयकी अपूर्व झाँकी उपस्थित करता है।

'पउमचरिउ' में सीताहरणके पश्चात् रामकी अर्द्ध विक्षिप्त और मोहाभिभूत अवस्थाका चित्रण रामके मानवीय चरित्रमे चार चाँद लगाता है।

अपभ्रंश प्रबन्ध-काव्योमे वस्तुव्यापार वर्णन भी सुन्दर है। संवाद इतने प्रभावोत्पादक हुए हैं, जिससे इन प्रबन्धकारोंकी सहृदयताका सहज ही पता लगाया जा सकता है। यद्यपि वस्तु पुरातन है, पर जीवनके बाह्य और आन्तरिक दृश्योंका इतनी कुशलता और सूक्ष्मतासे उद्घाटन किया है, जिससे प्रबन्ध सहजमे ही चमत्कारपूर्ण हो गये हैं।

भावव्यञ्जना इन अपभ्रंश प्रबन्ध-काव्योंमें इतनी स्पष्ट है, जिससे पढ़ते ही हृदयकी रागात्मक वृत्तियोंमे सिहरन उत्पन्न हो जाती है। मनन-शील प्राणीके आन्तरिक सत्यका आभास जो कि जीवनके स्थूल सत्यसे भिन्न है, प्रकट हो जाता है। जीवनकी अन्तस्चेतना तथा सौन्दर्यभावना उद्बुद्ध हो चिरन्तन सत्यकी ओर अग्रसर करती है। इन प्रबन्धकारोने घटनावर्णन, दृश्य-योजना, परिस्थिति-निर्माण और चरित्र-चित्रणमें ही अपनेको उल-झानेका प्रयास नहीं किया है; बल्कि भाव, रस और अनुभूतिकी अभि-व्यञ्जना भी अनूठे ढगसे की है।

देशी भाषाके जैन-प्रबन्ध-काव्योंकी रचनाशैलीके आधारपर जायसी, तुलसी तथा विद्यापति आदि कवियोने अपने काव्योंका निर्माण किया है। पद्मावत और रामचरितमानसमें बहुत-सी बातें पउमचरिउ और भविस-यत्तकहाकी ज्यो-की-त्यो पायी जाती हैं। जिस प्रकार देशी भाषाके जैन-प्रबन्ध-काव्योंका आरम्भ ईश-चन्दनासे हुआ है, उसी प्रकार पद्मावत और रामचरितमानसका भी। जैन-प्रबन्धकारोंने देशी भाषाके प्रबन्ध-काव्योंमें जैसे बत्तीस मात्राओंकी

देशी भाषाके प्रबन्ध-काव्योंका जायसी, तुलसी तथा हिन्दीके अन्य कवियोंपर प्रभाव

अर्धालियोवाले पद्धटिका या अडिल्ल नामक कतिपय छन्दोके बाद बासठ मात्राओंवाला घत्ता रखा है, वैसे ही जायसी[1] और तुलसीने भी बत्तीस

[1]—जायसीके पद्मावतका रचनाकाल सन् १५४०, धनपालजी भवि-सयत्तकहाका रचनाकाल लगभग १००० ईस्वी सन्।

मात्राओंवाली चौपाइयोंकी अर्धालियोंके बाद अड़तालीस मात्राओंवाले दोहे रक्खे हैं। भविसयत्तकहाकी तुकोंकी लड़ी हर एक चरणके अन्तमें कम-से-कम प्रत्येक दो चरणमे मिलती है, उसी प्रकार जायसी और तुलसीकी भी। इसी तथ्यसे प्रभावित होकर प्रोफेसर श्री जगन्नाथराय शर्माने अपने 'अपभ्रंश-दर्पण'मे लिखा है कि "हिन्दीका कौन कवि है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें अपभ्रंशके जैन-प्रबन्ध-काव्योंसे प्रभावित न हुआ हो! चन्दसे लेकर हरिश्चन्द्र तक तो उसके ऋण भारसे दबे हैं ही, आजकलकी नई-नई काव्यपद्धतियोंके उद्भावक भी विचारकर देखनेपर उसकी परिधिके बहुत बाहर न मिलेंगे।"[1]

जायसीका पद्मावत तो भविसयत्तकहाके अनुकरणपर ही नही लिखा गया, अपितु उसका कथानक भी भविसयत्तकहासे मिलता-जुलता है। यदि भविसयत्तकहाके पात्रोंके नामोंको बदल ले तो कथाका अवशेष मानचित्र पद्मावतके प्रबन्धके मानचित्रसे ज्यों-का-त्यों मिलेगा। जिस प्रकारका प्रेम-चित्रण भविसयत्तकहामें है, ठीक उसी प्रकारका रत्नसेन-पद्मावतीकी कथामे भी। दोनों कृतियोंकी कथावस्तुमे बहुत साम्य है। सिंगलगढका उल्लेख दोनोंमे है। अलाउद्दीन-द्वारा रानी पद्मिनीके अपहरणका प्रयत्न अस्वाभाविक लगता है, भले ही वह ऐतिहासिक हो, किन्तु भविष्यदत्तकी स्त्रीका अपहरण उसके भाई बन्धुदत्त-द्वारा अधिक स्वाभाविक है। पद्मावतमें जायसीने यत्र-तत्र ही आध्यात्मिक संकेत रक्खे हैं, किन्तु भविसयत्तकहाको धार्मिक रूप ही दिया गया है। जायसीने पद्मिनीकी निराशा दिखलाकर मृत्यु दिखलायी है, पर भविसयत्तकहामें बन्धुदत्तने भविष्यदत्तकी स्त्रीका अपहरण किया है, अतः घटनाचक्रके अनुकूल होनेपर भविष्यदत्तको अपनी स्त्री वापिस मिल जाती है और बन्धुदत्त दण्ड पाता है।

पद्मावतकी वर्णनशैली भी पउमचरिउ और भविसयत्तकहासे बहुत अंशोमे मिलती-जुलती है। बन्धुदत्तकी समुद्रयात्रा रत्नसेनकी समुद्रयात्रासे

१—देखें अपभ्रंश-दर्पण पृष्ठ २५।

तथा नखशिखवर्णन पद्मावतके नखशिखवर्णनसे भावमे ही नही, किन्तु शब्दोमे भी साम्य रखता है। उदाहरणार्थ बन्धुदत्तकी समुद्रयात्राके कुछ पद्य उद्धृत किये जाते है। इन उद्धृत-पद्योकी पद्मावतके पद्योंके साथ तुलना करनेसे स्पष्ट है कि भविसयत्तकहाके रचयिता धनपालकी शैलीका जायसीने कितना अनुकरण किया है—

णिज्जावय वयणुज्जु अमुहइँ, किरववइँ णंणं भडइँ।
सचलइ रयणायरहो जलि, खरपवहाणय-धय-वणइँ॥

दिढ-बधइँ जिह मल्लर-गणाइँ। णिल्लोहइँ जिह मुणिवर-मणाइँ।
णिब्भिण्णइँ जिह सज्जण-हियाइँ। अकियत्थइँ जिह दुज्जण-कियाइँ॥
वहणइँ वहंति जलहर-रउद्दि। दुत्तरि अत्थाहि महा समुद्दि॥
लंघंतइँ दीवंतर-थलाइ। पिक्खंति विविह कोऊ हलाइँ॥
इय लीलइँ वच्चंताहँ ताहँ। उच्छाह-सत्ति-विक्कम पराहँ॥
दुप्पवणें घणतरुवर-समीवे। वहणइँ लग्गइँ मयणाय दीवे॥
कल्लोल-बोल-जलरल वमाले। असगाह-गाह गहणंतराले॥
तीरंतरे जं सघट्ट पोय। उत्तरिय तरिव पमुहाइ लोय॥
तं वयणु सुणेवि णायर जणहु, नं सिरि वज्जदंडु पडिऊ।
बोहित्थइँ लेवि दुरास खलु, गहिर महासमुद्दि चडिऊ॥

—भविसयत्तकहा पृष्ठ २१

सायर तरै हिये सत पूरा। जो जिउ सत, कायर पुनि सूरा॥
तेइ सत बोहित कुरी चलाए। तेइ सत पवन पंख जनु लाए॥
सत साथी, सत कर संसारू। सत्त खेइ लेइ लावै पारू॥
सत्त ताक सब आगू पाछू। जहँ जहँ मगर मच्छ औ काछू॥
उठै लहरि जनु ठाढ़ पहारा। चढ़े सरग औ परै पतारा॥

—जायसी ग्रंथावली पृ० ६४

१—स्वयंभूके पउमचरिउका रचनाकाल ई० सन् ७९०।

इसी प्रकार विरह, युद्ध, ऋतु, नगर आदिका वर्णन भी पद्मावतमे भविसयत्तकहाके समान ही हुआ है। देशी भाषाके शब्दोंके स्थानपर तत्सम शब्दोंको रख देनेपर भविसयत्तकहाके अनेक वर्णनात्मक स्थल पद्मावतके हो जायँगे।

हिन्दी साहित्यके अमरकवि तुलसीदास[1]पर स्वयंभूकी पउमचरिउ और भविसयत्तकहाका अमिट प्रभाव पड़ा है। महापंडित राहुल सांकृत्यायनने अपनी हिन्दी-काव्यधारामे बताया है कि "मालूम होता है, तुलसी बाबाने स्वयभू-रामायणको जरूर देखा होगा, फिर आश्चर्य है कि उन्होंने स्वयभूकी सीताकी एकाध किरण भी अपनी सीतामें क्यों नहीं डाल दी। तुलसी बाबाने स्वयभू-रामायणको देखा था, मेरी इस बातपर आपत्ति हो सकती है, लेकिन मै समझता हूँ कि तुलसी बाबाने "क्वचिदन्यतोपि" से स्वयभू-रामायणकी ओर ही सकेत किया है। आखिर नाना पुराण, निगम, आगम और रामायणके बाद ब्राह्मणोका कौन-सा ग्रन्थ बाकी रह जाता है, जिसमे रामकी कथा आयी है। "क्वचिदन्यतोपि"से तुलसी बाबाका मतलब है, ब्राह्मणोके साहित्यसे बाहर "कहीं अन्यत्रसे भी" और अन्यत्र इस जैन ग्रन्थमे रामकथा बड़े सुन्दर रूपमे मौजूद है। जिस सोरो या सूकरक्षेत्रमे गोस्वामीजीने रामकी कथा सुनी, उसी सोरोंमें जैन-घरोमे स्वयभू-रामायण पढ़ी जाती थी। रामभक्त रामानन्दी साधु रामके पीछे जिस प्रकार पड़े थे, उससे यह बिल्कुल सम्भव है कि उन्हे जैनोके यहाँ इस रामायणका पता लग गया हो। यह यद्यपि गोस्वामीजीसे आठ सौ बरस पहले बना था किन्तु तद्भव शब्दोके प्राचुर्य तथा लेखको-वाचकोके जब-तबके शब्द-सुधारके कारण भी आसानीसे समझमे आ सकता था"।[2]

१—गोस्वामी तुलसीदासका जन्म सं १५८९ और स्वयंभूदेवका ईस्वी सन् ७७०।

२—हिन्दी काव्यधारा पृष्ठ ५२।

राहुलजीका उपर्युक्त कथन कहाँतक यथार्थ है यह तो पाठकोंपर ही छोड़ा जाता है, पर इतना सुनिश्चित है कि रामचरितमानसके अनेक स्थल स्वयभूकी पउमचरिउ—रामायणसे अत्यधिक प्रभावित हैं तथा स्वयंभूकी शैलीका तुलसीदासने अनेक स्थलोंपर अनुकरण किया है। जिस प्रकार स्वयभूने पउमचरिउके आरम्भमें अपनी लघुता प्रदर्शित की है उसी प्रकार तुलसीने भी। स्वयभूका आत्मनिवेदन तुलसीके आत्मनिवेदनसे भाव-साम्य रखता है, अतः यदि यह माना जाय कि तुलसीने स्वयभूका अनुकरण किया है तो इसमे आश्चर्य ही क्या है? उदाहरणके लिए कुछ अश पउमचरिउके नीचे उद्धृत किये जाते हैं :—

बुह-यण सयंभु पईं विण्णवइ। मइ सरिसउ अण्ण णाहि कुकइ ॥
वायरणु कयाइ ण जाणियउ। णउ वित्ति-सुत्त वक्खाणियउ ॥
णा णिसुणिउ पंच महाय कव्वु। णउ भरहु ण लक्खणु छंदु सव्वु ॥
णउ बुज्झिउ पिंगल-पच्छारु। णउ भामह-दंडीय लंकारु ॥
वे वे साय तो वि णउ परिहरमि। वरि रयडा वुत्तु कव्वु करमि ॥
सामाणभास छुड मा विहडउ। छुडु आगम-जुत्ति किंपि घडउ ॥
छुडु होंति सु हासिय-वयणाइँ। गामेल्ल भास परिहरणाइँ ॥
एहु सज्जण लोयहु किउ विणउ। जं अवुहु पदरिसिउ अप्पणउ ॥
जं एवंवि रूसाइ कोवि खलु। तहो हत्थुत्थल्लिउ लेउ छलु ॥
पिसुणें किं अब्भत्थिएण, जसु कोवि ण रुच्चइ।
किं छण-इन्दु मरुग्गहे, ण कंपंतु विमुच्चइ ॥

—पउमचरिउ १-३

निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। तातें विनय करउँ सब पाहीं ॥
करन चहउँ रघुपति गुनगाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा ॥
सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ ॥
मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी। चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी ॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालवचन मन लाई ॥

जौं बालक कह तोतरि बाता । सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता ॥
हँसिहहिं कूर कुटिल कुविचारी । जे पर दूपन भूपन धारी ॥

× × ×

भाव भेद रस भेद अपारा । कवित दोप गुन विविध प्रकारा ॥
कवित विवेक एक नहिं मोरे । सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे ॥
—रामचरित मानस, बालकाण्ड

इसी प्रकार ऋतु, काल, सन्ध्या, नगर, समुद्र, नदी, वन, यात्रा, नारी-सौन्दर्य, विलाप, रनिवास, जलक्रीड़ा, विरह एव युद्ध आदि विपय, तथा छन्द, शैली आदि दृष्टियोसे 'पउमचरिउ' से तुलसीदासने बहुत कुछ ग्रहण किया प्रतीत होता है ।

भविसयत्तकहासे भी तुलसीदासने विपय और वर्णनशैलीकी अपेक्षा-से अनेक बाते ग्रहण की है । पाठक देखेगे कि निम्न पद्योंमे कितनी समानता है—

सुणिमित्तइँ जाअइं तासु ताम । गय पयहिणंत्ति उड्डेवि साम ॥
वायंगि सुत्ति सहसहइ वाउ । पिय मेलावइ कुलकुलइ काउ ॥
वामउ किलकिंचिउ लावएण । दाहिणउ अंगु दरिसिउ मएण ॥
दाहिणउ लोयणु फंदइ सबाहु । णं भणइ एण मग्गेण जाहु ॥

उसको सुन्दर शकुन दिखलायी पड़े । श्यामापक्षी उड़कर दाहिनी ओर आगया । बाई ओरसे मन्द-मन्द वायु बह रही थी और प्रियतमसे मेल करानेवाली ध्वनिमे कौआ बोल रहा था । लवाने बाई ओर बोलना शुरू किया और दाहिनी ओर मृग दिखलाई पड़े ।

इसी भावकी कविवर तुलसीदासकी चौपाइयाँ देखिये—

दाहिन काग सुखेत सुहावा । नकुल दरस सब काहुन पावा ॥
सानुकूल बह त्रिविध बयारी । सघट सबाल आव बर नारी ॥

लोवा फिरि-फिरि दरस दिखावा। सुरभी सन्मुख शिशुहिं पिआवा॥
मृगमाला दाहिन दिशि आई। मंगल गन जनु दीन्ह दिखाई॥

वात्सल्य और शृङ्गार रसके मर्मज्ञ कवि सूरदास भी देशी भाषाके जैन कवियोसे अत्यधिक प्रभावित है। सूरने पदोकी रचना देशी भाषाके जैन कवियोकी शैलीके आधारपर की है।

देशी भापाके जैन कवियोने दो चरणोका एक चरण माना है, वे चौपाईके चार चरण नहीं लिखते, दो ही चरणमे छन्द समाप्त कर देते हैं। कहीं-कहीं एक चरण रखकर उसे ध्रुवकके रूपमे कुछ पक्तियोंके बाद दुहराया गया है। यही प्रक्रिया पदोकी टेक बन गयी है। देशी भाषामें सगीत और लयका समन्वय अपूर्व है। इस भापाका काव्य वाद्यके साथ गेय गीतोमे माधुर्य और तालके साथ गाया जा सकता है। सूरदासने इसी शैलीको अपनाया है। बाललीला और शृङ्गारका वर्णन जैन साहित्यकी देन है। हेमचन्दके व्याकरणमे प्रोषितपतिकाके अनेक सुन्दर सरस उदाहरण आये हैं, जो गोपियोकी विरह-विह्वल दशाका चित्र उपस्थित करनेमे सक्षम हैं। कवि पुष्पदन्तने ऋषभदेवकी बाललीलाका वर्णन बड़े ही सुन्दर ढगसे किया है। हमारा अनुमान है कि यह भक्त-कवि बाल-चित्रणमे जैनकवियोसे अत्यधिक अनुप्राणित हैं। उदाहरणके लिए दो-चार पद्य उद्धृत किये जाते हैं।

सेसवलीलिया कीलमसीलिया।
पहुणादाविया केण ण भाविया॥
धूलीधूसरु ववगयकडिल्लु। सहजायक विलकोंतलु जडिल्लु॥
हो हल्लरु जो जो सुहुं सुअहिं पइं पणवंतउभूयगणु।
णंदइ रिज्झइ दुक्कियमलेण कासुवि मलिगुण ण होइ मणु॥
धूली धूसरो कडि किंकिणीसरो।
णिरुवमलीलउ कीलइ बालउ।

—पुष्पदन्त—महापुराण-प्रथमखण्ड

महाकवि सूरदास[1]ने कृष्णकी बाललीलाओंका चित्रण बहुत-कुछ इसी प्रकारका किया है। तुलनाके लिए सूरदासकी कुछ पद्य-पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

कहाँ लौं बरणौं सुन्दरताइ,
खेलत कुँअर कनक आगन में, नैन निरख छवि छाइ।
कुलहि लसति सिर स्याम सुभग अति, बहुविधि सुरँग बनाइ।
मानों नव घन ऊपर राजत, मघवा धनुष चढ़ाइ।
अति सुदेश मृदु हरत चिकुर मन, मोहन मुख बगराइ।

× × × ×

खंडित वचन देत पूरन सुख, अल्प अल्प जलपाइ।
घुटुरन चलत रेनु तन मंडित सूरदास बलि जाइ॥

लोकजीवनके ऐसे अनेक स्वाभाविक चित्र जैन देशी भाषाके प्रबन्ध काव्योंमें अंकित किये गये हैं, जिनसे हिन्दीकाव्य अद्यावधि अनुप्राणित होता चला आ रहा है। दोहा छन्द मूलतः जैन कवियोंका है। ८-९ वीं शताब्दीमें यह छन्द जैनोंमें इतना अधिक लोकप्रिय था कि इसी छन्दमें शृङ्गार, वैराग्य, नीति आदि विषयोंकी फुटकर रचनाएँ विपुल परिमाणमें हुईं। कुछ कवियोंने कतिपय छोटे-मोटे आख्यान भी दोहोंमें लिखे। हेमचन्द्रके व्याकरणमें ऐसे अनेक दोहोंका संग्रह है, जिनसे जैन कवियोंकी 'अल्प शब्दों-द्वारा अधिक भाव अभिव्यक्ति' करनेकी शैलीका परिज्ञान सहजमें ही हो जाता है। भावकी दृष्टिसे ऐसी अनेक भावनाएँ दोहोंमें चित्रित हैं, जिनका पूर्ण विकास बिहारीमें जाकर हुआ। यद्यपि शृङ्गार रसको बढ़ा-चढ़ा कर नहीं निरूपित किया, फिर भी विरह और प्रेमकी भावनाओंकी कमी नहीं है।

१—कवि सूरदासका समय वि. सं. १५४० और पुष्पदन्तका ई. सं. ९५९।

प्रबन्धचिन्तामणि, सोमप्रभका कुमारपाल-प्रतिबोध आदि रचनाएँ पुरानी हिन्दीके प्रबन्ध काव्योंमे परिगणित है। यद्यपि इन ग्रन्थोंकी प्रबन्ध-पद्धति शिथिल और विशृंखलित है, फिर भी शैली और भाषाकी दृष्टिसे इन काव्योका विशेष महत्त्व है। प्रबन्ध चिन्तामणि भोज-प्रबन्धके ढंगकी रचना है। इसमे जैन धर्मका उद्योतन करनेवाली कई कथाओंका सग्रह किया है। कथाका आरम्भ करते हुए बताया गया है कि एक दिन विक्रमादित्य रातको नगरका परिभ्रमण करने गया और एक तेलीसे निम्न दोहेका अर्धांश सुना। दोहेका उत्तरार्द्ध सुननेकी अभिलाषासे राजा वहाँ बहुत देर तक ठहरा रहा, पर उसे निराश ही लौटना पड़ा। प्रातःकाल दरबारमे उसने तेलीको बुलाया और उससे दोहेको पूरा कराया—

अपभ्रंशके बादकी पुरानी हिन्दीके जैन-प्रबन्ध काव्य

अम्मणिओ संदेसडओ नारय कन्ह कहिज्ज।
जगु दालिछिहि डुब्बिड' वलिबंधणह मुहिज्ज॥

अर्थात्—हे नारद, कृष्णसे हमारा सन्देश कह देना कि नगर दरिद्रतासे पीड़ित है, बलि-बन्धन (करका बोझ) छोड़ दो।

इसमे मुञ्ज, तैलप, भोज, कुमारपाल, अभय, रावण आदि राजाओंको जैन धर्मावलम्बी मानकर आख्यान दिये गये हैं। वर्णन साहित्यकी अपेक्षा इतिहासके अधिक निकट हैं। यद्यपि वसन्तका शब्द-चित्रण साहित्यकी दृष्टिसे सुन्दर हुआ है, लेखकने कल्पनाकी उड़ान और भावनाकी तहमें प्रवेश करनेका पूरा यत्न किया है, पर सफलता कम मिली है। उदाहरण—

यह कोइल-कुल-रव-मुहुलु भुवणि वसंतु पयट्टु।
भट्टु व मयण-महा-निवह पयडिअ-विजय मरट्टु॥
सूर पलोइवि कंत-कर उत्तर-दिसि-आसत्तु।
नीसासु व दाहिण-दिसय मलय-समीर पवत्तु॥

काणण-सिरि सोहइ अरुण-नव-पल्लव परिणद्ध ।
नं रत्तंमुय-पावरिय महु-पिययम-संवद्ध ॥
सहयारिहिं मंजरि सहहिं भ्रमर-समूह-सणाह ।
जालाउ व मयणानलह पसरिय-धूम-पवाह ॥

अर्थात्—कोयलोंके शब्दसे मुखरित वसन्त जगमें प्रविष्ट हुआ, मानो कामदेव महानृपके विजय-अहंकारको प्रकट करनेवाला योद्धा ही हो ।

सुन्दर किरणोंवाले सूर्यको उत्तर दिशामें आते देखकर मलय-समीर दक्षिण दिशाके निश्वासकी तरह बहने लगा ।

अरुण नव कोपलोंसे परिणद्ध कानन-श्री ऐसी शोभित होती है, मानो वह रक्तांशु लपेटे हुए वासनारूपी प्रियतमसे आलिंगित हो ।

भ्रमर-समूहसे युक्त आम्रमञ्जरी ऐसी जान पड़ती है, मानो मदनानलकी ज्वालासे धुँआ उठ रहा हो ।

प्रबन्ध-चिन्तामणिमें छोटी-छोटी कई कथाएँ हैं, इन कथाओंमें आपसमें कोई सम्बन्ध नहीं है; अतः यह सफल प्रबन्ध-काव्य नहीं कहा जा सकता ।

कुमारपाल-प्रतिबोधमें कुमारपालको प्रबुद्ध करनेके लिए ५७ लघु-कथाएँ दी गयी हैं । कविने सप्त व्यसन—जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरा पान करना, शिकार खेलना, परस्त्रीसेवन करना, चोरी करना और वेश्या एवं काम वासनाके त्याग करनेका उपदेश देते हुए अनेक छोटे-छोटे आख्यानोंको उदाहरणके रूपमें प्रस्तुत किया है । यद्यपि प्रासङ्गिक कथाओं-की आधिकारिक कथाके साथ अन्विति है, पर प्रबन्धमें शैथिल्य है । क्रम-बद्धताका भी अभाव है । कतिपय वर्णन कल्पनाकी उड़ान और भावनाकी सघनताकी दृष्टिसे सुन्दर हुए हैं । जगत्की तुच्छता और निस्सारता दिख-लाते हुए भौतिक पदार्थोंकी क्षणभंगुरताका मर्मस्पर्शी निरूपण किया है ।

१३ वीं शतीसे लेकर १९ वी शती तक रासा चरित्र और पौराणिक कथाओके रूपमें जैन साहित्यकार प्रवन्ध-काव्योका निर्माण करते रहे है।

हिन्दी-जैन साहित्यके परवर्ती प्रबन्ध काव्य

यद्यपि इन ग्रन्थोंमेंसे अधिकाश काव्योंकी वस्तु पुरातन है या सस्कृत और प्राकृतके कथा-ग्रन्थोका पद्यानुवाद है, फिर भी आत्मद्रष्टा भावुक जैन कवियोने अपनी कल्पना-द्वारा सुनहला रङ्ग भरकर कलाको चमका दिया है।

१३ वी शतीमे धर्मसूरिने जम्बूस्वामी रासा, विजयसूरिने रेवंतगिरि रासा, विनयचन्द्रने नेमिनाथचउपई, १४ वीं शतीमे सप्तक्षेत्र रासा, अम्बदेवने सघपति समरा रासा, १५वी शतीमे विजयभद्रने गौतमरासा, १६वीं शतीमे ईश्वरसूरिने ललिताङ्गचरित्र तथा इसी शताब्दीकी अज्ञात नामवाली रचनाएँ यशोधरचरित और कृपणचरित एवं १७वीं शतीमे मालकविने भोजप्रबन्धकी रचना की है। १८वीं शतीकी रचनाओमे भूधरदासका पार्श्वपुराण तथा पौराणिक आधारोपर विरचित हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, श्रीपाल चरित और श्रेणिक चरित आदि मुख्य है।

मानवके अन्तर्द्वन्द्व, आत्मचिन्तन, पाप-पुण्यके फल, अन्तस्तलकी निगूढ भावनाओंके घात-प्रतिघात एवं कार्योंमे मस्तिष्क और हृदयके समन्वयको जितनी खूबी और सूक्ष्मताके साथ इन परवर्ती जैन प्रबन्धकारोने दिखलाया है उतनी खूबी और सूक्ष्मताके साथ इनका अन्यत्र मिलना असम्भव तो नहीं, पर कठिन अवश्य है। एक अहिंसा तत्त्वकी भावना सर्वत्र अनुस्यूत मिलेगी। प्रबन्ध चाहे छोटे हो या बड़े, पर जैन कवियोने कथाके अनुपातका पूरा ख्याल रखा है। कथामें कहीं मन्थरता और कहीं लपक-झपक नहीं है, बल्कि सन्तुलनात्मक गति है: जिससे पाठक भावनाके उच्च धरातलपर सहजमे ही पहुँच जाता है। पार्श्वपुराण और श्रीपाल चरित्र तो श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्योकी श्रेणीमे रखे जा सकते हैं। चरित्रोंमे स्थिर और गतिमय दोनो ही प्रकारके चरित्र चित्रित हैं। पार्श्वपुराणमे अत्यन्त सूक्ष्म पर्यवेक्षणसे काम लिया है, इसी कारण कविने सजीव चित्र

खींचनेमे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। जीवनकी कमजोरियॉ, मानसिक विकार और विभिन्न परिस्थितियोंके गहन स्तरोकी अभिव्यञ्जना भी प्रशंस्य है।

प्रबन्धकाव्यके दो भेद हैं—महाकाव्य और खण्डकाव्य। महाकाव्यमे सम्पूर्ण जीवनका चित्रण रहता है, पर खण्डकाव्यमे जीवनके किसी खास अंशका ही चित्राकन किया जाता है। काव्य[1]मनीषियोंने महाकाव्यमें जीवनकी सर्वाङ्गपूर्ण कथाके साथ निम्नाङ्कित बातोंका होना भी आवश्यक माना है—

हिन्दी जैन महाकाव्य

१—कथावस्तु सर्गों या अधिकारोंमे विभक्त होती है।

२—नायक तीर्थंकर, चक्रवर्ती या अन्य महापुरुष होता है।

३—शृङ्गार, वीर या शान्त रसकी प्रधानता रहती है।

४—सन्धियोंमें अद्भुत रस होता है, प्रसगवश अन्य रस भी आ सकते हैं।

५—नाटककी सभी सन्धियॉ पायी जाती है।

६—कथावस्तु ऐतिहासिक या जगत्-प्रसिद्ध होती है।

७—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनमेंसे किसी एक पुरुषार्थको प्राप्त करना उद्देश्य माना जाता है।

८—आरम्भमें मंगलाचरण, आशीर्वचन अथवा प्रतिपाद्य वस्तुका संकेत रहता है।

९—सर्गोंकी सख्या आठसे अधिक होती है।

१—सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः॥
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते॥
—साहित्यदर्पण

१०–सर्ग या अधिकारके अन्तमे छन्द बदल जाते हैं, कभी-कभी एक ही सर्गमें कई प्रकारके छन्द आते है।

११–प्रभात, सन्ध्या, प्रदोष, सूर्य, चन्द्र, अन्धकार आदि प्राकृतिक दृश्यों, सयोग, वियोग, युद्ध, विवाह आदि जीवनकी परिस्थितियाँ एवं स्वर्ग, नरक, ग्राम, नगर आदि अनेक प्रकारकी वस्तुओका चित्रण रहता है।

१२–महाकाव्यका नामकरण किसी प्रधान घटना, काव्यगत वृत्त, कविका नाम अथवा नायकके नामके आधारपर होता है।

देशी भाषामें स्वयम्भूदेवके पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ, पुष्पदन्त कविका तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार, पद्मकीर्तिका पार्श्वपुराण और नयनन्दिका सुदर्शनचरित हैं। ब्रजभाषा और राजस्थानी भाषामे विनय-सूरिका मल्लिनाथमहाकाव्य, भूधरदासका पार्श्वपुराण तथा अनूदित हरिवंशपुराण आदि हैं। वास्तविक बात यह है कि राजस्थानमे अभी जैन काव्योका अन्वेषण करना शेष है। हमारा विश्वास है कि जयपुरके आस पासके जैनमन्दिरोंके शास्त्रागारोमे हिन्दीके अनेक महाकाव्य छुपे पड़े है।

यहाँ दो-चार उन मुख्य ग्रन्थोका ही विवेचन दे रहे है, जो हमारे अनुशीलनका विषय रहे है।

पउमचरिउ–पद्मचरित्र (जैन रामायण) इस ग्रन्थमे १२००० पद्य हैं। ९० सन्धियाँ और ५ काण्ड हैं। विवरण निम्न है–

विद्याधरकाण्ड—२० सन्धि
अयोध्याकाण्ड—२२ सन्धि
सुन्दरकाण्ड—१४ सन्धि
युद्धकाण्ड—२१ सन्धि
उत्तरकाण्ड—१३ सन्धि

इन सन्धियोमें ८३ सन्धियाँ स्वयभूदेवकी हैं और शेष सात सन्धियाँ इनके पुत्र त्रिभुवन-द्वारा रचित हैं।

विद्याधर, राक्षस और वानरवंशका परिचय देनेके अनन्तर बताया है कि विजयार्द्धकी दक्षिण दिशामे रथनूपुर नामके नगरमे इन्द्र नामका प्रतापी विद्याधर रहता था। इसने लंकाको जीतकर अपने राज्यमें मिला लिया। पाताल-लंकाके राजा

कथावस्तु

रत्नश्रवका विवाह कौतुकमंगल नगरके व्योमविन्दुकी छोटी पुत्री केकसीसे हुआ था, रावण इसी दम्पत्तिका पुत्र था। इसने वचपनमे ही वहुरूपिणी विद्या सिद्ध की थी, जिससे यह अपने शरीरके अनेक आकार बना सकता था। रावण और कुम्भकरणने लंकाके अधिपति इन्द्र और प्रभावशाली विद्याधर वैश्रवणको परास्तकर अपना राज्य स्थापित कर लिया। खरदूषण रावणकी बहन शूर्पणखाका हरण कर ले गया, पीछे रावणने अपनी इस बहनका विवाह खरदूषणके साथ कर दिया और पाताल-लंकाका राज्य भी उसीको दे दिया।

वानरवंशके प्रभावशाली शासक वालिने संसारसे विरक्त होकर अपने लघु भाई सुग्रीवको राज्य दे दिगम्बर-दीक्षा ग्रहण कर ली और कैलास पर्वतपर तपस्या करने लगा। रावणको अपने बल, पौरुषका बड़ा अभिमान था, अतः वह वालिपर क्रुद्ध हो कैलास पर्वतको उठाने लगा। इस पर्वतके ऊपर बने जिनालय सुरक्षित रहे, इसलिए वालिने अपने अंगूठेके जोरसे कैलास पर्वतको दवा दिया, जिससे रावणको महान् कष्ट हुआ। पश्चात् वालिने रावणको छोड़ दिया और तपस्या कर निर्वाण पाया।

अयोध्यामें भगवान् ऋषभदेवके वंशसे समयानुसार अनेक राजा हुए, सबने दिगम्बरी दीक्षा लेकर तपस्या की और मोक्ष पाया। इस वंशके राजा रघुके अरण्य नामक पुत्र हुआ, इसकी रानीका नाम पृथ्वीमति था। इस दम्पत्तिको दो पुत्र हुए—अनन्तरथ और दशरथ। राजा अरण्य अपने वड़े पुत्र सहित संसारसे विरक्त हो तपस्या करने चला गया तथा अयोध्याका शासनभार दशरथको मिला। एक दिन दशरथकी सभामें नारद ऋषि आये, उन्होने कहा कि रावणने किसी निमित्तज्ञानीसे यह जान

लिया है कि दशरथ-पुत्र और जनक-पुत्रीके निमित्तसे मेरी मृत्यु होगी। अतः उसने विभीषणको आप दोनोको मारनेके लिए नियुक्त कर दिया है, आप सावधान होकर कहीं छुप जायें। राजा दशरथ अपनी रक्षाके लिए देश-देशान्तरमे गये और मार्गमे कैकयीसे विवाह किया। कुछ समय पश्चात् महाराज दशरथके चार पुत्र हुए और एक युद्धमे प्रसन्न होकर उन्होंने कैकयीको वरदान भी दिया। रामके राज्याभिषेकके समय कैकयीने वरदान माँगा, जिससे राम-लक्ष्मण और सीता वन गये तथा महाराज दशरथने जिन-दीक्षा ग्रहण की। सीता-हरण हो जानेपर रामने वानरवंशी विद्याधर पवनञ्जय और अञ्जनाके पुत्र हनूमान एवं सुग्रीवसे मित्रता की। रामने सुग्रीवके शत्रु साहसगतिका वधकर सदाके लिए सुग्रीवको अपने वश कर लिया और इन्हींके साहाय्यसे रावणका वधकर सीताको प्राप्त किया।

रावण जैन धर्मानुयायी था। प्रतिदिन जिनपूजा और स्तुति करता था, पर अनीतिके कारण उसके कुलका सहार हुआ।

अयोध्या लौट आनेपर लोकापवादके भयसे रामने सीताका निर्वासन किया। सौभाग्यसे जिस स्थानपर जगलमें सीताको छोड़ा गया था, वज्र-जंघ राजा वहाँ आया और अपने घर ले जाकर सीताका सरक्षण करने लगा। सीताके पुत्र लवणाकुशने अपने पराक्रमसे अनेक देशोंको जीतकर वज्रजंघके राज्यकी वृद्धि की। जब यह वीर दिग्विजय करता हुआ अयोध्या आया तो रामसे युद्ध हुआ तथा इसी युद्धमे पिता पुत्र परस्परमे परिचित भी हुए। सीता अग्निपरीक्षामें उत्तीर्ण हुई, विरक्त हो तपस्या करने चली गयी और स्त्रीलिङ्ग छेदकर स्वर्ग प्राप्त किया। लक्ष्मणकी मृत्यु हो जानेपर राम शोकाभिभूत हो गये, कुछ काल बाद बोध प्राप्त होनेपर दिगम्बर मुनि हो गये और दुर्द्धर तपस्याकर उन्होने मोक्ष प्राप्त किया।

यह सफल महाकाव्य है। इसकी आधिकारिक कथा रामचन्द्रकी कथा है, अवान्तर या प्रासङ्गिक कथाएँ वानरवंश और विद्याधर वंशके

आख्यान रूपमे आयी हैं। प्रासङ्गिक कथावस्तुमे प्रकरी और पताका दोनों ही प्रकारकी कथाऍं है। पताका रूपमें सुग्रीव और मारुत-नन्दनकी कथाऍं आधिकारिक कथाके साथ-साथ चली है और प्रकरी रूपमे बालि, भामण्डल, वज्रजंघ आदि राजाओंके आख्यान हैं।

महाकाव्यत्व

कार्य-व्यापारकी दृष्टिसे उक्त कथावस्तुमे प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम ये पॉचों ही अवस्थाएँ पायी जाती हैं। विद्याधर वंशके वर्णनके उपरान्त अयोध्याकाण्डकी तीसरी सन्धिमें कथासूत्र फलकी इच्छाके लिए उन्मुख होता है। इक्ष्वाकुवंशके महाराज दशरथके प्रागणमे राम खेलते दिखलायी पडते हैं। द्वितीय अवस्था उस समय आती है जब राम विवाहकर घर लौट आते हैं। वन जाना, सीताका हरण होना और युद्ध करके रावणके यहॉसे सीताको ले आनेके उपरान्त रामका धार्मिक कृत्योंमें लीन हो जाना तथा लक्ष्मणकी मृत्युके उपरान्त रामका वेदनाभिभूत होना और देवों-द्वारा बोध प्राप्त होना तीसरी प्राप्त्याशा नामक अवस्था है। रामका तपस्याके लिए जाना नियताप्ति नामक चौथी अवस्था और रामका निर्वाण प्राप्त करना फलागम नामक पॉचवीं अवस्था है।

अवस्थाऍं

इस महाकाव्यमें कथावस्तुके चमत्कारपूर्ण वे अग वर्तमान हैं, जो कथावस्तुको कार्यकी ओर ले जाते है। बीज प्रारम्भ नामक अवस्थासे ही दिखलायी पड़ता है, जिस प्रकार बीजमें फल छिपा रहता है उसी प्रकार वशोत्पत्ति नामक आख्यानमें सारी कथा छुपी है। वानरवश, विद्याधरवश और राक्षसवशका पारस्परिक सम्बन्ध दिखलाकर कविने मानवीय और दानवीय प्रवृत्तियोंके द्वन्द्वकी अभिव्यञ्जना की है। बिन्दुका आरम्भ रामके जन्मसे होता है, कथाके वास्तविक विस्तार और निगमनका यही स्थान है। पताका और प्रकरीमें बालिका तपाख्यान, विशल्याके भवान्तर, हनूमानका निर्वाण लाभ आदि

अर्थप्रकृतियॉं

अवान्तर कथास्थान हैं। रामका निर्वाण लाभ-कार्य नामक अर्थ-प्रकृति है।

अवस्था और अर्थप्रकृतियोंका मेल इसमें सुन्दर ढंगसे हुआ है। बीज अर्थप्रकृति—वंशाख्यानका प्रारम्भ नामक अवस्था—रामके साथ योग दिखलाना मुख सन्धि है। प्रतिमुख सन्धि कथाका वह स्थान है जहाँ रामकी वानरवंशके विद्याधरोंसे मित्रता होती है। गर्भसन्धिमे कथाका विस्तार बहुत हुआ है। अवमर्श सन्धिमे रामका वेदनाभिभूत हो जानेवाला कथाका स्थान है। रामका निर्वाण प्राप्त करना निर्वहणसन्धि-स्थान है, जहाँ कार्य और फलका योग हुआ है।

सन्धियाँ

इस महाकाव्यकी कथावस्तुके नायक पद्म—राम हैं। यह धीरोदात्त हैं। इनके चरित्रमें महती उदारता है। इनमें शक्तिके साथ क्षमा तथा दृढ़ता और आत्मगौरवके साथ विनय तथा निरभिमानता है। यह श्रेष्ठ शलाकापुरुषोंमेंसे हैं।

नायक

इस महाकाव्यमें यों तो सभी रस हैं, पर शान्तरस प्रधान रूपसे परिपक्व हुआ है। शृङ्गारके संयोग और वियोग दोनों पक्षोंका वर्णन कविने सुन्दर किया है। करुण रसके चित्रणमें तो अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। युद्धमें भाई-बन्धुओंके काम आनेपर कुटुम्बियोंके विलाप पाषाणहृदयको भी द्रवीभूत करनेमें समर्थ हैं।

रस

प्रकृति आदिकालसे ही कवियोंका आकर्षण-केन्द्र रही है। सभी कवियोंने विभिन्न रूपोंमें प्रकृतिका चित्रण किया है। इस महाकाव्यमें भी षट्ऋतुओंका वर्णन विशुद्ध प्रकृतिके साथ आलम्बनके रूपमें किया गया है। सन्ध्याकी सुषमाको कविने अनेक उपमा और उत्प्रेक्षाओंके सुन्दर जालमें बाँधना चाहा है, पर वह सुन्दरीका शब्दचित्र प्रस्तुत नहीं कर सका है। निम्न पंक्तियाँ देखने योग्य हैं—

प्रकृतिचित्रण और वस्तुवर्णन

उवहसइ संझाराउ सुह-वंधुरु । विद्दु मयाहरु मोत्तिय-दंतुरु ॥
छिवइ व मत्थउ मेरु-महीहरु । तुज्झुवि मज्झुवि कवणु पईहरु ॥
जं चंद-कंत-सलिलाहि सित्तु । अहिसेय-पणालु व फुसिय चित्तु ॥
जं विद्दुम-मरगय-कंति आहि । थिउ गयणु व सुघरणु-पंति आहि ॥
जं इंदणील-माला मसीए । अलिहइ वंदि भित्तीए तीए ॥
जहि पोमराय-पह तणु विहाइ । थिउ अहिणव-संझाराउ णाइ ॥

—पउमचरिउ ७२।३

इस महाकाव्यके दो खण्ड हैं—आदिपुराण और उत्तरपुराण। प्रथम खण्डमें ८० सन्धियाँ और द्वितीयमे ४० सन्धियाँ हैं। आदिपुराणमे प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथका चरित्र है और उत्तरपुराणमें अवशेष २३ तीर्थंकरोकी जीवनगाथा है। आदिपुराणकी कथावस्तुमे एकतानता है, पर उत्तरपुराणमे २३ कथाएँ है, एकका दूसरेसे कुछ भी सम्बन्ध नही। अतएव महाकाव्यके सभी पूर्वोक्त लक्षण आदिपुराणमे वर्तमान हैं।

तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकारु

महाकाव्यकी सबसे बड़ी विशेषता कथावस्तुमें अन्वितिका होना है। आदिपुराणमे घटनाचक्रके भीतर ऐसे स्थलोका पूरा सन्निवेश है जो मानवकी रागात्मिका वृत्तिको उद्‌बुद्ध कर सकते हैं, उसके हृदयको भाव-मग्न बना सकते हैं। इसमें कथाका पूरा तनाव है; इसके नायकमें केवल कालकी अपेक्षासे ही विस्तार नही है, बल्कि देशापेक्षया भी है। नायक ऋषभनाथ—आदिनाथ उस समयके समाज और वर्गविशेषके प्रतिनिधि हैं। उनके जीवनमें समष्टिके जीवनका केन्द्रीयकरण है। महाकाव्यके नायकमे यही सबसे बड़ी विशेषता होनी चाहिये कि वह समष्टिगत भावनाओं और इच्छाओंको अपने भीतर रखकर मानवताका प्रतिष्ठान करे। सक्षेपमे यह सफल महाकाव्य है।

१२वीं शतीमे नयनन्दिने १२ सन्धियोंमे सुदर्शन चरितकी रचना की है। यह ग्रन्थ एक प्रेम कथाको लेकर लिखा गया है। कविने बडे कौशलसे

इस कथाकी व्यञ्जनामे पञ्चनमस्कारका फल घटित किया है। प्रतिदिन अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुको भक्तिपूर्वक नमस्कार करना प्रत्येक साधकका धर्म है।

सुदर्शन-चरित

काव्यके बीच-बीचमे धार्मिक प्रकरण रखे गये है। धार्मिक व्यञ्जनाके साथ प्रेम-कथा कहनेकी यह साकेतिक शैली सूफी कवियोके लिए विशेष अनुकरणीय रही है। इस काव्य-ग्रन्थके कथानकके समानान्तर ही प्रेम-मार्गी कवियोने कथाएँ गढकर अपने सिद्धान्तोका प्रचार किया है।

प्रस्तुत काव्यग्रन्थमे यद्यपि शृगाररसकी प्रधानता है, तथापि इसका पर्यवसान शान्तरसमें हुआ है। कविने जहाँ एक ओर स्त्रीके सौन्दर्य-चित्रण और आकर्षक परिस्थितियोंमे अपनी कल्पना एव सौन्दर्य-दर्शनकी अन्तर्दृष्टिका परिचय दिया है, वहाँ बीच-बीचमे जैनधर्मके सिद्धान्तोका भी स्पष्टीकरण किया है। नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन, प्रकृति चित्रणके रसानुकूल प्रसग बडे मनोहर ढगसे प्रस्तुत किये है। जैन साहित्यमे इस महाकाव्यकी शैलीपर अधिक रचनाएँ नही हो सकी है। आकर्षक रूप-सौन्दर्य ही इस महाकाव्यके आख्यानका आधार है। सुदर्शनका रूप ससारकी समस्त सुन्दर वस्तुओके समन्वयसे निर्मित है। इसके वर्णन, दर्शन या भावनामात्रसे किसीके भी हृदयमे गुदगुदी उत्पन्न हो सकती है।

कवि नयनन्दने अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि-द्वारा भिन्न-भिन्न परिस्थितियोके बीच घटित होनेवाली अनेक मानसिक अवस्थाओका सुन्दर विश्लेषण किया है। अभयाके सामने जब सुदर्शन पहुँचता है तो वह उन्मुक्त हृदयसे प्रेमकी भीख माँगती है, किन्तु शीलपर हिमालयकी चट्टानकी तरह अडिग सुदर्शन मानसिक द्वन्द्वोंके बीच पड़कर भी कमजोरियोपर विजय पाता है और स्पष्ट शब्दोंमें उसके प्रस्तावको ठुकरा देता है। क्षोभसे उत्पन्न उदासीनता और आत्मग्लानिकी भावनासे अभिभूत अभया शोर मचाती है, जिसका परिणाम दानवीय शक्तिपर मानवीय शक्तिके विजय रूपमे होता है। करुणा, रति, क्रोध, उत्साह आदि स्थायी भावोके अतिरिक्त कितने

ही छोटे-छोटे भाव और विभिन्न मानसिक दशाओंका चित्रण श्रेष्ठ कविने किया है। इस कारण इसमें महाकाव्यत्वकी अपेक्षा नाटकत्व अधिक है।

सुदर्शनके स्वभावमें वैयक्तिक विशेषता है, यह धीर प्रशान्त नायक है, स्वभावतः शान्त और अपनी प्रतिज्ञापर अटल है, इसे कोई भी प्रलोभन पथभ्रष्ट नहीं कर सकता है। कञ्चन और कामिनी जिनसे संसारके इने-गिने व्यक्ति ही अपनेको विलग रख पाते हैं, से सुदर्शन निर्लिप्त है। रस और शैलीकी दृष्टिसे भी यह महाकाव्य है, नायकके नामपर इसका नामकरण किया गया है। दृश्य-योजना, वस्तु-व्यापार-वर्णन और परिस्थिति-निर्माणकी योजना कविने यथास्थान की है। वर्णनोंमें नामोंकी भरमार नहीं है, किन्तु वस्तुके गुणोंका विश्लेषण किया गया है।

देशी भाषा और पुरानी हिन्दीके पश्चात् कई महाकाव्य प्रचलित हिन्दी भाषामें भी लिखे गये। यद्यपि सोलहवीं शतीके अनन्तर महाकाव्य लिखनेकी परिपाटी उठती गयी, फिर भी पुराण साहित्यको काव्यका विषय बनानेके कारण महाकाव्य रचनेकी परम्परा क्षीण रूपमें चलती रही। प्रकरणवश राजस्थानी और ब्रजभाषाके कतिपय जैन महाकाव्योंका आलोचनात्मक परिचय देना अप्रासंगिक न होगा।

यह सफल महाकाव्य है, पूर्वोक्त सभी महाकाव्यके लक्षण इसमें वर्तमान हैं। इसकी कथा बड़ी ही रोचक और आत्मपोषक है। किस प्रकार

पार्श्वपुराण

वैरकी परम्परा प्राणीके अनेक जन्म-जन्मान्तरोंतक चलती रहती है, यह इसमें बड़ी ही खूबीके साथ बतलाया गया है। पार्श्वनाथ तीर्थंकर होनेके नौ भवपूर्व पोदनपुर नगरके राजा अरविन्दके मन्त्री विश्वभूतिके पुत्र थे। उस समय इनका नाम मरुभूति और इनके भाईका नाम कमठ था। विश्वभूतिके दीक्षा लेनेके अनन्तर दोनों भाई राजाके मन्त्री हुए। जब राजा अरविन्दने वज्रकीर्तिपर चढाई की तो कुमार मरुभूति इनके साथ युद्ध-क्षेत्रमें गया। कमठने राजधानीमें अनेक उत्पात मचाये और अपने छोटे भाईकी पत्नीके साथ

दुराचार किया। जब राजा शत्रुको परास्तकर राजधानीमें आया तो कमठ-के कुकृत्यकी बात सुनकर उसे बड़ा दुःख हुआ। कमठका काला मुँहकर गधेपर चढ़ा सारे नगरमें घुमाया और नगरकी सीमाके बाहर कर दिया। आत्मप्रताड़नासे पीडित कमठ भूताचल पर्वतपर जाकर तपस्वियोंके साथ रहने लगा। मरुभूति कमठके इस समाचारको पाकर भूताचलपर गया, पर वहाँ दुष्ट कमठने उसकी हत्या कर दी। इसके पश्चात् आठ जन्मोंकी कथा दी गयी है, नौवें जन्ममें काशीके विश्वसेन राजाके यहाँ पार्श्वनाथका जन्म होता है। यह आजन्म ब्रह्मचारी रहकर आत्म-साधना करते हैं, पूर्वभवका साथी कमठ इनकी तपस्यामें नाना विघ्न उत्पन्न करता है, पर ये अविचलित रहकर आत्म-साधना करते हैं। कैवल्य-प्राप्ति हो जानेपर भव्य जीवोंको उपदेश देते हैं और सौ वर्षकी अवस्थामें निर्वाण प्राप्त करते हैं।

कथावस्तुसे ही इसका महाकाव्यत्व प्रकट है। नायक पार्श्वनाथका जीवन अपने समयके समाजका प्रतिनिधित्व करता हुआ लोक-मंगलकी रक्षाके लिए बद्ध-परिकर है। कविने कथामें क्रमबद्धता का पूरा निर्वाह किया है। मानवता और युग-भावना-का प्राधान्य सर्वत्र है। परिस्थिति-निर्माणमें पूर्वके नौ भवोंकी कथा जोड़-कर कविने पूरी सफलता प्राप्त की है। जीवनका इतना सर्वाङ्गीण और स्वस्थ विवेचन एकाध महाकाव्यमें ही मिलेगा।

महाकाव्यत्व

यह जीवनका काव्य है। इसमें एक व्यक्तिका जीवन अनेक अवस्थाओं और व्यक्तियोंके बीच अंकित है। अतः इसमें मानव राग-द्वेषोंकी क्रीड़ाके लिए विस्तृत क्षेत्र है। मनुष्यका ममत्व अपने परिवारके साथ कितना अधिक रहता है, यह पार्श्वनाथके जीव मरुभूतिके चरित्रसे स्पष्ट है।

जीवनके आन्तरिक दर्शनका आभास वृद्ध आनन्दकुमारकी आत्म-कल्याणकी छटपटाहटमें कविने कितने सुन्दर ढंगसे दिया है। कवि कहता है—

बालक काया कूंपल सोय। पत्र रूप जीवनमें होय॥
पाको पात जरा तन करै। काल बयारि चलत पर झरै॥
मरन दिवसको नेम न कोय। यातैं कछु सुधि परै न लोय॥
एक नेम यह तो परमान। जन्म धरे सो मरै निदान॥

—४।६५-६७

वस्तुतः उपर्युक्त पंक्तियोंका यथार्थ चित्रण अत्यन्त रमणीय है। कवि कहता है कि किशोरावस्था कोंपलके तुल्य है, इसमें पत्र-रूप यौवन अवस्था है। पत्तोंका पक जाना—जरा है। मृत्यु-रूपी वायु इस पके पत्तेको अपने एक हल्के धक्केसे ही गिरा देती है। जब जीवनमें मृत्यु निश्चित है, तो हमे अपनी महायात्राके लिए पहलेसे तैयारी करनी चाहिये।

जीवनका अन्तर्दर्शन ज्ञानदीपके द्वारा ही हो सकता है, किन्तु इस ज्ञानदीपमें तपरूपी तैल और स्वात्मानुभवरूपी वत्तीका रहना अनिवार्य है—

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर॥—४।८१

वस्तु-वर्णन, चरित्र-चित्रण और भाव-व्यञ्जना इस महाकाव्यमे समन्वित रूपमे वर्तमान है। घटना-विधान और दृश्य योजनाओंको भी कविने पूरा विस्तार दिया है। आदर्शवादका मेल कविताकी समाजनिष्ठ पद्धति और प्रबन्ध-शैलीसे अच्छा हुआ है। पार्श्वनाथका चरित्र हिंसापर अहिंसाकी विजय है। क्षमाका पीयूष क्रोध और वैरको सुधा बना देता है, क्रोध और उत्पातके स्वरूपको बदल देता है। प्रतिशोध और वैरकी भावनाका अन्त हो जाता है। इसपर कवि कहता है—

इत्यादिक उत्पात सब, वृथा भये अति घोर।
जैसे मानिक दीपकौं, लगै न पवन झकोर॥
प्रभु चित चल्यो न तन हिल्यौं, टल्यौं न धीरज ध्यान।
इन अपराधी क्रोधवस, करी वृथा निज हान॥—८।२३, ८।२५

हिन्दी-जैन-खण्डकाव्य

खण्डकाव्यमे जीवनके किसी खास पहलूपर कविकी दृष्टि केन्द्रित रहती है। यद्यपि घटना-विधान, दृश्य-योजना और परिस्थिति-निर्माणका भी प्रयास खण्डकाव्यके निर्माताओको करना पडता है, पर जीवनके किसी खास अंगकी सीमामें बाँधकर। जैन साहित्यकारोंने भी हिन्दी भाषामे अनेक खण्डकाव्योकी रचना की है। परिस्थिति निर्माणमें इन्हे अभूतपूर्व सफलता इसलिए प्राप्त हुई है कि जीवनके द्वन्दोमें प्रवृत्तिसे हटकर निवृत्ति-की ओर ले जाना इनका ध्येय था। इस कारण जीवनकी मर्मस्पर्शी घटनाओको घटित करानेके लिए परिस्थितियोका निर्माण सुन्दर ढगसे हुआ है। ससारका कोई भी पदार्थ अपनी स्थितिमे नहीं रहना चाहता है, परिस्थितिकी ओर बढता है, क्योकि जड और चेतन सभी प्रकारके पदार्थो-मे परिवर्तन और गतिका होना अनिवार्य है। जैन हिन्दी कवियोने स्याद्-वाद दर्शनकी अनुभूतिसे प्रत्येक पदार्थकी गति और परिस्थितिका अनुभव कर खण्डकाव्योंमें घटना-विधान इतने सुन्दर ढगसे घटित किये हैं, जिससे मानव जीवनके राग-विराग सहजहीमे प्रकट हो जाते है।

पञ्चमीचरित, नागकुमारचरित, यशोधरचरित, नेमिनाथचउपई, बाहुबलिरास, गौतमरास, कुमारपाल-प्रतिबोध, जम्बूस्वामीरासा, रेवतगिरि-रासा, संघपति समरारास, अञ्जनासुन्दरीरास, धर्मदत्तचरित, ललिताग-चरित, कृपणचरित, धन्यकुमारचरित, जम्बूचरित आदि अनेक जैनखण्ड-काव्य देशी भाषा, पुरानी हिन्दी और परवर्ती हिन्दीमे विद्यमान है। इन सभी खण्डकाव्योमें घटना-वैचित्र्यके साथ चरित्र-चित्रण सफल हुआ है। मानव जीवनकी रागात्मिका वृत्तिके उद्घाटनके साथ शुद्धात्मानुभूतिकी ओर ले जानेकी क्षमता इन सभी खण्डकाव्योमें है। नायक, रस, वस्तु-विधान, अलंकार-योजना और शैली आदि विभिन्न दृष्टिकोणोंकी अपेक्षासे ये सभी खण्डकाव्य सफल है। यह जैन कवियोंकी प्रमुख विशेषता है कि वे पुरातन कथावस्तुमे नवीन प्राणोकी प्रतिष्ठा कर नूतन और मौलिक

उद्भावनाएँ करनेमें सफल हुए हैं। पौराणिक कथानकके होनेपर भी विचार निखरे और पुष्ट हैं। इनमेंसे कुछका विवरण निम्न प्रकार है—

यह कवि पुष्पदन्तकी अमर कृति है। इसमें नौ सन्धियाँ हैं। पञ्चमी व्रतके उपवासका फल प्राप्त करनेवाले नागकुमारका चरित वर्णित है।

नागकुमारचरित

नागकुमारके जीवनको प्रकाशमें लानेके लिए कविने अपनी कल्पनाका पूरा उपयोग किया है। युद्ध और संघर्षकी परिस्थितिके क्षणोंमे होनेवाली नागकुमारकी विलक्षण मनोदशाका कविने वैज्ञानिक उद्घाटन किया है। आजकलके मनोविज्ञानके सिद्धान्त भले ही उसमें न हों, पर संघर्षकी स्थितिमें मानवमन किस प्रकार व्याकुल रहता है तथा कल्पनाके सुनहले परोंपर बैठ नभोमण्डलमें कितनी दूर तक विचरण कर सकता है, का आभास सहजमें ही मिल जाता है। इस खण्ड-काव्यमें वस्तुवर्णनका कौशल और प्रबन्धकी पटुताका अद्वितीय मिश्रण है। कवि नागकुमारको वनराजके द्वारा देखे जानेका वर्णन करता हुआ कहता है—

जहिं काणणंते ठाणोहतरु, तहिं हुंतउ पल्लविउ सवरु ॥
दिट्ठउ परमेसरु कुसुम सरु, आवासिउ सणह जणतिहरु ॥
आएस पुरिसु परियाणियउ, भिच्चहिं जाइवि परियाणियउ ॥
तं दिट्ठु जयंधर णिवतणउ, झसकेउ देउ किं सो भणउ ॥
पुच्छिउ कामें किं आइयउ, को तुहुं विणएण विराइयउ ॥

कवि पुष्पदन्तका देशी भाषामें नागकुमार-चरितके समान यह भी सुन्दर खण्डकाव्य है। इसमें यशोधर राजाका चरित्र वर्णित है। कविने

यशोधर-चरित

जनताकी भावनाका चित्रण यशोधरके चरित्रमें किया है। वीर-गाथाकालीन रचना होनेके कारण शक्ति और शौर्यका प्रदर्शन अधिक किया गया है। इस काव्यमें मूर्त्त जीवनमें अमूर्त्तको, स्थूल शरीरमें सूक्ष्मको और क्षण-भंगुर संसारमे नित्य और अमर-तत्त्वको अभिव्यञ्जित करनेका प्रयास किया है। लौकिक प्रेमकी विभिन्न

अवस्थाओंका उद्‌घाटन जीवनके विभिन्न चित्रो-द्वारा किया है। वर्णन और दृश्य-योजना भी सुन्दर बन पडी है।

धर्मसूरि विरचित १३ वी शतीका यह खण्डकाव्य है। इसमे भगवान् महावीरके समकालीन जम्बूस्वामीका चरित्राकन किया है। यह गृहस्थ अवस्थामें ही अपने बुद्धि-कौशल और वीरत्वके लिए प्रसिद्ध थे। मगधसम्राट् बिम्बसारके आदेशानुसार इन्होने पर्वतीय शत्रुको परास्तकर गौरव प्राप्त किया और अन्तमें भगवान् महावीरके संघमे दीक्षित हो तपस्या की और निर्वाण-पद पाया। कविने इसमें गार्हस्थ्य जीवनका सुन्दर चित्रण किया है। दाम्पत्यको मर्यादामे बद्ध कर शृङ्गारिक जीवन आध्यात्मिक जीवनपर किस प्रकार छा जाता है, इसका दिग्दर्शन कराया है।

जम्बूस्वामीरासा

दर्पोक्तियाँ वीर-रसके पोषणमें कहाँ तक सहायक हैं, यह पर्वतीय राजा-के दर्पसे स्पष्ट है। आत्म-विश्वास और आत्म-गौरवकी भावनाका जम्बू-स्वामीमे अकनकर उनके प्रतिनायक पर्वतीय राजाके विचारोका कच्चा चिट्ठा सुन्दर ढगसे दिखलाया है। रस, नायक, दृश्यविधान, घटना-वैचित्र्य आदिकी दृष्टिसे यह खण्डकाव्य है, पर सवादोंका अभाव और कथा-वस्तुकी शिथिलता इसके सौन्दर्यको विकृत करनेमे सहायक हैं।

सभी रासा ग्रन्थ एक ही शैलीपर लिखे गये है। इनमें से अधिकाश खण्डकाव्योंमें काव्यत्व अल्प और पौराणिकता अधिक है। धर्मवार्ता होनेके कारण सुन्दर नीति और विश्वोपकारकी भावना अन्तर्हित है। इन ग्रन्थोके रचयिताओने धार्मिक आस्था-को खुलखुलानेके लिए सुदृढ और सौम्य दृष्टान्तोको प्रस्तुत किया है। मानवको इन्द्रिय और मनकी दासतासे छुड़ाकर अतीन्द्रिय आनन्दकी चौरस भूमिमें ला उपस्थित किया है। रासा ग्रन्थोंमे प्रेम और विरहके चित्रोका भी अभाव नहीं है। वेदनाकी अग्निमे तपाकर आध्यात्मिक रसानुभूतिकी तीव्रता दिखलायी है। वीर रसका चित्रण तो इन काव्योमे

अन्य रासा ग्रन्थ

सफल हुआ है। किन्तु शान्तरस निरुपणकर सभी रास पर्यवसानको प्राप्त हुए हैं। जीवनके आवरणमें छुपे चिरन्तन राग-द्वेषोंका जिस कविको जितना गहरा परिज्ञान होगा, वह उतना ही सफल खण्डकाव्य लिख सकेगा। जैन कवियोंमें यह परख-विद्यमान थी, जिससे वे राग-द्वेषका परिष्कार करनेवाली वैराग्यप्रद परिस्थितियोंका निर्माणकर काव्यजगत्‌में सफल हुए। जीवनके क्रिया-व्यापारोंका संचालन रासग्रन्थोंके रचयिताओंमें विद्यमान था, जिससे वे घटना-विधानमें अधिक सफल हो सके हैं।

अंजनासुन्दरी रासामें अजनाके विरहका ऐसा सुन्दर चित्रण किया गया है, जिससे विरहिणीके जीवनकी समस्त परिस्थितियोंका चित्र सामने प्रस्तुत हो जाता है। संस्कृत साहित्यमें विरहकी जिन दस दशाओंका निरूपण किया गया है, वे सभी अंजनाके जीवनमें विद्यमान हैं। विरहमें प्रियसे मिलनेकी उत्कठा, चिन्ता अथवा प्रियतमके इष्ट-अनिष्टकी चिन्ता, स्मृति, गुणकथन आदि सभी नैसर्गिक ढगसे दिखलाये गये हैं।

विरहिणी अजनाके जीवनमें कविने सहानुभूतिकी भी कमी नहीं दिखलायी है। पति-द्वारा अकारण तिरस्कृत होनेसे अजनाके मनमें अत्यन्त ग्लानि है, वह अपने सुखी बाल्यकालकी स्मृतिका पतिके प्रथम साक्षात्कार-की मधुर स्मृतिके अनुभव-द्वारा अपने दुःख-संकटके समयको प्रसन्नता-पूर्वक विता देती है। भगवद्भक्ति और सदाचार ही उसके जीवनका आधार हैं। वह एक क्षण भी अधार्मिक जीवन विताना पाप समझती है। पतिके इतने बडे अन्यायको भी प्रसन्नतापूर्वक सहन करती हुई, अपने भाग्यको कोसती है। अंजनामें अपूर्व शालीनता है, पातिव्रतकी ज्योति प्रभामण्डल बनकर उसे आलोकित कर रही है।

अंजनाको गलतफहमीके कारण उसकी सास गर्भावस्थामें घरसे निकाल देती है। उस समयकी उसकी करुण अवस्थाको देखकर निष्ठुरता भी रुदन किये विना नहीं रह सकती है। यह एक सरस खण्ड काव्य है। यद्यपि इसकी भाषा पर गुजरातीका पूर्ण प्रभाव है, तो भी रस-परिपाकमें

मी नहीं आयी है। इसके रचयिता कवि महानन्द हैं। वसन्तका चित्रण करता हुआ कवि कहता है—

मधुकर करइं गुंजारव मार विकार वहंति।
कोयल करइं पटहूकड़ा टूकड़ा मेलवा कन्त॥
मलयाचल थी चलकिरा पुलकिड पवन प्रचण्ड।
मदन महानृप पाझइ विरहीनिं सिर दंड॥

'लघुसीता सतु' कवि भगवतीदासका एक सुन्दर खण्डकाव्य है। इसमें कविने सीताके सतीत्वकी झाँकी दिखलायी है। बारह मासोंमें मन्दोदरी-सीताके प्रश्नोत्तरके रूपमे रावण और मन्दोदरीकी चित्तवृत्तिका सुन्दर विश्लेषण किया गया है। मानसिक घात-प्रतिघातोंकी तस्वीर कितनी चतुराईसे खींची गयी है, यह निम्न उदाहरणसे स्पष्ट है—

तब बोलइ मन्दोदरी रानी। सखि अषाढ़ घनघट घहरानी॥
पीय गये ते फिर घर आवा। पामर नर नित मंदिर छावा॥
लवहिं पपीहे दादुर मोरा। हियरा उमग धरत नहिं धीरा॥
बादर उमहि रहे चौपासा। तिय पिय बिनु लिहिं उरुन उसासा।
नन्ही बून्द झरत झर लावा। पावस नभ आगमु दरसावा॥
दामिनि दमकत निशि अँधियारी। विरहिनि काम बान उरमारी।
भुगवहि भोगु सुनहि सिख मोरी। जानति काहे भई मति बौरी॥
मदन रसायनु हइ जग सारू। संजमु नेमु कथन विवहारू॥

जब लग हंस शरीर महिं, तब लग कीजइ भोगु।
राज तजहिं भिक्षा भमहिं, इउ भूला सबु लोगु॥

कृपणजगावन काव्य कविवर ब्रह्मगुलालने १७वीं शतीमें इस काव्यकी रचना की है। इसकी कथावस्तु रोचक और सरस है।

राजगृह नगरमें वसुमति राजा शासन करता था। इसी नगर

श्रेष्ठपुत्री क्षयंकरी रहती थी। राजाने मुनिराजसे क्षयंकरीकी भवावली पूछी। मुनि कहने लगे—

यह पहले भवमें उज्जैनके सेठ धवलकी पत्नी थी, इसका नाम मल्लि देवी था। उज्जैनके राजा पद्मनाथने अष्टाह्निका पर्वका उत्सव सामूहिक रूपसे मनाया, धवल सेठ भी इसमें शामिल हुआ, पर मल्लि सेठानीको यह नहीं रुचा। पूजाके लिए सामग्री और पकवान बनवाये अवश्य, किन्तु अच्छी वस्तुएँ न लेकर सड़े गले सामानसे सामग्रियाँ तैयार कीं, जिससे मुनियोंको आहार नहीं दिया जा सका। मल्लिकी भावनाएँ सदा कलुषित रहती थीं; दान धर्ममें एक कानी कौड़ी भी खर्च करनेमें उसके प्राण सूखते थे; इस कारण पतिसे निरन्तर संघर्ष होता रहता था। इस कंजूसीके परिणामस्वरूप ही वह कुष्ठ रोगसे पीड़ित हो गयी। मुनिराज आगे बोले—स्त्रियाँ ही लोभ नहीं करतीं, पुरुष भी परमलोभी होते हैं। वह कहने लगे कि कुण्डलनगरमें लोभदत्त सेठ रहता था, कमला और लच्छा उसकी उदारमना पत्नियाँ थीं, दोनों स्त्रियोंमें अत्यन्त स्नेह था। सेठ बहुत ही लोभी था, जब कहीं वह जाता तो अपने भण्डार-घरका ताला बन्द कर जाता।

एक दिन दो चारणमुनि सौभाग्यसे वहाँ आये, उनके वहाँ उतरते ही द्वार खुल गया। मुनिराजोंको आहारदान देनेसे उन्हें आकाशगामिनी और बन्धमोचनी विद्याएँ सिद्ध हो गयीं। अतः सेठके घरसे बाहर जानेपर वे दोनों अपनी विद्याओंके प्रभावसे तीर्थाटन करने लगीं। एक दिन पड़ोसिन रुठकर आयी और छिपकर उनके विमानमें बैठ गयी, दोनों सेठानियोंके साथ उसने सहस्रकूट चैत्यालयके दर्शन किये और वहाँसे मूल्यवान रत्न ले आयी। संयोगकी बात वे क़ीमती रत्न लोभदत्त सेठके हाथ बेचे। रत्नोंके सौंदर्य और गुणोंपर मुग्ध होकर सेठ उससे कहने लगा, 'तू जहाँसे इन रत्नोंको लायी है, उसकी खान बतला दे'। लोभमें आकर पड़ोसिनने सेठको विमानमें छुपाकर बैठा दिया। रत्नद्वीपसे लौटते समय

मार्गमें अकस्मात् वह विमान फट गया और सेठकी मृत्यु हो गयी। सेठानियोंने संसारके स्वरूपका विचारकर धैर्य धारण किया और अन्तमें समाधिपूर्वक प्राण-विसर्जन करनेके कारण देव हुई।

मुनिराजके उपदेशसे क्षयकरीको विरक्ति हो गयी और उसने तपस्या-द्वारा प्राण विसर्जनकर देव-पर्याय प्राप्त की।

यद्यपि इसमे खंडकाव्यके अनेक लक्षण नहीं भी पाये जाते हैं, फिर भी जीवनको प्रभावित करनेवाली घटनामें सार्वजनीन चित्रण है। इसका नायक धवलसेठ और नायिका मल्लिदेवी है। नायक सात्त्विक प्रकृतिका है और नायिका तामसी प्रकृतिकी, इसमें लोभकी पराकाष्ठा है। मल्लिकी आधिकारिक कथावस्तु है और लोभदत्त सेठकी कथा प्रासंगिक है। दोनों कथाओंमें अन्विति है। लोभीकी सूक्ष्म मानसिक दशाओंका चित्रण करनेमें कविको पूर्ण सफलता मिली है।

खण्डकाव्यत्व

खरी आलोचनाकी दृष्टिसे वह सफल खंडकाव्य नहीं भी ठहरता है, पर जीवनके कतिपय तत्त्वोंका विवेचन ऐसा मार्मिक हुआ है, जिससे इसे सफल खंडकाव्य कहा जा सकता है। पाश्चात्य समीक्षा पद्धतिमें नायकका वर्ग और जातिका प्रतिनिधि होना तथा परिस्थितियोंका ऐसा निर्माण रहे, जिससे नायक अपना विस्तार कर सके और उसके चरित्रका दर्शन सभी कर सके खंडकाव्यका विषय है। वस्तु, संवाद आदि भी इसके सफल हैं।

नेमिचन्द्रिका

कवि मनरङ्गलाल विरचित यह एक खण्डकाव्य है। इसकी भाषा कन्नौजीसे प्रभावित खड़ी बोली है। भगवान् नेमिनाथका चरित कवियोंके लिए अधिक आकर्षक रहा है, अतएव अपभ्रंश और हिन्दीमें अनेक रचनाएँ काव्यरूपमें लिखी गयी हैं।

कथावस्तु

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके अन्तर्गत सौराष्ट्र देशमे द्वारावती नगरी थी। इस नगरीमें राजा समुद्रविजय राज्य करते थे। ये बड़े धर्मात्मा पराक्रमशाली और शूरवीर थे। इनकी रानीका नाम शिवदेवी था। इनके पुत्रका नाम नेमिकुमार रखा गया।

नेमिकुमार बचपनसे ही होनहार, धर्मात्मा और पराक्रमशाली थे। इन्हींके वंशज कृष्ण और बलभद्र थे। कृष्णने अपने भुजबल-द्वारा कंस, जरासंध जैसे दुर्दमनीय राजाओंका क्षणभरमें संहार कर दिया था। इनकी सोलह हजार रानियाँ थीं, जिनमें आठ रानियाँ पट्टमहिषीके पदपर प्रतिष्ठित थीं। एक समय नेमिकुमारके पराक्रमको सुनकर कृष्णके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न हुई तथा इन्होंने उनकी शक्तिकी परीक्षाके लिए उनको अपनी सभामें आमन्त्रित किया। नेमिकुमार यथासमय कृष्णकी सभामें उपस्थित हुए और अपनी कनिष्ठ अँगुलीपर जंजीर डालकर कृष्ण आदिको झुला दिया, कृष्णको इनके इस अद्भुत पराक्रमको देखकर महान् आश्चर्य हुआ। फलतः उन्होंने अपनी पट्टरानियोंको नेमिस्वामीके पास भेजा। रानियोंने चारों ओरसे नेमिकुमारको घेर लिया ओर अधिक अनुरोध करनेपर विवाह करनेकी स्वीकृति प्राप्त कर ली। कृष्णने नेमिकुमारका विवाह जूनागढ़के राजा उग्रसेनकी कन्या राजुलमतीसे निश्चित कराया। वहाँपर इन्होंने अपनी कूटनीतिसे पशुओंको पहलेसे कैद करवा दिया। जिससे अगवानीके पश्चात् टीकाको जाते समय पशुओंकी चीत्कार नेमिस्वामीको सुनाई दी।

पशुओंके इस करुणक्रन्दनको सुनकर नेमिकुमारको संसारकी सार-हीनताका अनुभव हुआ और उन्हें विषय-कषायोंसे विरक्ति हो गयी। पशुओंको बन्दीगृहसे मुक्तकर नेमिकुमार वरके वस्त्राभूषणोंको उतार दिगम्बर दीक्षा ले गिरनार पर्वतपर तपस्या करने चले गये। एक क्षण पहले जो हर्ष और उल्लास दिखलायी पड़ रहा था, विवाहकी मधुर सहनाई बज रही थी; दूसरे ही क्षण यह हर्षका वातावरण शोकमें परिणत हो गया। सहनाई बन्द हो गयी। वरके बिना विवाह किये चले जानेसे अन्तःपुरमें रोना-धोना शुरू हो गया। महाराज उग्रसेन चिन्तामग्न हो गये। राजुलमतीको जब यह समाचार मिला तो वह मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पडी। प्रयत्न करनेपर जब उसे होश आया तो वह विलाप करने लगी।

माता-पिताने राजुलमतीको अन्य वरके साथ विवाह करनेके लिए

बहुत जोर दिया, पर उसने कहा—"भारतीय रमणी एकबार जिसे आत्म-समर्पण कर देती है, फिर वही सदाके लिए उसका अपना हो जाता है। भले ही लोगोंके दिखावेके लिए विवाहकी रस्म पूरी न हुई हो। स्वामी तप करने चले गये, मैं भी उन्हींके मार्गका अनुसरण करूँगी।" इतना कहकर राजुल भी तपस्या करने गिरनार पर्वतपर चली गयी।

इस काव्यमे शान्तरस, वात्सल्यरस, करुणरस और विप्रलम्भ शृंगारका सुन्दर परिपाक हुआ है। सीमित मर्यादामे स्वस्थ वातावरणको उपस्थित करनेवाला विप्रलम्भशृङ्गार विशेषरूपसे राजुलके विलाप-वर्णनमे आया है। करुणरसके वर्णनमें शब्द स्वयं करुणाका मूर्तिमान रूप लेकर प्रस्तुत हुए हैं। कविको इस रसके परिपाकमे अच्छी सफलता मिली है। मानवकी राग-भावनाओंका चित्र प्रस्तुत करनेमे कुशल चित्रकारका कार्य कविने कर दिखलाया है।

अलंकारोंमे अनुप्रास, यमक, उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा और अतिशयोक्तिका समावेश सर्वत्र है। छन्दोंमे दोहा, चौपाई, भुजगप्रयात, नाराच, सोरठा, अडिल्ल, गीता, छप्पय, त्रोटक, पद्धरी आदि छन्दोंका प्रयोग किया गया है। गणदोष, पददोष, वाक्यदोष और यतिभग आदिका अभाव पाया जाता है। कोमलकान्तपदावलीयुक्तभाषा अपूर्व विकासको लिये हुए है।

इस काव्यका सन्देश यह है कि प्रत्येक व्यक्तिको जीवनमे जनसेवाको अपनाना चाहिए। इसके लिए परिश्रमी, अध्यवसायी, कर्मठ, चारित्रवान्, आत्मशोधी, उदार और परोपकारी बनना आवश्यक है। निष्क्रिय और अकर्मण्य व्यक्ति ससारमे कुछ भी नहीं कर पाता है। हिंसासे हिंसाकी आग नहीं बुझाई जा सकती है, घृणासे घृणाका अन्त नही हो सकता है। प्रेम, क्षमा, अहिंसा, सहानुभूति और आत्मसमर्पण-द्वारा ही शान्तिकी स्थापना की जा सकती है।

कविने इसमें नेमिकुमारके उस जीवन-अंशको दिखलाया है, जिसका

अनुकरण कर समाज, देश और जातिकी भलाई की जा सकती है। परोपकार या सेवा करनेके पहले अपना आत्मशोधन करना आवश्यक है, जिससे सेवक अपने सेवाकार्यसे च्युत न हो सके।

चरित और कथा-काव्य

हिन्दी जैन साहित्यमे महाकाव्य और खण्डकाव्योंके अतिरिक्त कुछ काव्यग्रन्थ ऐसे भी हैं, जिनमे काव्यत्व अल्प और चरित्र अधिक है। धर्मोपदेश देनेके लिए तीर्थंकरो या अन्य पुरुषोंके चरित्र लिखे गये है। कुछ ऐसी कथाऍ भी पद्यबद्ध है, जो व्रतोकी महिमा प्रकट करनेके लिए लिखी गई हैं। अपभ्रंश भापामे १०-१५ चरित ग्रन्थ, २ बड़े-बडे कथाकोश एव ३०-३५ छोटी-छोटी कथाऍ आज भी उपलब्ध है। इसी प्रकार हिन्दीमे लगभग १०० चरित ग्रथ और २०० कथाऍ उपलब्ध हैं। इन कथाओमे चरित्र-चित्रणके साथ आनन्द और विषादका अपूर्व मिश्रण विद्यमान है। काव्यके मूल आलम्बन राग-द्वेपके विभिन्न रूपान्तर इन कथाओं और चरितकाव्योमे पाये जाते है। जीवनमे पाये जानेवाले भावोका चरित्र-काव्योमे यथेष्ट समावेश हुआ है। चरितोमे भिन्न-भिन्न पात्रोंकी भिन्न-भिन्न प्रकृतियोंकी सूक्ष्मता दिखलायी गयी है। सास्कृतिक विशेपताऍ तो इन ग्रन्थोमें विशेपरूपसे उपलब्ध है।

ये चरितग्रंथ और कथाग्रंथ रोचक होनेके साथ अहिंसा सस्कृतिके विशाल भवनकी झॉकियॉ सामने प्रस्तुत करते है। पाठक इनके अध्ययन और स्वाध्यायसे कुछ समयके लिए सासारिक विपमताओको भूल जाता है, उसके सामने आदर्शका एक ऐसा मनोरम चित्र खिच जाता है, जिससे वह अपनी कुत्सित वृत्तियोको परिष्कृत करनेके लिए सकल्प कर लेता है। यद्यपि अपनी मानवीय कमजोरीके कारण पाठक थोड़े समयके पश्चात् ही अपने सकल्पको भूल जाता है और पुनः विपय-कपायोमे आसक्त हो पूर्ववत् आचरण करने लगता है, तो भी सत् सस्कारोका निर्माण होता ही है।

इन ग्रन्थोंमे स्त्री-पुरुपोकी नैसर्गिक विशेपताऍ भी दिखलाई पडती

हैं। घटनाओकी कुशल संघटनकी ओर प्रत्येक लेखक बहुत सावधान रहा है, जिससे चरितोंमे रंजन-शक्तिकी भी कमी नही आने पायी है। जीवन और जगत्‌की लोकरंजनकारिणी अभिव्यञ्जना करनेमें कथाकाव्यके निर्माताओको पर्याप्त सफलता मिली है। इन्होने भावोन्मेष और मानव-मन-रंजिनी शक्तिकी अभिव्यक्ति इतनी चतुराईसे की है, जिससे रसोद्रेकमे तनिक भी कमी नहीं आने पायी है।

वस्तु और उद्देश्यकी दृष्टिसे इन ग्रन्थोमे शान्तरस प्रधान है परन्तु इसके एक ओर करुण और दूसरी ओर वीररसकी धारा भी कल-कल निनाद करती हुई अबाध गतिसे बहती है। कहीं-कहीं विप्रलम्भ शृगार भी प्रबल वेगके साथ कगार तोड़ता हुआ-सा दृष्टिगोचर होता है, परन्तु शान्तरसके सामने उसे भी हारकर सिर झुका लेना पड़ता है। व्यग, विनोद और हास्यकी भी कमी इन ग्रन्थोमे नही है।

सामन्तकालीन अन्तःपुरोकी विलासिताका चित्रण भी कवियोने विषय-कषायोके त्यागके लिए ही किया है। आदिसे अन्त तक स्वस्थ बौद्धिक दृष्टिकोण (Intellectual vision) उपस्थित किया गया है। निस्सग सरोवरमे मज्जन करनेके लिए रमणियोके विलास-वैभवका अतिरेक प्रस्तुत किया गया है। झूठा आदर्श जीवनके लिए मगलप्रद नहीं हो सकता, यह चरित-काव्योंसे स्पष्ट है। जैन कवियोने भावोंकी अतल गहराईसे उतरकर इन चरितोंमे भी अमूर्त भावनाओको मूर्तरूप प्रदान करनेका प्रयास किया है। पाठकोकी जिज्ञासाको उत्तरोत्तर तीव्र करनेके लिए कथाओंको गतिशीलता दी गयी है। अतः ये कथाएँ व्रत या चरित्र पालनेके लिए भावोत्तेजक (thought Provocation) है।

काव्यकी दृष्टिसे इनमें कविता अलंकृत नही की गयी है। शब्दचयन और वाक्ययोजना भी चमत्कारपूर्ण ढगसे नहीं हुई है तथा महाकाव्य या खण्डकाव्यके विधानका अनुसरण भी इनमें नहीं हुआ है। इसी कमीके

कारण इनको पृथक् काव्यकोटिमें रखा जा रहा है। चरित और कथा-ग्रथ इतने अधिक है, कि इनका अनुशीलनात्मक परिचय देना असभव-सा है। अतएव इस प्रकरणमें केवल तीन-चार ग्रथोंके अनुशीलन देकर ही इस कोटिके काव्योंसे परिचित करानेका प्रयास किया जायगा। इस चरितात्मक विशाल साहित्यका परिशीलन स्वय एक वृहद् ग्रथ बन सकता है।

गजसिंह-गुणमाल चरित[1]

यह सुन्दर चरित-काव्य है। इसमें गजसिंह-गुणमालका प्राचीन आख्यान दिया गया है। प्रसंगवश कविने अपने समयके समाज, सम्प्रदाय और राज्यका भी चित्रण किया है। कवि कहता है कि गोरखपुरी नगरीमें अरिमर्दन नामका राजा राज्य करता था, इसकी कनकावती नामकी रानीकी कोखसे गजसिह नामके राजकुमारका जन्म हुआ था। गजसिंहके विवाहके अनतर राजा-रानी अपने पुत्रको राज्यभार सौंप स्वय चारित्र पालनेके लिए वनवासी हो गये। इसी गोरखपुरीमें एक सेठकी कन्या गुणमालाके रूप सौन्दर्यपर मुग्ध होकर गजसिंहने उसके साथ विवाह किया था। कारणवश गजसिंह गुणमालासे रूठ गया और गुणमाला अकेली रहने लगी। एक विद्याधरने उसे शीलधर्मसे च्युत करना चाहा, परन्तु गुणमाला अपने व्रतपर दृढ़ रही। गुणमालाको शीलवती जानकर विद्याधरने अनेक विद्याएँ उसे भेंट कीं।

अब गजसिंह उससे सशक रहने लगा। वह किसी पुरुषकी तलाशमें रहा और यन्त्र-मन्त्रके चक्करमें बहुत दिनों तक पड़ा रहा। उसने देवी, भैरव और यक्षको प्रसन्न करनेके लिए अनेक यत्न किये। उसकी इस प्रवृत्तिसे एक तान्त्रिक अवधूतने लाभ उठाया और उसने अपने आधीन कर लिया। योगीने एक योगिनी-द्वारा गुणमालाकी परीक्षा करायी। गुणमाला शीलशिरोमणि थी, उसके आगे किसीकी कुछ भी न चली।

---

१. यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। प्रति प्राप्तिस्थान—जैनसिद्धान्तभवन, आरा।

कुछ समय बाद गजसिंह और गुणमालामें पुनः सन्धि हो गयी और दोनो आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक दिन एक विद्याधरी गजसिंहको और विद्याधरीका पति गुण-मालाको उठाकर ले गया। दोनोंने दोनोंको वासनानुरक्त बनानेके अस-फल प्रयत्न किये। वे पति-पत्नी दोनो ही अपने शीलव्रतमें दृढ रहे। उनकी दृढताके कारण विद्याधर-दम्पत्तिकी वासना काफूर हो गयी, और वे सकट-मुक्त हो पुनः मिले।

कुछ समय पश्चात् दम्पतिने श्रीसम्मेद शिखरकी यात्रा की। कालान्तर-में इन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस पुत्रको घोड़ेपर चढकर चौगान खेलनेका बहुत शौक था। एक दिन रत्नशेखर मुनिसे इस राजकुमारने भी स्वदारसन्तोष और परिग्रहपरिमाण व्रत ग्रहण किये। विदर्भ नगरकी राजकुमारीसे इसका विवाह हुआ। अन्तमें गजसिंह और गुणमालाने धर्मघोष मुनिसे जिनदीक्षा लेकर तप किया।

इस चरितमे मानव-जीवनके राग-विरागोंका सुन्दर चित्रण हुआ है। इसमे अनुरक्त और विरक्त युवक-युवतियोंकी मनोवृत्तिका बड़ा ही सरस और हृदयग्राह्य चित्रण किया गया है। वैभवकी अपारराशिके बीच रहकर भी व्यक्ति किस प्रकार प्रलोभनोंको ठुकराकर नैतिकताका परिचय दे सकता है, यह गुणमालाके चरितसे स्पष्ट है। नारीका सारा अवसाद पातिव्रतसे ही दूर हो सकता है, स्वर-लहरीके प्रकम्पनमे नारीकी आत्म-ज्योति जाग्रत होती है। मिथ्याविश्वास और आडम्बर जीवनको कितना विकृत करते है, यह गजसिंहकी मन्त्र-तन्त्रकी साधनासे स्पष्ट है। दृढ़ विश्वासकी विद्युत् बड़े-बडे सकटोंके पर्वतोंको चूर-चूर करनेकी क्षमता रखती है।

नारी जीवनमें लज्जाका आवरण मगल-सूत्र है, इसके फट जानेसे वेदनाका ज्वार दबाये नहीं दबता, जीवन नारकीय बन जाता है।

कविने वन, नदी, सन्ध्या और उषाका भी सरस चित्रण किया है।

५

उपमा, उत्प्रेक्षा, यमक, रूपक, अनुप्रास और उदाहरण अलंकारोंकी भरमार है। भाषा और उक्तिको अलंकृत बनानेकी कविने पूरी चेष्टा की है। शृंगार, करुण, वीर, बीभत्स और शान्तरसका परिपाक यथास्थान अच्छा हुआ है। अनेक स्थानोंमें काव्य-चमत्कार भी विद्यमान है।

श्रीपालचरित

इस चरितके रचयिता परिमल कवि हैं। इसमें श्रीपाल और मैना-सुन्दरीकी प्रसिद्ध कथा लिखी गयी है। देश और पुरीका वर्णन विशद रूपमे किया गया है। जीवन-कथाको सीधे और सरल ढगसे व्यक्त कर कविने घटनाओंकी क्रमबद्धताका पूरा निर्वाह किया है। इसमे धर्म और अधर्मका संघर्ष, पाप और पुण्यका द्वन्द्व, हिंसा और अहिंसाके घात-प्रतिघात मार्मिक ढगसे व्यक्त किये गये हैं। अभिमान व्यक्तिको कितना नीचे गिरा देता है, अविवेकसे बुद्धिका सर्वाभाव किस प्रकार हो जाता है, यह मैनासुन्दरीके पिताकी हठआहितासे स्पष्ट है।

दोहे और चौपाई छन्दमें ही यह चरित-ग्रन्थ लिखा गया है। प्रास-योजनामें कविको अच्छी सफलता मिली है। यतिभंग या छन्दोभंग कहीं भी नहीं मिलेगा। गेय छन्दका प्रयोग करनेसे भावनाओंको गतिशील बनानेका आयास प्रशस्य है। भाषाकी दृष्टिसे इसमें ब्रज, अवधी, बुन्देल-खण्डी और मारवाड़ीका पूरा मिश्रण है। कहींपर दीनी, लीनी; कहीं दियो, लियो, अजहूँ और कहीं कहाणे, सुवासणि, सीसाण और भर्णूं आदि शब्दोंका प्रयोग हुआ है। तत्सम शब्द बहुत कम आये हैं। वाहन, कोढ़ी, परवीण आदि तद्भव शब्दोंका प्रयोग बहुलतासे हुआ है।

वर्णनमें कवि यथास्थान उपदेश देनेसे नहीं चूका है। धवल सेठको धिक्कारते हुए उपदेशोंकी झड़ी लगा दी है।

इस चरितके रचयिता कवि हीरालाल है। इसमें काव्य-चमत्कार विद्यमान है। ८वें तीर्थंकर भगवान् चन्द्रप्रभकी जीवन-गाथा इसमें वर्णित की गयी है। इस चरितमे १७ सन्धियाँ हैं। आरम्भमे श्रोता, वक्ता, नमस्कार और त्रिलोक वर्णनको विस्तार देनेके कारण कथाका आरम्भ बहुत दूर जाकर किया गया है। जो व्यक्ति आरम्भसे ही कथा-जिज्ञासु है, वह इस वर्णनके पढ़नेसे ऊब-सा जाता है। आरम्भमें चार सन्धियोंमें ऋषभदेवके चरितका ही वर्णन किया गया है। पाँचवी सन्धिसे दसवीं सन्धितक पद्मनाभके भवान्तरोंका विशद वर्णन किया गया है। इस प्रकार दस सन्धियो तक चरित-नायकके जीवनके सम्बन्धमें कुछ भी प्राप्त नहीं हो पाता है। ग्यारहवी सन्धिमे भगवान् चन्द्रप्रभका गर्भावतार दिखलाया गया है। भव-भवान्तरोकी प्रासंगिक कथाओंको कविने इतना रोचक बनाया है, जिससे जिज्ञासु पाठकोंका मन ऊबता नहीं है। ये कथाएँ आधिकारिक कथासे जुटी हुई हैं, समस्त झरने एक ही साथ मन्दाकिनीका रूप धर ग्यारहवी सन्धिमें उपस्थित हो जाते है।

चन्द्रप्रभचरित

भगवान् चन्द्रप्रभ काशीके नृपति महासेनकी पट्टरानी लक्ष्मणाके गर्भसे उत्पन्न हुए। नगरीके सौन्दर्य और वनविभूतिके चित्रणमे कविने अपना पूरा उपयोग लगाया है। वनवर्णनमें कितने ही प्रसिद्ध, अप्रसिद्ध मेवे और फलोके नाम गिनाये है। उदाहरणार्थ एक पद्य उद्धृत किया जाता है—

कमरख करपट कैर कैथ कटहर किरमारा।
केरा कौच कसेर कंज कंकोल कव्हारा॥
खिरनी खैर खजूर खिरहरी खारख खेजर।
गौंदी गौरख पान गुंज गूलर गुह्म गोझर॥

बारहवी सन्धिमे भगवान्की बाललीलाओंका बड़ा ही सरस चित्रण किया है। उनकी वेषभूषा, अनुपम शौर्य-पराक्रम, ज्ञान एवं अन्य कर्मोंका

चित्रण किया गया है। तेरहवी सन्धिमे ससारके स्वार्थ, राग, द्वेष और क्षणभगुर रूपको देख चन्द्रप्रभकी विरक्तिका वर्णन किया है। वे ससारकी वस्तुस्थितिका नाना प्रकारसे विचार करते हैं। शरीर, धन-वैभव जो एक क्षण पहले आकर्षक मालूम पड़ते थे, वे भी विरक्त हो जानेपर काटनेको दौडते हैं। कविने इस स्थलपर मानवीय भावनाओसे आरोपित प्रकृतिके बीभत्स रूपका सुन्दर विश्लेषण किया है।

चौदहवीं सन्धिमे केवलज्ञान प्राप्तकर भगवान्ने ससारसे तप्त और मार्गभ्रष्ट प्राणियोंको कल्याणका मार्ग बतलाया है। इस प्रकरणमे आत्मा-ही परमात्मा है, यही कर्त्ता, भोक्ता और अपने उत्थान-पतनका उत्तरदायी है, आदि बतलाया गया है। पन्द्रहवीं सन्धिमे ज्ञानका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और सोलहवी सन्धिमे चन्द्रप्रभ स्वामीका मोक्षगमन तथा सत्रहवींमें कविने आत्मपरिचय लिखा है।

वर्णनशैलीमे प्रवाह है, भाषा सानुप्रास है। कवितामे ताल, स्वर और अनेक राग-रागनियोका भी समावेश किया गया है। अनुप्रास, यमक, विरोधाभास, श्लेष, उदाहरण, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलंकारकी यथास्थान योजना की गयी है। निम्न पद्य दर्शनीय हैं—

कवल बिना जल, जल बिन सरवर, सरवर बिन पुर, पुर बिन राय।
राय सचिव बिन, सचिव बिना बुध, बुध विवेक बिन शोभ न पाय॥

इस प्रकार भाव, भाषा और शैली आदिकी दृष्टिसे यह चरित सुन्दर काव्य है।

वर्द्धमानचरित

इस चरितके रचयिता कवि नवलशाह हैं। इसमे अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरका जीवनचरित विस्तार-पूर्वक वर्णित है। इसमे सोलह अधिकार हैं। आरम्भमें वक्ता, श्रोता आदिका लक्षण बतलाया है। वर्द्धमान स्वामीके पूर्वभवोंका वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि पुष्कलावती देशमे पुण्डरीकिणी नगरीके वनमे पुरुरवा भील रहता था। इसने श्रावकके व्रत ग्रहण किये,

व्रतोके प्रभावसे वह मरकर सौधर्म स्वर्गमे देव हुआ और वहाँसे च्युत होकर भरतचक्रवर्तीके मरीचिकुमार नामका पुत्र हुआ। भगवान् आदिनाथके साथ मरीचिकुमारने भी जिनदीक्षा ग्रहण की। दीक्षासे भ्रष्ट होकर इन्हे अनेक योनियोमे भ्रमण करना पडा। अनेक जन्म धारण करनेके उपरान्त यही मरीचिकुमारका जीव कुण्डलपुर नगरमे राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणीके वर्द्धमानकुमार नामका पुत्र हुआ। कुमार वर्द्धमानकी शूरवीरता, ज्ञान एव दिव्य तेजसे प्रभावित होकर ही लोगोने इनके नाम महावीर, सन्मति एव वीर रखे थे। यह आजन्म अविवाहित रहे। ३० वर्षकी अवस्थामे ससारसे विरक्त हो तप करने चले गये और आत्मशोधन कर अशान्त विश्वको शान्तिका उपदेश दिया। अब महावीर भगवान् महावीर बन गये, इनका उपदेशामृत पान करनेके लिए मनुष्य ही नही, पशु, पक्षी, देव, दानव सभी आते थे। भगवान् महावीरने समस्त आर्यदेशोंमें विहारकर जनताको कर्तव्यमार्गका उपदेश दिया। अन्तमें मोक्ष लाभ किया।

इस चरित-काव्यमे सभी प्रसिद्ध छन्दोका प्रयोग किया गया है। कविता साधारणतः अच्छी है। सिद्धान्त और आचारकी बातोंका निरूपण बडे विस्तारके साथ किया गया है। नख-शिख वर्णनमें भी कवि किसीसे पीछे नही है। महारानी प्रियकारिणीके रूप सौन्दर्यका चित्रण करता हुआ कवि कहता है—

अम्बुजसौ जुग पाय बनै, नख देख नखत्त भयौ भय भारी।
नूपुरकी झनकार सुनै, दग शोर भयौ दशहू दिश भारी।
कंदल थंभ बनै जुग जंघ, सुचाल चलै गजकी पिय प्यारी।
क्षीन बनौ कटि केहरि सौ, तन दामिनी होय रही लज सारी॥
नाभि निवौरियसी निकसी पढहावत पेट सुकंचन धारी।
काम कपिच्छ कियौ पट अन्तर, शील सुधीर धरै अविकारी॥

भूषन बारह भाँतिनके अँत, कण्ठमें ज्योति लसै अधिकारी।
देखत सूरज चन्द्र छिपै, मुख दाडिम दंत महाछविकारी॥

भाषा ब्रज, बुन्देली और खड़ी बोलीका मिश्रित रूप है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति अलकारोंका प्रयोग अनेक स्थलो पर किया गया है।

१७ वी शतीमे रायमल्लके प्रद्युम्नचरित और सुदर्शन चरित, १९ वीं शतीमें ज्ञानविजयका मलयचरित, नथमल विलालाके नागकुमार-चरित और जीवन्धर चरित; सेवाराम के हनुमच्चरित, शान्तिनाथ पुराण और भविष्यदत्त चरित एव भारमल्लके चारुदत्तचरित और सप्तव्यसनचरित चरित-काव्य है। कवियोने इन काव्योमे मानव जीवनकी सुन्दर अभि-व्यंजना की है।

हिन्दीके कथाकाव्योमें पद्यात्मक दो कथासग्रह बहुत प्रसिद्ध हैं—आराधनाकथाकोश और पुण्यास्रवकथाकोश। भारमलकी कई कथाएँ जो कि प्रबन्धकाव्यके रूपमे लिखी गयी हैं, बड़ी ही रोचक और हृदय-स्पर्शी हैं। शीलकथा, दर्शनकथा, एव निशिभोजनत्याग कथा तो अत्यन्त लोकप्रिय है। आराधनाकथाकोशमें १२९ कथाओका सग्रह और पुण्या-स्रवकथाकोशमे ५६ कथाओका सग्रह है।

मानवके विकासके साथ उसकी इच्छाशक्ति और जिज्ञासावृत्ति भी विकसित होती है। यही वृत्ति मानवको कथा सुनने और कहनेके लिए बाध्य करती है। कुशल कलाकार कथाओंको भी काव्यका रूप दे देते हैं, वे इन्हे इतना रोचक और सरस बनाते हैं जिससे ज्ञानकी मरुभूमिको पार करते समय पाठक ऊब न जाय और वह बीच-बीचमे वृक्षोकी छाया-से आच्छादित सरोवरोंके निकट बैठकर शान्ति लाभ कर सके।

पुण्यास्रव कथाकोशकी कथाएँ बड़ी ही रोचक, हृदयको छूनेवाली और मर्म-वेदनाको प्रकट करनेवाली हैं। लेखकने इनसे पाप-पुण्यके फल-का भी विवेचन किया है। आजकलकी कहानीके समान जीवनके किसी

एक घटनाको लेकर ही ये कथाएँ नही लिखी गयी हैं, बल्कि इनमे सर्वाङ्गीण जीवनका चित्राकन सफलतापूर्वक किया गया है। इस कथा-संग्रहमें चारुदत्त, राजा श्रेणिक, सेठ सुदर्शन, प्रभावती, वज्रदन्त, पूजाका फल, नवकारमन्त्रका फल आदि कथाएँ अधिक मर्मस्पर्शी है।

सेठ सुदर्शनकी कथाको ही लीजिये। निश्शकित एवं श्रद्धामय भावनासे एक मन्त्रके दृढ़ श्रद्धानके फलसे एक ग्वाला मरकर श्रेष्ठिपुत्र सुन्दर कुमार होता है। उसका रूप-लावण्य इतना आकर्षक है कि एक रानी भी उसके चरणोंमे गिर पड़ती है और रूपकी भिक्षा माँगती है। इस स्थानपर मानवकी रागात्मक भावनाओंका हृदय-ग्राह्य सूक्ष्म विश्लेषण किया है। इस कथामे सत्सगति और कुसगतिके फलकी भी अभिव्यजना की गयी है। तीन दिनकी मुनिसंगतिसे एक गणिका अपने कृत्योपर पश्चात्ताप करती हुई अन्यायोपार्जित धनपर लात मारकर आर्यिकाके व्रत ग्रहण कर लेती है और अन्तमें उच्च पद पाती है। इस कथामे शुभाशुभ कर्त्तव्यके फलाफलका सरस विवेचन किया गया है। अन्य कथाएँ भी आनन्दानुभूति उत्पन्न करनेवाली हैं। चारुदत्तकी कथा तो इतनी मार्मिक है कि कोई भी प्राणी इसे पढ़कर दो आँसू गिराये विना नही रह सकता। इसी प्रकार अवशेष कथाएँ भी रस-सचार करती हैं।

इस संग्रहकी वर्णनशैली मनोरम और अलंकृत हैं। काव्यके चमत्कारके साथ सौन्दर्यानुभूति इसमें चार चाँद लगाये हुए है।

जोधराज गोदीआ विरचित सम्यक्त्वकौमुदीकी कथाएँ भी बड़ी रोचक हैं। दोहा, सवैया, सोरठा, छप्पय, चौपई आदि छन्दोंमे यह कथाग्रन्थ लिखा गया है। जीवनके विभिन्न घात-प्रतिघातोंका सुन्दर विश्लेषण इस काव्य-ग्रन्थमें किया है। घटना-निर्माण और परिस्थिति-योजनाका सुन्दर समावेश किया गया है। कविता अच्छी है। उदाहरणके लिए एक छप्पय उद्‌धृत किया जाता है—

तवहिं पावडी देखि चोर भूपति निज जान्यौ ।
देखि मुद्रिका चोर तवै मन्त्री पहिचान्यौ ॥
सूत जनेऊ देखि चोर प्रोहित है भारी ।
पंचनि लखि विरतान्त यहै मनमें जु विचारी ॥
भूपति यह मन्त्री सहित प्रोहित युत काढी दयौ ।
इह भाँति न्याव करि भलिय विधि धर्म थापि जग जस लयौ ॥

इस प्रकार कथा-काव्य मनोरंजनके साथ आदर्श प्रस्तुत करते हैं, जिससे कोई भी व्यक्ति अपने जीवनका उत्कर्ष कर सकता है ।

द्वितीयाध्याय

हिन्दी-जैन-गीतिकाव्य और उसकी इतर गीतिकाव्यसे तुलना

कविता जीवनका अन्तर्दर्शन और रागात्मिका अभिव्यक्ति है। सुख-दुःखानुभूति मानवमें ही नहीं, पशु-पक्षियोमे भी पायी जाती है। वाणी या अन्य माध्यमो द्वारा मनुष्यने अपनी अनुभूतियोंकी अभिव्यक्तिको स्थायित्व प्रदान किया है। गीतिकाव्योंमें भावनाकी अनुभूति अधिक गहरी होती है। मिलन-विरह, हर्ष-शोक और आनन्द-विषादका चित्र सीमित रूपमे गेयता-द्वारा गीतिकाव्यमें उपस्थित किया जाता है। इसमे छन्द और रागविशेष-द्वारा आत्मनिष्ठता, आत्मानुभूति एव भाव-प्रकाशन किया है। हिन्दी-जैन-साहित्यमे गीतिकाव्यका महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपभ्रंश भाषामे भी जैन कवियोंने अनेक सरस गीत लिखे हैं, जिनमें प्रेम, विरह, विवाह, युद्ध और अध्यात्म-भावनाकी अभिव्यञ्जना सुन्दर हुई है। सगीत और लयके सहारे ये गीत गानेके लिए रचे गये है।

परवर्ती हिन्दी-जैन-साहित्यमें लावनी, भजन, पद आदिके रूपमे विपुल गीतात्मक साहित्य पाया जाता है। विषयकी दृष्टिसे अध्यात्म, नीति, आचार, वैराग्य, भक्ति, स्वकर्त्तव्य-निरूपण, आत्मतत्त्वकी प्रेयता और शृङ्गार भेदोमे विभक्त किया जा सकता है। प्रायः सभी पदोमे आत्मालोचनके साथ मन, शरीर और इन्द्रियोकी स्वाभाविक प्रवृत्तिका निरूपण कर मानवको सावधान किया है। गीतिकाव्यके निम्न सिद्धान्तो के आधारपर जैनपदोंका विश्लेषण किया जायगा।

१—सगीतात्मकता।

२—किसी एक भावना या किसी रागात्मिका अनुभूतिकी कलापूर्ण समन्वित अभिव्यक्ति।

३—आत्मदर्शन और आत्मनिष्ठा।

४—वैयक्तिक अनुभूतिकी गहराई।

गीत या पदोंमे गेयताका रहना आवश्यक है। इसका आधार शब्द, अर्थ, चेतना और रसात्मकता है। शब्द जहाँ पाठकको अर्थकी भाव-

जैन पदोंमें संगीतात्मकता

भूमिपर ले जाते हैं, वहाँ नादके द्वारा श्रव्य मूर्त विधान भी करते है। शब्दोंका महत्त्व उनके द्वारा प्रस्तुत मानसिक चित्र और ज्ञापित वस्तुके सामञ्जस्यमें है। जिस वस्तुको चर्मचक्षुओसे नहीं देखा है, उसका भी कल्पना-द्वारा मानस-चक्षुओंके सामने ऐसा चित्र प्रस्तुत होता है, जो अपने सौन्दर्यके स्रोतमें मानवके अन्तस्‌को डुबा देता है। जैनपदोमे स्वाभाविक गीत-धाराका अक्षुण्ण प्रवाह है, उनमे अतलस्पर्शिनी क्षमता है। बनारसीदास, दौलतराम, बुधजन और भागचन्दके पदोंमे मुक्त सगीतकी धारा स्वच्छन्द और निर्बाध रूपसे प्रवाहित है। यो तो श्रेष्ठ पदोका सौन्दर्य सगीतमें नहीं, भावात्मकतामे होता है। अकुश रूपमे रहनेवाला सगीत सौन्दर्यकी विकृतिमे साधन बनता है। संगीतका अनुबन्ध रहनेपर भी जैनपदोमे जो मार्मिकता और स्नेहपिच्छल रसधारा है, उसका समाहित प्रभाव मानवीय वृत्तिपर पड़े बिना नहीं रह सकता। प्रभातराग, रामकली, ललित, बिलावल, अलहिया, आसावरी, टोरी सारग, लूहरि सारंग, पूर्वी एकताल, कनड़ी, ईमन, झंझोटी, खंमाच, केदार, सोरठा, विहाग, मालकोस, परज, कलिंगड़ो, भैरवी, धनासरी, मल्हार आदि राग-रागनियाँ इन पदोमें व्यक्त हैं। कवि दौलतरामके निम्न पदमें नाद सौन्दर्यके साथ स्वर और तालका समन्वय सगीतके मूर्त्तरूपको भी मुखरित करता है—

चलि सखि देखन नाभिरायघर नाचत हरिनटवा ॥टेक॥

अद्‌भुत ताल मान शुभलय युत चवत रागपटवा॥चलि सखि० ॥१॥

मनिमय नूपुरादि भूषनदुति, यत सुरंग पटवा।
हरिकर नखन नखन पै सुरतिय, पग फेरत कटवा॥चलि सखि०॥२॥
किन्नर कर धर बीन बजावत, लावत लय झटवा।
दौलत ताहि लखैं चख तृपते, सूझत शिवबटवा॥चलि सखि०॥३॥

कविवर बुधजनने भी विलावल रागको धीमी तालपर कितने सुन्दर ढगसे गाया है। इस पदमे भाषाकी तड़क-भड़क और चमक दमक ही नहीं, किन्तु छन्द और लयका सामजस्य मानव अन्तर्रागको उद्बुद्ध करनेमें समर्थ है। ससारके वाह्य रूपपर मुग्ध व्यक्तिको सजग करनेके लिए तथा वासनामे फँसे व्यक्तिको सावधान होनेके लिए कहा है कि इस भवको प्राप्तकर कौड़ीके मोल न वहाओ। कवि कहता है—

नरभव पाय फेरि दुख भरना, ऐसा काज न करना हो॥टेक॥
नाहक ममत ठानि पुद्गलसौं, करम-जाल क्यों परना हो॥१॥टेक॥
यह तो जड़ तू ज्ञान अरूपी, तिल-तुष ज्यों गुरु वरना हो।
राग-दोस तजि भजि समताकों, करम साथके हरना हो।
नरभव० ॥टेक॥
यों भव पाय विसय-सुख सेना, गज चढि ईंधन ढोना हो।
'बुधजन' समुझि सेय जिनवर-पद, ज्यों भव-सागर तरना हो॥
नरभव० ॥

ससारकी स्वार्थपरतासे भयभीत होकर कविवर भागचन्दने राग विलावलमें संगीतकी तान छोडते हुए अन्तर्तमकी अभिलाषा अभिव्यक्त की है। कवि कहता है कि सभी पुरजन-परिजन स्वार्थके साथी हैं। अन्त समय कोई काम नहीं आता; जिस प्रकार हिरण मृगमरीचिकाके प्रलोभनसे आकृष्ट होकर नाना कष्ट सहन करता है उसी प्रकार यह जीव भी ससार-रूपी वनमे निरन्तर कषाय और वासनाओंसे अभिभूत होकर भटकता रहता है। शरीर-भोगोसे जबतक विरक्ति नहीं होती; शान्ति नहीं मिलती—

सुमर सदा मन आतमराम, सुमर सदा मन आतमराम ॥टेक॥
स्वजन कुटुम्बी जन तू पोपै, तिनको होय सदैव गुलाम।
सो तो हैं स्वारथके साथी, अन्तकाल नहिं आवत काम॥
सुमर सदा० ॥१॥
जिमि मरीचिकामें मृग भटकै, परत सो जब ग्रीपम अतिघाम।
तैसे तू भव माही भटकै, धरत न इक छिन हू विसराम॥
सुमर सदा० ॥२॥
करत न ग्लानि अबै भोगनिमें, धरत न वीतराग परिनाम।
फिरि किमि नरक माहिं दुख सहसी, जहँ सुखलेश न आठो जाम॥
सुमर० ॥३॥
तातैं आकुलता अब तजिकैं, थिर ह्वै बैठो अपने धाम।
'भागचन्द' बसि ज्ञान-नगरमें, तजि रागादिक ठग सब ग्राम॥
सुमर सदा० ॥टेक॥

'सुमर सदा मन आतम राम' में कविने अनेक अशोमें रेखाचित्रकी भाँति कतिपय शब्दरेखाओं-द्वारा ही भावनाकी अभिव्यञ्जना की है। सगीतके मौन-सौन्दर्यके साथ कल-कल ध्वनि करती हुई भावधारा मानव-मनको स्वच्छ करनेमे कम सहायक नही है।

भैया भगवतीदासके पदोमें भी सगीतका निखरा स्वरूप मिलता है। राग-रागनियोका समन्वय भी प्रत्येक पदमे विद्यमान है। शरीरको परदेशी-का रूपक देकर वास्तविकताका प्रदर्शन किस माधुर्यके साथ किया गया है, यह देखते ही बनता है। कविने कुशल कलाकारकी तरह मीनाकारी और पच्चीकारी की है—

कहा परदेशीको पतियारो।
मनमाने तब चलै पंथको, साँझ गिनै न सकारो।
सबै कुटुम्ब छाँड़ इतही पुनि, त्याग चलै तन प्यारो॥

दूर दिशावर चलत आपही, कोउ न रोकन हारो।
कोऊ प्रीति करो किन कोटिक, अन्त होयगो न्यारो॥
धन सों राचि धरम सौ भूलत, झूलत मोह मंझारो।
इहि विधि काल अनन्त गमायो, पायो नहिं भव पारो॥
साँचें सुखसों विमुख होत हो, भ्रम मदिरा मतवारो।
चेतहु चेत सुनहु रे भइया, आप ही आप सँभारो॥

जैन पदोंमें गीतिकाव्यकी दूसरी विशेषता आत्मनिष्ठा भी पायी जाती है। अन्तर्दर्शन-द्वारा आत्मनिष्ठाकी भावना वैयक्तिक सुख, दुःख, हर्ष, शोक, राग, द्वेष एव हास्य अश्रुके गीत गाती है। इन पदोंमें आत्म-भावनाकी अभिव्यञ्जना इतनी प्रबल है, जिससे इनका आधार अधिकरण-निष्ठताको माना जा सकता है। कल्पनाशील भावुक कवि केवल वाह्य वस्तुओंसे ही प्रभावित नहीं होता, केवल सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक कारण ही उसे क्षुब्ध नहीं करते, बल्कि वह आन्तरिक कारणोंसे भी क्षुब्ध और प्रताडित होता है। जैन पद रचनेवाले सभी कवियोंने अपने अन्तर्तमसे प्रेरणा प्राप्त की, वे वाह्य संसारसे अनासक्त हैं। चर्म-चक्षुओंके स्थानपर उनके मानस-चक्षु उद्बुद्ध है। उन्होने अपनी भावनाओंको विश्वजनीन बनानेके लिए वैयक्तिक भाव और चेतनाको आदर्श एव भावात्मक रूप प्रदान किया है। आत्म-चेतनाकी जाग्रति इन पदोंका प्राण और लयपूर्ण भाषामें आत्मानुभूतिकी अभिव्यक्ति इनका उद्देश्य है। कवि-वर बुधजनने निम्नपदमें कितनी गहरी आत्मानुभूतिका परिचय दिया है, इनकी अन्तर्ज्वाला धू-धूकर जल रही है। कविके आकुल प्राण शान्ति-प्राप्तिके लिए छटपटा रहे है, अतः कवि आत्म-विभोर हो कहता है—

जैन-पदोंमें आत्मनिष्ठा और वैयक्तिता

हो मना जी, थारी बानि, बुरी छै दुखदाई ॥टेक॥
निज कारिजमें नेकु न लागत, परसौ प्रीति लगाई॥ हो० ॥१॥

या सुभावसौं अति दुख पायो, सो अब त्यागो भाई ॥ हो० ॥२॥
'बुधजन' औसर भाग न पायो, सेवो श्री जिनराई ॥ हो० ॥३॥

जहाँ हम कवि भागचन्दके पदोंमे अन्तर्दहनके साथ गाम्भीर्य पाते हैं वहाँ कवि बनारसीदासके पदोके प्रबल वेग, अन्तस्के शोधनकी क्षमता और स्वस्थ व्यजना पाते है। आध्यात्मिक शान्ति-प्राप्तिके लिए कवि दौलतरामने कोमल-कान्त-पदावलीमे अपनी कमनीय अनुभूतियोंकी मार्मिक अभिव्यञ्जना की है। कवि अन्तस्मे गुनगुनाता हुआ गा उठता है–

पारस जिन चरण निरख, हरख यों लहायो,
चितवत चन्दा चकोर ज्यों प्रमोद पायो ॥
ज्यों सुन घनघोर शोर, मोर हर्षको न ओर,
रंक निधि समाजराज पाय मुदित थायो ॥ पारस० ॥
ज्यों जन थिरक्षुधित होय, भोजन लखि सुखित होय,
भेषज गदहरण पाय, सरुज सुहरखायो ॥ पारस० ॥
वासर भयो धन्य आज, दुरित दूर परे भाज,
शान्तदशा देख महा, मोहतम पलायो ॥ पारस जिन० ॥
जाके गुन जानत जिम, भानन-भवकानन इम,
जान 'दौल' शरन आय, शिव सुख ललचायो ॥ पारस जिन० ॥

इन पक्तियोंमें आत्मनिवेदनकी भावना तीव्र और गम्भीर है। प्रभु-भक्तिका जलप्रवाह सारी चेतनाओंको धो देता है, ज्ञानका बॉध टूट जाता है और प्रबल वेगमे जीवन प्रवाहित होने लगता है तथा अपने आराध्यके निकट पहुँचकर शान्तिलाभ करता है। कविकी यह अनुभूति ऐन्द्रियक नही, इन्द्रियातीत है।

गीतिकाव्यका तीसरा तत्त्व भाव और अभिव्यञ्जनाके समन्वयमे अनुभूतिकी अन्विति है। इसके विना न तो सवेदनशीलता रहती है और न उससे उत्तेजना प्राप्त होती है। जीवनमे ऐसे कम ही क्षण आते हैं, जब

मानवकी वृत्ति अन्तर्मुखी होती है। मानसिक प्रतिक्रियाएँ सामाजिक आधार रखकर गतिशीलता ग्रहण करती हैं। सहसा दीप्त हो उठनेवाले क्षणोंमें संवेदनशीलता गतिमान नहीं हो सकती। जिस प्रकार रेखाचित्रमे एक रेखाके अभावमें चित्र अधूरा रह जाता है और एक रेखा अधिक होनेसे चित्र विकृत हो जाता है उसी प्रकार अनुभूतिकी अभिव्यंजनामे भी हीनाधिकता होनेपर विकृति आती है, अतः अभिव्यंजनामें अत्यन्त सावधानी रखनी पडती है। जैनपदोमे अनुभूतिके संकेतोंका सन्तुलन है, अतः रूपहीनता अथवा विरूपताके चित्रोंका प्रायः अभाव है। कविवर बनारसीदासके निम्न पदमे अनुभूति और संकेतोंका सन्तुलन दर्शनीय है—

समन्वित अभिव्यक्ति

चेतन तू तिहुँकाल अकेला।

नदी नाव संजोग मिलै ज्यों, त्यों कुटुम्बका मेला ॥ चेतन० ॥

यह संसार अपार रूप सब, ज्यों पट पेखन खेला।

सुखसम्पति शरीर जल बुदबुद, विनशत नाहीं बेला ॥ चेतन० ॥१॥

मोहमगन आतमगुन भूलत, परी तोहि गलजेला ॥

मैं मैं करत चहूँ गति डोलत, बोलत जैसे छेला ॥चेतन०॥२॥

कहत 'बनारसि' मिथ्यामत तजि, होय सुगुरुका चेला।

तास वचन परतीत आन जिय, होइ सहज सुरझेला ॥चेतन०॥३॥

कविवर भूधरदासजीने संसारकी असारता दिखाते हुए अपनी आन्तरिक भावनाओंको बडे ही सुन्दर ढगसे अभिव्यक्त किया है। कवि कहता है—

जगमें जीवन थोरा, रे अज्ञानी जागि ॥टेक॥

जनम ताड तरु तैं पड़ै, फल संसारी जीव।

मौत मही में आयहैं, और न ठौर सदीव ॥जगमें०॥१॥

गिर-सिर दिवला जोइया, चहुँ दिशि बाजै पौन।

बलत अचंभा मानिया, बुझत अचम्भा कौन ॥जगमें०॥२॥

जो छिन जाय सरे आयूमें, निश दिन ढूँकै काल।
बाँधि सकै तो है भला, पानी पहिली पाल ॥जगमें०॥३॥
मनुष देह दुर्लभ्य है, मति चूकै यह दाव।
'भूधर' राजुल कंत ही, शरण सितावी आव ॥जगमें०॥४॥

कवि बनारसी-दासके पद

अध्यात्म प्रेमी कवि बनारसीदासने आत्मानुभूतिके निर्झरसे प्रवेशकर काव्यकी सुरीली तान भरी है। इनके सरस और हृदयग्राही पद आत्मकल्याणमे बडे ही सहायक है।

मानव अनुभूति, वासना और विचारोंसे जीवित है। जीवनकी विस्तृत भूमिकाके रूपमें अनुभूतिका आलोक है और अनुभूतियोमें श्रेष्ठ है आत्मानुभूति। इसमें सारा ध्यान खिंचकर एक बिन्दुपर आ टिकता है, जहाँ दुःख नहीं, छिपाव नहीं, सकोच नही। व्यक्ति बाह्यसे विमुख हो अन्तस्की ओर जबतक नहीं मुडता है, मन इधर-उधर भटकता रहता है। मन एक बार जब आत्मोन्मुख हो जाता है तो फिर भागनेका उसे अवकाश नही रहता। कविवरने मनको इसी सन्तोषकी ओर ले जानेका सकेत किया है। मनके तुष्ट हो जानेपर अन्तस्तलका रस उमड पडता है, मनुष्य अपनी सुधबुध खो आत्माका साक्षात्कार करता है। आस्था और विश्वाससे परिपूर्ण मनकी अविचलित अवस्था कर्म-ग्रन्थिके मोचनमें बड़ी सहायक होती है।

तृष्णा इतनी प्रबल और उद्दाम है कि मनुष्यका इस ओर झुकाव होते ही वह इसकी प्रबल लपेटोंसे आक्रान्त हो जाता है और अपना सर्वस्व खो बैठता है। इसके विपरीत जीवनमे वही व्यक्ति सफलता प्राप्त कर सकता है जो आशाके वशवर्ती न होकर सन्तोषके मार्गका पथिक है। लोभका बीज परिग्रह है, क्योकि परिग्रहके बढ़नेसे मोह बढता है और मोहके बढ़नेसे तृष्णा बढ़ती है, तृष्णासे असन्तोष और असन्तोषसे दुःख होता है। कविने निम्नपदमे इसी भावनाको बडे अनूठे ढंगसे प्रदर्शित किया है—

रे मन ! कर सदा सन्तोष।
जातैं मिटत सब दुख दोष ॥ रे मन० ॥ टेक ॥१॥
बढ़त परिग्रह मोह बढ़ावत, अधिक तृष्णा होत।
बहुत इंधन जरत जैसैं, अगनी ऊँची ज्योति रे ॥ रे मन० ॥२॥
लोभ लालच मूढ़ जन सों, कहत कञ्चन दान।
फिरत आरत नहिं विचारत, धरम धनकी हान ॥ रे मन० ॥३॥
नारकिनके पाँव सेवत, सकुच मानत संक।
ज्ञान करि बूझै 'बनारसि', को नृपति को रंक ॥ रे मन० ॥४॥

जब कवि संसारके स्वार्थोंसे ऊब गया, नाना उपचार करनेपर भी उसके मनका संशय नहीं हटा तो वही अपने मनकी आलोचना करता हुआ आकांक्षा व्यक्त करता है। कविकी आकांक्षा वैयक्तिक नहीं, अपितु सार्वजनीन है। सारंग रागकी मधुरिमा हृदयको रससिक्त कर देती है तथा अन्तस्में आत्मबुद्धि जाग्रत करती है। कविवर कहता है—

दुविधा कब जैहै या मनकी ॥ दुवि०॥
कब जिननाथ निरंजन सुमिरों, तजि सेवा जन-जनकी ॥
दुविधा० ॥१॥
कब रुचिसौं पीवैं दृग चातक, बूँद अखयपद घनकी ॥
कब शुभ ध्यान धरौं समता गहि, करूँ न ममता तनकी ॥
दुविधा० ॥२॥
कब घट अन्तर रहै निरन्तर, दिढ़ता सुगुरु वचन की।
कब सुख लहौं भेद परमारथ, मिटै धारना धन की ॥
दुविधा० ॥३॥
कब घर छाँडि होहुँ एकाकी, लियें लालसा बन की।
ऐसी दसा होय कब मेरी, हौं बलि-बलि वा छन की ॥
दुविधा० ॥४॥

बुद्धि, राग और कल्पना तत्त्वका समन्वय, अनुभूतिका सन्तुलन, भाव और भाषाका एकीकरण, लय और तालकी मधुरता एवं भाव-गाम्भीर्य और कोमल-कान्त-पदावली बनारसीदासके पदोंमें वर्तमान है।

भैया भगवतीदासने अपने पदोंमें सहजानुभूतिकी अभिव्यंजना की है। इनके पदोंमें चिन्तनके स्थानमें आध्यात्मिक उल्लासकी अनुभूति प्रधान है। उन्होंने मानव पर्यायको प्रकृतिसे सुन्दर मंगलमय, मधुर और आत्मकल्याणमें सहायक माना है। इसी कारण अपने हृदय-कुंजमें मदिरभाव विहंगोंका कूजन सुनकर इन्होंने संसारके सम्बन्धोंकी अस्थिरताका साक्षात्कार कराया है। आध्यात्मिक उन्मेषसे कविका प्रत्येक पद प्रभावित है। आकाशमें घुमड़नेवाले बादलोंके समान क्षणभंगुर वासनाओं, जो कि प्रत्येक व्यक्तिके मानसको आन्दोलित करती रहती हैं, का कविने पदोंमें सूक्ष्म विश्लेषण किया है। अतः चिन्तनशील होकर कवि जीवनके मूलभूत तत्त्वोंका उद्घाटन करता हुआ कहता है—

भैया भगवतीदासके पद : परिचय और समीक्षा

छाँडि दे अभिमान जिय रे, छाँडि दे अभि० ॥टेक॥
काको तू अरु कौन तेरे, सब ही हैं महिमान।
देख राजा रंक कोऊ, थिर नहीं यह थान ॥जिय रे०॥१॥
जगत देखत तोरि चलवो, तू भी देखत आन।
घरी पलकी खबर नाहीं, कहा होय विहान ॥जिय रे०॥२॥
त्याग क्रोध रु लोभ माया, मोह मदिरा पान।
राग दोषहिं टार अन्तर, दूर कर अज्ञान ॥जिय रे०॥३॥
भयो सुरपुर देव कबहूँ, कबहुँ नरक निदान।
इम कर्मवश बहु नाच नाचे, भैया आप पिछान ॥जिय रे०॥४॥

इनके पदोंका संग्रह ब्रह्मविलास तथा फुटकर संकलनके रूपमें प्रकाशित हुआ है। प्रभाती, स्तवन, अध्यात्म, वस्तुस्थितिनिरूपण,

आत्मालोचन एव आराध्यके प्रति दृढतर विश्वास विषयोंमे इनके पदोको विभाजित किया जा सकता है। वस्तुस्थितिका चित्रण करते हुए बताया है कि यह जीव विश्वकी वास्तविकता और जीवनके रहस्योंसे सदा आँखे बन्द किये रहा। इसने व्यापक विश्वजनीन और चिरन्तन सत्यको पानेका प्रयास ही नहीं किया। पार्थिव सौन्दर्यके प्रति मानव नैसर्गिक आस्था रखता है, राग-द्वेषोंकी ओर इसका झुकाव निरन्तर होता रहता है, परन्तु सत्य इससे परे है। विविध नाम-रूपात्मक इस जगत्से पृथक् होकर प्रकृत भावनाओका सयम, दमन और परिष्करण करना ही प्रत्येक व्यक्तिका जीवन लक्ष्य होना चाहिए। इसी कारण पश्चात्तापके साथ सजग करते हुए वैयक्तिक चेतनामें सामूहिक चेतनाका अध्यारोप कर कवि कहता है—

अरे तैं जु यह जन्म गमायो रे, अरे तैं ॥टेक॥
पूरब पुण्य किये कहुँ अतिही, तातैं नरभव पायो रे।
देव धरम गुरु ग्रन्थ न परसै, भटकि भटकि भरमायो रे ॥अरे०॥१॥
फिर तोको मिलिबो यह दुरलभ, दृश दृष्टान्त बतायो रे।
जो चेतै तो चेत रे भैया, तोको कहि समुझायो रे ॥अरे०॥२॥

आत्मालोचन-सम्बन्धी पदोमे कविने राग-द्वेष, ईर्षा-घृणा, मद-मत्सर आदि विकारोंसे अभिभूत हृदयकी आलोचना करते हुए गूढ़ अध्यात्मकी अभिव्यजना की है। यह आलोचना केवल कविहृदयकी नही वल्कि समस्त मानव समाजकी है। मानव मात्र अपने विकारी मनका परिशोधनकर मंगल प्रभातके दर्शन करनेकी क्षमता प्राप्त कर सकता है।

विनाशीक ससारके स्वार्थमयी सम्बन्धोकी सारहीनता दिखलाता हुआ कवि राग-द्वेषादि विकारोंको दूर करनेकी वात कहता है। जव वह इस ससारके भ्रम-जालकी वास्तविकतासे परिचित हो जाता है तो दृढ़ आत्म-निष्ठा प्रकट करता हुआ देव गन्धार रागमे अलापने लगता है—

अब मैं छाँड्यो पर-जंजाल, अब मैं ॥टेक॥
लग्यो अनादि मोह भ्रम भारी, तज्यो ताहि तत्काल। अब मैं०॥१॥

आतमरस चख्यो मैं अद्भुत, पायो परम दयाल। अब मैं०॥२॥
सिद्ध समान शुद्ध गुण राजत, सोमरूप सुविशाल। अब मैं०॥३॥

भैया भगवतीदासके पदोंमे जितनी सुन्दर अध्यात्म तत्त्वकी अभिव्यंजना हुई है उतनी मानवीय राग-द्वेषकी नहीं। शृ गारिक भावनाके अरुण रूपोंका प्रायः अभाव है। भाषामे नाद-साम्य और अनुप्रासोकी बहुलता श्रवण-सुखद है।

आनन्दघनके पद कबीरदासके समान आध्यात्मिकतासे ओतप्रोत हैं। यह पहुँचे हुए महात्मा और आत्मरसिक कवि थे। इस कारण इनके पदोंमे सच्ची अनुभूति विद्यमान है। प्रेत-आत्माके रूप-माधुर्यका दर्शन सर्वत्र कवि करता है। वातावरणके प्रत्येक कणसे उसे आत्मानुभूतिकी झलक मिलती है। यद्यपि कविने आत्माको सर्वत्र व्यापक रूपमे नही देखा है, शरीर-प्रमाण ही माना है, फिर भी उसे पानेके लिए सच्ची प्रेयसीके समान आकुल है। प्रातः-समीर अपनी नवीन सुरभिसे प्रत्येक अग-प्रत्यगको सुरभित करता हुआ कविको आत्मानुभूतिमे प्रेरक प्रतीत होता है।

आनन्दघनके पद : परिचय और समीक्षा

स्वानुभूतिका प्रादुर्भाव होते ही कवि अनुभव करता है कि जन्म-मरणके कारण राग-द्वेषके भस्म हो जानेपर ही आवागमनके दुखसे छुटकारा मिल सकता है; आत्मा अजर है, अमर है, इसकी उपलब्धि रत्नत्रयके द्वारा ही सम्भव है। अतएव सत्यद्रष्टा कविकी पारदर्शिका ऑखे जगके भौतिक आवरणको भेदती हुई अन्तर्स्तत्त्वोपर स्थित होती हैं। आत्म-वाणीके द्वारा पार्थिकताको ललकारते हुए शाश्वत आनन्दकी बात कहता है। इसलिए इनके पदोंमें प्रधानतः आशा, उल्लास और चेतनाका अभिनन्दन विद्यमान है। कवि अपने अन्तसूमें आत्मतत्त्वकी महत्ताका अनुभव कर आध्यात्मिक धरातल पर मानव मात्रका उत्कर्ष दिखलाता है तथा

ऐन्द्रियिक आनन्दको निकृष्ट और हीन बतलाकर इन्द्रियातीत अलौकिक आनन्दकी अभिव्यञ्जना करता है।

कविने निम्न पदमे अपनी अमरताका भाव सत्य और वस्तु सत्यसे भिन्न कितना सुन्दर विवेचन किया है—

अब हम अमर भये न मरेंगे ॥टेक॥
या कारन मिथ्यात दियौ तज, क्यौंकर देह धरेंगे ॥ १ ॥
राग-द्वेष जग बन्ध करत हैं इनको नाश करेंगे।
मर्यो अनंत काल तैं प्राणी, सो हम काल हरेंगे ॥ २ ॥
देह विनाशी हूँ अविनाशी, अपनी गति पकरेंगे।
नासी नासी हम थिरवासी, चोखे ह्वै निखरेंगे ॥ ३ ॥
मर्यो अनन्त बार बिन समझैं, अबसो सुख बिसरेंगे।
'आनन्द घन' निपट-निकट अक्षर दो, नहिं सुमरै सो मरेंगे ॥४॥

यद्यपि इसी आशयका एक पद कवि द्यानतरायका भी मिलता है, तो भी इस पद्यका माधुर्य विचित्र है। कविने वैज्ञानिक तथ्योंके आधारपर आत्मानन्दको व्यक्त किया है। इनके समस्त पद तीन वर्गोंमें विभक्त किये जा सकते है।

प्रथम वर्गमें उन पदोको रक्खा जा सकता है, जिनमे रूपको-द्वारा आत्मतत्त्वका विश्लेषण एक सहृदय और भावुक कविके समान किया गया है। कविने इन पदोंमे मधुर रागात्मक सम्बन्धोको उद्घाटित करते हुए मिथ्यात्वके निष्कासनपर अधिक जोर दिया है। आत्मानुभूति या स्वानुभूतिमे प्रबल बाधक कारण यह मिथ्यात्व ही है, अतः अनेक रूपको-द्वारा इस आत्म-अशुद्धिके कारणका विश्लेषण किया गया है।

दूसरी श्रेणीमे वे पद हैं जिनमें घरेलू दैनिक व्यवहारमे आनेवाली वस्तुओंके प्रतीकों-द्वारा संसारकी क्षणभगुरता दिखलाकर आत्म-तत्त्वका सश्लिष्ट चित्र प्रकट किया है। विनय और वन्दना-सम्बन्धी पद इस कोटिमे आते है।

तीसरे वर्गमें उन मिश्रित पदोको रक्खा जा सकता है जिनमें तन्मयता के साथ भाव-गाम्भीर्य भी विद्यमान है। समता-रसका वासन्ती समीर मनकी राशि-राशि अभिलाषाओ और हृदयकी कोमल कमनीय ऐन्द्रियिक भावनाओंको विकसित पुष्पके परागकी तरह धूलिसात् कर देता है तथा समता-पीयूषकी खुमारी आत्मविभोर बना देती है। कवि उपर्युक्त भावना का विश्लेषण करता हुआ कहता है—

मेरे घट ज्ञान भान भयौ भोर।
चेतन चकवा चेतन चकवी, भागौ विरहकौ सोर ॥ १ ॥
फैली चहुँदिशि चतुरभाव रुचि, मिट्यो भरम-तम जोर।
आपकी चोरी आपही जानत और कहत न चोर ॥ २ ॥
अमल-कमल विकसित भये भूतलमन्द विषय शशिकोर।
'आनन्दघन' इक वल्लभ लागत, और न लाख किरोर ॥ ३ ॥

'जसविलास सग्रह' नामसे इनके पदोका सग्रह प्रकाशित हुआ है। इनके पदोंमे भावनाएँ तीव्र आवेगमयी और संगीतात्मक प्रवाहमें प्रस्फुटित हुई हैं। भाषामें लाक्षणिक वैचित्र्यके स्थानपर सरसता और सरलता है। पदोंमें प्रधान रूपसे—आध्यात्मिक भावोकी अभिव्यजना है। अपने आराध्यके प्रति आत्मनिवेदनकी भावना भी तीव्र रूपमे पायी जाती है।

यशोविजयके पद : परिचय और समीक्षा

आत्माकी अभिरुचि उत्पन्न होते ही अज्ञान, असंस्कार, मिथ्यात्व आदि भस्म हो जाते है, जिससे स्वानुभूति होनेमें विलम्ब नहीं होता। कविके अनेक पदोंमे बौद्धिक शान्तिके स्थानमें आध्यात्मिक शान्ति शुद्धानुभूतिका निरूपण है। आध्यात्मिक विश्वासोकी भूमि कितनी दृढ है तथा स्वानुभूति उत्पन्न हो जानेपर मानव आत्मानन्दमें कितना विभोर हो सकता है यह निम्न पदमे दर्शनीय है। कवि कहता है—

हम मगन भये प्रभु ध्यान में।
बिसर गई दुविधा तन-मनकी, अचिरा सुत गुनगानमें ॥हम० ॥ १ ॥

हरि-हर ब्रह्म पुरन्दरकी रिधि, आवत नहिं कोउ मान में ।
चिदानन्दकी मौज मची है, समता रसके पानमें ॥ हम० ॥ २ ।

इतने दिन तूँ नाहिं पिछान्यो, जन्म गंवायौ अजान में ।
अब तो अधिकारी ह्वै बैठे, प्रभुगुन अखय खजान में ॥ हम० ॥ ३ ॥

गई दीनता सभी हमारी—प्रभु तुझ समकित दान में ।
प्रभुगुन अनुभवके रस आगे, आवत नहिं कोउ ध्यान में ॥ ४ ॥

यशोविजयजीके पदोकी भाषा बड़ी ही सरस है। आत्मनिष्ठा और वैयक्तिक भावना भी इनके पदोंमें विद्यमान है।

भूधरदासके पद : परिचय और समीक्षा

कवि भूधरदास कुशल कलाकार है। इन्होने गीति-कलाकी बारीकियाॅ अपने पदोमे प्रदर्शित की हैं। यह स्थूलको छोड सूक्ष्म सौन्दर्यको व्यक्त करना चाहते है। यद्यपि बाह्य-सौन्दर्यका अपने सूक्ष्म पर्यवेक्षण-द्वारा निरीक्षण किया है, किन्तु वह इन्हे स्थिरता प्रदान नहीं कर सका है। यही कारण है कि इनके पदोंमें भावुकताके सहारे करुण रस और आत्मवेदनाकी भी अभिव्यजना हुई है। पदोमे शाब्दिक कोमलता, भावनाओंकी मादकता और कल्पनाओंका इन्द्रजाल समन्वित रूपमे विद्यमान है। इनके पदोका एक सग्रह 'भूधर-पदसग्रह' के नामसे प्रकाशित हो चुका है। इन पदोको सात वर्गोंमें विभक्त किया जा सकता है—स्तुतिपरक, जीवके अज्ञानावस्थाके परिणाम और निस्तार सूचक, आराध्यकी शरणके दृढ विश्वाससूचक, अध्यात्मोपदेशी, ससार और शरीरसे विरक्ति-उत्पादक, नामस्मरणके महत्त्व-द्योतक और मनुष्यत्वकी पूर्ण अभिव्यक्ति-द्योतक।

प्रथम श्रेणीके पद जिनेन्द्रप्रभु जिनवाणी और जितेन्द्रिय गुरुके स्तवनोसे सम्बद्ध है। इन पदोंमें कविने दास्य भावकी उपासना-द्वारा

अपनेको उज्ज्वल बनानेका प्रयास किया है। किन्तु दास्यताकी यह भावना सर्वत्र परतन्त्र बनानेवाली नही है।

दूसरी श्रेणीके पदोंमे जीवको अज्ञानताके कारण होनेवाले परिणामोंको दिखलाकर सावधान करनेका प्रयास किया है।

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय ॥ टेक ॥
फल चाखनकी बार भरै दृग, मरहै मूरख रोय ॥ अज्ञानी० ॥ १ ॥
किञ्चित् विषयनके सुख कारण दुर्लभ देह न खोय।
ऐसा अवसर फिर न मिलेगा, इस नीदड़ी न सोय ॥ अज्ञानी०॥२॥

भावुक कविने अन्तस्मे मायाकी वञ्चकताका अनुभव कर उसके मोहक रूपका बड़ा ही सुन्दर विश्लेषण किया है। कविने मायाको ठगनी-का रूपक देकर उसके घृणित रूपका, जिसे विषयी जीव मोहक समझते हैं, मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

सुन ठगकी माया तैं सब जग ठग खाया ॥ टेक ॥
टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पिछताया ॥ सुन० ॥१॥

विकारग्रस्त मानव अहके वशीभूत हो ससारमें असमताका व्यवहार करता है, नाना कामनाओंको अन्तस्मे समेटे स्वप्नलोकमे विचरण करता रहता है, उसके सकल्प कच्चे धागेके समान बाधा और विघ्नोंके हल्के झोंकेसे ही टूट जाते है। ससारके मायावी बधन उसे जकड़ते जाते हैं, अतः वस्तुस्थितिका यथार्थ दर्शन कराता हुआ कवि निराशामें आशाकी किरणोंका आलोक वितरण करता है। तथा—

"एकौं के घर मंगल गावैं, पूगी मनकी आसा।
एक वियोग भरे बहु रोवैं, भरि-भरि रैन निरासा ॥"

मे कितना सुन्दर यथार्थका चित्रण हुआ है। कविका यथार्थ जीवनके शाश्वत सत्यसे सयुक्त है। यद्यपि यह चित्रण ससारके वास्तविक रूपको

प्रस्तुत करता है, पर इसमे निराशा अन्वित नहीं है। विश्वका वास्तविक स्वारस्य दिखलाकर कवि आत्मानुभूतिको जगाता है। शरीरको चरखाका रूपक देकर निम्नपदकी आध्यात्मिक अभिव्यक्ति कितनी मर्मस्पर्शी है—

मोटा महीं कातकर भाई, कर अपना सुरझेरा।
अन्त आगमें ईंधन होगा, 'भूधर' समझ सवेरा॥

रागात्मिका वृत्ति और बोध-वृत्तिके समन्वित रूपमे पूर्ण मानवताकी अभिव्यजना करनेवाले इनके अनेक पद है। इनमें कविने मानवताकी प्रतिष्ठाके लिए वासना और कषायोंके मधुमत्त समीरके स्पर्शसे बचानेकी आकाक्षा व्यक्त की है। कवि कहता है—"सुनि ज्ञानी प्राणी, श्री गुरु सीख सयानी" आदि।

राग विहागमें मनकी दुर्बलता तथा अह और इदके सघर्षसे उत्पन्न कामवासनाका नियन्त्रण करता हुआ कवि चारित्रकी शोधशालामे नैतिक मन और नैतिक बुद्धिकी आवश्यकताका निरूपण करता है—

जगत जन जुवा हारि चले॥ टेक॥
काम-कुटिल संग बाजी मॉडी, उन करि कपट छले। जगत०॥ १॥
चार कषायमयी जहँ चौपरि पांसे जोग रले।
इन सरवस उत कामनिकौड़ी इहविधि झटक चले॥ जगत०॥ २॥

भूधरदासके पदोंमें राग-विरागका गगा-यमुनीसगम होनेपर भी शृगारिकता नहीं है। विरहकी विविध अवस्थाओंका निरुपण भी इनके पदोंमे नहीं हुआ है। भाषाकी लाक्षणिकता और काव्योक्तियोकी विदग्धता यत्र-तत्र रूपकोंमें विद्यमान है।

गीति-काव्यके मर्मज्ञ कवि द्यानतरायके पदोंमें अन्तर्दर्शनकी प्रवृत्ति प्रधान रूपसे वर्त्तमान है। शब्द सौन्दर्य और शब्द-सगीतकी झकार सभी पदोमे सुनाई पड़ती है। इनके पदोंमे अतृप्ति नहीं, सतोष है, उन्माद

नहीं, मस्ती है; अवसाद नहीं, औत्सुक्य है; कर्कशता नहीं, तीव्रता है और उच्छृङ्खलता नहीं, आस्था है। इन्होने अपने भक्ति-सूचक पदोमे जीवनकी अन्तर्वृत्तिकी ऐसी सुन्दर अभिव्यजना की है, जिससे बोध-वृत्ति जाग्रत हुए बिना नहीं रहती। इनकी भावुकता सरस, सरल और सहज है। पदोमे तथ्योका विवेचन दार्शनिक शैलीमें नहीं किया गया है, किन्तु काव्य-शैलीका प्रयोग कर कविने मानवप्रवृत्तियोके उद्घाटनमें अपूर्व सफलता प्राप्त की है। तीव्र आलोक और प्रखर प्रवाह दो चार पदोमे ही उपलब्ध है, अधिकाश पदोमे वैयक्तिकता या अधि-करणनिष्ठताका आधार ही प्रधान है। कविने अपनी आनन्दानुभूतिको प्रत्येक पदमें व्यक्त करनेका प्रयास किया है। इनके सकलित पदोंको छः श्रेणियोंमे विभक्त किया जा सकता है—बधाई, स्तवन, आत्मसमर्पण, आश्वासन, परत्वबोधक एव सहज समाधिकी आकाक्षा।

द्यानतरायके पदः परिचय और समीक्षा

बधाई-सूचक पदोमे तीर्थंकर ऋषभनाथके जन्म-समयका आनन्द व्यक्त किया है। प्रसगवश प्रभुके नखशिखका वर्णन भी जहाँ-तहाँ उप-लब्ध है। अपने इष्टदेवके जन्म-समयका वातावरण और उस कालकी समस्त परिस्थितियोको स्मरण कर कवि आनन्द-विभोर हो जाता है और हर्षोन्मत्त हो गा उठता है—

माई आज आनंद या नगरी ॥ टेक ॥
गजगमनी शशिवदनी तरुनी, मंगल गावति हैं सगरी ॥ माई० ॥
नाभिराय घर पुत्र भयो है,किये हैं अजाचक जाचक री ॥ माई० ॥
'द्यानत' धन्य कूख मरुदेवी, सुर सेवत जाके पगरी ॥ माई० ॥

द्वितीय श्रेणीके पदोंमें अपने आराध्य पचपरमेष्ठीकी नाना प्रकारसे स्तुति की है। इस श्रेणीके पदोमे उपमानोका आश्रय लेकर अपने इष्ट देवको प्रसन्न करनेका प्रयास कविने किया है। आरती स्तुतिका ही एक रूप है, अतः अपनी विश्वव्यापिनी आरती करता हुआ कवि कहता है—

मंगल आरती आतम राम । तन मंदिर मन उत्तम ठाम ।
समरस जल चन्दन आनंद। तन्दुल तत्त्वस्वरूप अमन्द ॥
॥ मंगल आरती० ॥
सैनसार फूलनकी माल । अनुभौ सुख नेवज भरि थाल ॥
मंगल आरती० ॥
दीपक ज्ञान ध्यानकी धूप । निर्मल भाव महाफल रूप ॥
मंगल आरती० ॥
सुगुन भविक जन इक रंग लीन । निहचै नौधा भगति प्रवीन ॥
मंगल आरती० ॥
धुनि उत्साह सु अनहद ग्यान । परम समाधि निरत परधान ॥
मंगल आरती० ॥
बाहज आतम भाव बहाव । अंतर ह्वै परमातमध्याव ॥
मंगल आरती० ॥
साहब सेवक भेद मिटाय । 'द्यानत' एकमेव हो जाय ॥
मंगल आरती० ॥

दौलतरामके पद : परिचय और समीक्षा

कवि दौलतराम उन गीतिकाव्य-रचयिताओंमे से हैं, जिन्होने जीवनको खूब बारीकियोमे देखा है, उनकी विविध प्रवृत्तियोंकी गहराईमे उतर कर अनुशीलन किया है। मनकी गूढ़ और विविध दशाओंका समाधान करते हुए कवि अनुभव करता है कि क्या बात है कि जिससे मानव जीवन बोझिल और त्रस्त है! कल्पना, विचार और भावनाकी त्रिवेणीमें निमज्जन कर निश्चय किया कि मानव चंचल चित्तके कारण ही क्लान्त एवं त्रस्त है। कभी यह दिव्य अगनाओका आलिंगन करना चाहता है, तो कभी सुन्दर नृत्य देखनेके लिए लालायित है। एक आकांक्षा तृप्त नहीं होती, कि दूसरी अनन्त आकांक्षाऍ उत्पन्न हो जाती है। मनकी गति पवनसे भी अधिक चंचल है, इसपर अंकुश रखे विना कोई भी

सत्यको प्राप्त नहीं कर सकता है। कवि कहता है-"मन तेरी बुरी आदत क्यों पड़ गई है! तू अनादिसे इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर क्यों दौड़ता चला आ रहा है, इन्हींके अधीन रहनेसे तूने अनादिकालसे अपनी आत्माका निरीक्षण नहीं किया, अपने स्वरूपको नहीं पहचाना-

हे मन, तेरी को कुटेव यह, करन-विषय में धावै है ॥ टेक ॥
इन्हींके वश तू अनादि तैं, निज स्वरूप न लखावै है।
पराधीन छिन-छीन समाकुल, दुरगति-विपति चखावै है ॥
हे मन० ॥ १ ॥
फरस-विषयके कारण वारन, गरत परत दुख पावै है।
रसना इन्द्री-वश झप जल में, कंटक कंठ छिदावै है।
हे मन० ॥ २ ॥
गंध-लोल पंकज मुद्रितमें श्रुलि निज प्रान खिपावै है।
नयन-विषय-वश दीपशिखामें अंग पतंग जरावै है ॥
हे मन० ॥ ३ ॥
करन-विषय-वश हिरन अरन में, खलकर प्रान लुनावै है।
'दौलत' तज इनको, जिनको भज, यह गुरु सीख सुनावै है ॥
हे मन० ॥ ४ ॥

इनके पद विषयकी दृष्टिसे रक्षाकी भावना, आत्मनिक्षेप भर्त्सना, भय-दर्शन, आश्वासन, चेतावनी, प्रभुस्मरणके प्रति आग्रह, आत्मदर्शन होनेपर अस्फुट वचन, सहज समाधिकी आकांक्षा, स्वपदकी आकांक्षा, संसार-विश्लेषण, परतत्त्वबोधक एवं आत्मानन्द श्रेणीमें विभक्त किये जा सकते हैं। उक्त वर्गीकरणमेंसे कुछ पद उदाहरणार्थ प्रस्तुत किये जाते हैं। आत्मनिक्षेप-सम्बन्धी पदोंमें भगवान्के सम्मुख आत्मसमर्पणकी भावना प्रदर्शित की गई है। इन पदोंमें अपने प्रति और अपने आराध्यके प्रति एक अखण्ड अविचलित विश्वास है। इसी कारण इस श्रेणीके पदोंमें सीधे-सादे भाव पाठकके हृदयपर सीधे चोट पहुँचाते हैं-

मोहि तारोजी क्यों ना ? तुम तारक त्रिजग त्रिकाल में ॥ मोहि० ॥
मैं उदधि पर्‌यो दुख भोग्यौ, सो दुख जात कह्यौ ना ।
जामन मरण अनंत तनो तुम जानन माहिं छिप्यौ ना ॥ मोहि० ॥

भर्त्सना-विषयक पदोंमे कविने विषय-वासनाके कारण मलिन हुए मनको फटकारा है तथा कवि अपने विकार और कषायोंका कच्चा चिट्ठा प्रकट कर अपनी आत्माका परिष्कार करना चाहता है। नाना प्रकारकी विषयेच्छाऐं तृष्णा और सुनहली आशा-कल्पनाऐं इस प्राणीको और भी कष्ट देती हैं; अतएव विषयोको निस्सार समझ त्यागना चाहिये। यह शरीर अत्यन्त घृणित है, माता-पिताके रज-वीर्यसे उत्पन्न हुआ है। इसमें अनेक अशुचि पदार्थ विद्यमान हैं, अतएव इससे ममता छोड देनी चाहिये—

मत कीजो री यारी, छिन गेह देह जड जानके ॥ टेक ॥
मात-पिता-रज-वीरज सों यह, उपजी मल-फुलवारी।
अस्थि-माल-पल नसाजाल की, लाल-लाल-जल क्यारी ॥ मत०॥
कर्म-कुरंग-थली पुतली यह, मूत्र पुरीष भँडारी।
चर्म-मडी रिपु-कर्म-कडी धन-धर्म चुरावन हारी ॥ मत०॥

× × ×

हो तुम शठ अविचारी जियरा जिनवृष पाय वृथा खोवत हो ॥ टेक॥
पी अनादि मदमोह स्वगुननिधि भूल अचेत नींद सोवत हो ॥
हो तुम० ॥

भय दर्शन-सम्बन्धी पदोमे मनको भय दिखलाकर आत्मोन्मुख किया गया है। कविने अपने अन्तस्‌में ससारकी झझटो, बाधाओं और विघ्नोंका अनुभव कर वास्तविक परिस्थितियोका साक्षात्कार किया है। जान पडता है जैसे संसारके मायावी बन्धनोसे वह भयभीत है। अतः ससारके माया-जालसे उन्मुक्त होनेके लिए अत्यन्त उत्सुक है, उसकी आत्मामें सासारिक

जान बूझ कर अन्ध बने हैं आँखन बाँधी पाटी ॥ अरे० ॥
निकल जाँयगे प्राण छिनकमें पड़ी रहेगी माटी ॥ अरे० ॥
'दौलतराम' समझ मन अपने, दिलकी खोल कपाटी ॥ अरे०॥

× × ×

अब मन मेरा वे सीख वचन सुन मेरा।

× × ×

जिया तुम चालो अपने देश।
मत कीजो जी यारी ये भोग भुजंग सम जानिके।

कवि चेतावनी देता हुआ कहता है—

मेरे कब ह्वै वा दिनकी सुघरी।
तन बिन बसन असन बिन वनमें, निवसौं नासा दृष्टि धरी ॥
मेरे कब० ॥
पुण्य पाप परसों कब विरचो, परचो निजनिधि चिर-बिसरी।
तज उपाधि, सज सहज समाधी, सहों घाम-हिम-मेघझरी।
मेरे कब० ॥
कब थिर-जोग धरौं ऐसौ मोहि, उपल जान मृग खाज हरी।
ध्यान कमान तान अनुभवशर, छेदों किह दिन मोह अरी ॥
मेरे कब० ॥
कब तृन कंचन एक गनो अरु, मनि-जड़ितालय शैलदरी।
'दौलत' सतगुरु चरनन सेऊं, जो पुरवौ आश यहै हमरी ॥
मेरे कब० ॥

× × ×

चेतन अब धरि सहज समाधि, जात यह विनशै भव व्याधि।
चेतन० ॥
मोह ठगौरी खायके रे, परको आपा जान।
भूल निजातमऋद्धि को हैं—पाये दुःख महान ॥ चेतन० ॥

जब आत्मानुभूति उत्पन्न हो जाती है, हृदयके समस्त कालुष्य धुल जाते हैं एवं जीवनका प्रवाह अपनी दिशाको बदलकर प्रवाहित होने लगता है तो भावातिरेकके कारण अस्फुट वचन निकलते हैं। कवि कहता है—

चिन्मूरत दृगधारीकी मोहि, रीति लगत है अटापटी ॥ चिन्मूरत०॥
बाहिर नारकि कृत दुख भोगै, अन्तर सुखरस गटागटी ॥
रमत अनेक सुरतिसंग पै तिस परनति तैं नित हटाहटी ॥चिन्मूरत०॥

कवि दौलतरामकी दृष्टि आत्मनिष्ठ है, वस्तुनिष्ठ नहीं। अतः किसी वस्तुके बाह्य स्थूल सौन्दर्यकी अपेक्षा आन्तरिक-सूक्ष्म सौन्दर्यका अधिक विश्लेषण किया है। भावनाकी भव्यता और अनुभूतिकी सूक्ष्मता दर्शनीय है। इनकी भाषामे सयम, अभिव्यजना-शक्ति, स्पष्टता और व्यावहारिकता पूर्णतः विद्यमान है। भाषाकी लाक्षणिकताने कोमल और माधुर्य भावनाओंको भरनेमे विलक्षण कार्य किया है। रूपकोंमे कविकी लाक्षणिक शैली दर्शनीय है—

मेरो मन ऐसी खेलत होरी।
मन मिरदंग साज करि लारी, तनको तमूरा बनो री ॥
सुमति सुरंग सरंगी बजाई, ताल दोऊकर जोरी।
राग पाँचौं पद कोरी, मेरो मन ऐसी खेलत होरी ॥
समकृति रूप गहि भर झारी, करुना केशर घोरी।
ज्ञानमई लेकर पिचकारी दोउ कर माहिं सम्होरी ॥

इस प्रकार कवि दौलतरामके पदोंमे भावावेश, उन्मुक्त प्रवाह, आन्तरिक सगीत, कल्पनाकी तूलिका-द्वारा भावचित्रोंकी कमनीयता, आनन्द-विह्वलता; रसानुभूतिकी गम्भीरता एव रमणीयताका पूरा समन्वय विद्यमान है।

कवि भागचन्द्रके पद : परिचय और समीक्षा

कविवर भागचन्द उन सहृदय और भावुक कवियोंमें हैं जो निरन्तर आत्मगुणोंके गुणगानमें मग्न रहते हैं। इनके पदोंमें तन्मयता अधिक पायी जाती है।

निज कारज काहे न सारे रे, भूले प्रानी ॥ टेक ॥
परिग्रह भारथकी कहा नहीं, उनरत होत तिहारे रे। निज कारज०।
रोगी नर तेरी वपु को कहा निसदिन नाहीं जारे रे॥ निज कारज०।

कवि संसारकी अवास्तविकताका चित्रण करता हुआ कहता है—

जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।
संग साथी कोई नहीं तेरा।
अपना सुख दुख आप ही भुगतै, होत कुटुम्ब न भेला।
स्वार्थ भयें सब बिछुरि जात हैं, विघट जात ज्यों मेला॥१॥
रक्षक कोई न पूरन ह्वै जब, आयु अन्तकी बेला।
फूटत पार बँधत नहिं जैसे दुद्धर जलको ठेला॥२॥
तन-धन-जीवन विनशि जात ज्यों, इन्द्रजालको खेला।
'भागचन्द' इमि लखकर भाई, हो सतगुरुका चेला॥३॥
जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।

आध्यात्मिक साधनामें सबसे बड़ी बाधा मोहके उदयसे उत्पन्न होती है। यह जीव भोगविलासकी वृत्ति भी मोहके कारण ही करता है। सुन्दर वस्त्राभूषण, अलंकार, पुष्पमाला आदि-द्वारा शरीरको सज्जित करनेकी चेष्टा भी इसीके उदयसे उत्पन्न होती है। मोह वह तेज शराब है जिसका नशा जीवको सुख और शान्तिसे वंचित कर देता है, मानवकी सारी प्रवृत्तियाँ बहिर्मुखी हो जाती हैं जिससे वह अपने कर्मकालुष्यको दूर नहीं कर पाता। समता रस ही एक ऐसा आनन्द है, जिससे मानवको अद्भुत शान्ति मिलती है, कविने इस प्रसंगके पदोंमें भौतिकवादकी

विगर्हणा की है। यद्यपि काव्यके मूल तत्त्व हृदयकी रागात्मक विभूतिका शुद्धात्मदर्शनके साथ सामजस्य नहीं बैठता है, पर कविने आध्यात्मिक चिन्तन-प्रधान पदोमे भी अपनी भावुकताका समावेश कर अपने कविकर्मका परिचय दिया है।

कवि भागचन्दमें दौलतरामके समान हृदय-पक्षका सन्तुलन नहीं है। इनमें तर्क, विचार और चिन्तनकी प्रधानता है। इसी कारण इनके पदोंमे विचारोकी सघनता रहती है। निम्नपदमे दार्शनिक तत्त्वोको हृदयग्राहक रूप देनेकी सफल चेष्टा वर्त्तमान है।

जे दिन तुम विवेक विन खोये ॥ टेक ॥
मोह वारुणी पी अनादि तैं, परपद में चिर सोये।
सुख करंड चितपिंड आपपद, गुन अनन्त नहिं जोये ॥ जे दिन० ॥
होहि बहिर्मुख हानि राग रुख, कर्मबीज बहु बोये।
तसु फल सुख-दुःख सामग्री लखि, चितमें हरपे रोये ॥ जे दिन० ॥
धवल ध्यान शुचि सलिल पूरतैं, आस्रव मल नहिं धोये।
पर द्रव्यनि की चाह न रोकी, विविध परिग्रह ढोये ॥ जे दिन० ॥
अब निजमें निज जान नियत तहाँ, निज परिनाम समोये।
यह शिव-मारग समरस सागर, 'भागचंद' हित तो ये ॥ जे दिन०॥

विशुद्ध दार्शनिकके समान कविने तत्त्वार्थश्रद्धानी और ज्ञानीकी प्रशसा की है। यद्यपि वर्णनमे कविने रूपक उत्प्रेक्षा अलङ्कारोंका अवलम्बन लिया है, किन्तु शुष्क सैद्धान्तिकता रहनेसे भाव और रसकी कमी रह गयी है। ज्ञानी जीव किस प्रकार ससारमे निर्भय होकर विचरण करता है तथा उन्हे अपना आचार-व्यवहार किस प्रकार रखना चाहिये इत्यादि विषयका विश्लेषण करनेवाले पदोमें कविका चिन्तन विद्यमान है; पर भावुकता नहीं है। हाँ, प्रार्थनापरक पदोंमें मूर्त्त-अमूर्त्तको आलम्बन लेकर कविने अपने अन्तर्जगत्की अभिव्यक्ति अनूठे ढंगसे की है। इन

पदोंमें विराट् कल्पना, अगाध दार्शनिकता और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ हैं। भावनाओंमें विवेचनकी प्रवृत्ति इनके पदोंका एक मुख्य गुण है। निम्नपद दर्शनीय है—

आनन्दाश्रु बहैं लोचनतैं, तातैं आनत न्हाया।
गद्गद स्पष्ट वचनजुत निर्मल, मिष्टगान सुरगाया ॥ टेक ॥
भव वन में बहु भ्रमण कियो तहाँ, दुःखदावानल ताया।
अब तुम भक्तिसुधारसवादी मैं अवगाह कराया ॥ आनन्दाश्रु० ॥

इस प्रकार कवि भागचंदके पदोमे हृदयकी तीव्रानुभूति विद्यमान है। जिस पदमें जिस भावनाको व्यक्त करना चाहते हैं उस पदमें उसे वह गहराई, सूक्ष्मता और मार्मिकताके साथ व्यक्त कर सके हैं।

भजन और पद रचनेमें इनका जैन कवियोमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके पदोमे अनुभूतिकी तीव्रता, लयात्मक संवेदन-शीलता और समाहित भावनाका पूरा अस्तित्व विद्यमान है। आत्मशोधनके प्रति जो जागरूकता इनमें है, वह कम कवियोमे उपलब्ध होगी। इनकी विचारोकी कल्पना और आत्मानुभूतिकी प्रेरणा पाठकोंके समक्ष ऐसा सुन्दर चित्र उपस्थित करती है जिससे पाठक अनुभूतिमें लीन हुए बिना नहीं रह सकता। तात्पर्य यह है कि इनकी अनुभूतिमे गहराई है, प्रबल वेग नहीं। अतः इनके पद पाठकोको डूबनेका अवसर देते है, बहनेका नही। संसाररूपी मरुभूमिकी वासनारूपी बालुकासे तप्त कवि शान्ति चाहता है। वह अनुभव करता है कि मृत्युका सबंध जीवनके साथ है, जीवनका शाश्वतिक सत्य मृत्यु है। यह मृत्यु हमारे सिरपर सदा वर्त्तमान है। अतः हर क्षण प्रत्येक व्यक्तिको सतर्क रहना चाहिये। कवि गुनगुनाता हुआ कहता है—

कवि बुधजनके पद : परिचय और समीक्षा

काल अचानक ही ले जायगा, गाफिल होकर रहना क्या रे ॥ टेक ॥
छिनहूँ तोकूँ नाहिं बचावैं, तो सुभटन का रखना क्या रे ॥ काल० ॥

रंच सवाद करन के काजै, नरकन में दुख भरना क्या रे ॥ काल० ॥
कुलजन पथिकन के काजै, नरकन में दुख भरना क्या रे ॥ काल० ॥

आज दर्शन हो जाने पर कविने आत्माका विश्लेषण एक भावुकके नाते बड़ा ही सरस और रमणीय किया है। कवि कहता है—

मैं देखा आतम रामा ॥ टेक० ॥
रूप, फरस, रस, गंध तैं न्यारा, दरस-ज्ञान-गुन धामा।
नित्य निरंजन जाकै नाहीं, क्रोध, लोभ-मद कामा ॥ मैं देखा० ॥
भूख-प्यास सुख-दुख नहिं जाके, नाहीं बनपुर गामा।
नहिं साहब नहिं चाकर भाई, नहीं तात नहिं मामा ॥ मैं देखा० ॥
भूलि अनादि थकी जग भटकत, लै पुद्गलका जामा।
'बुधजन' संगति जिनगुरुकी तैं, मैं पाया मुझ ठामा ॥ मैं देखा० ॥

इनके पदोको भी दो भागोमे विभक्त किया जा सकता है—भक्ति या प्रार्थनापरक और तथ्यनिरूपक या दार्शनिक। दोनों प्रकारके पदोका वर्ण्य विषय भी प्रायः वही है। जिसका निरूपण पूर्वमे किया जा चुका है।

भगवद्भक्तिके बिना जीवन किस प्रकार विषयोंमें व्यतीत हो जाता है। विषयी प्राणी तप, ध्यान, भक्ति, पूजा आदिमे अपना चित्त नही लगाते। उन्हे परपरिणति ही श्रेयस्कर प्रतीत होती है। पर भक्ति-द्वारा सहजमें मानवको आत्मबोध प्राप्त हो जाता, जिससे वह चैतन्याभिराम गुणग्राम आत्माभिरामको प्राप्त कर लेता है। जबतक शरीरमे बल है, शक्ति है, तभी तक प्रभु-भजन या प्रभु-ध्यानकी क्रियाको सम्पन्न किया जा सकता है, परन्तु शरीरके शिथिल हो जानेपर भक्ति-भावनाको सम्पन्न नहीं किया जा सकता। अतएव शरीरके स्वस्थ रहनेपर अवश्य ही प्रभु-भजन करना चाहिये। कवि इसी तथ्यका निरूपण करता हुआ मानव जीवनका विश्लेषण करता है—

भजन विन यौं ही जनम गमायौ।
पानी पै क्या पाल न बांधी, फिर पीछे पछतायो। भजन० ॥
रामा-मोह भये दिन खोवत, आशापाश बंधायो।
जप-तप संजम दान न दीनौं, मानुष जनम हरायो ॥ भजन० ॥
देह सीस जब काँपन लागी, दसन चलाचल थायौं।
लागी आगि बुझावन कारन, चाहत कूप खुदायो ॥ भजन० ॥

कवि बुधजनकी भाषापर राजस्थानी भाषाका प्रभाव ही नहीं है अपितु इन्होंने राजस्थानी मिश्रित ब्रज भाषाका प्रयोग किया है। पदो प्रवाह और प्रभाव दोनों ही विद्यमान हैं। रूपकोंमे भाषाकी लाक्षणिकत और वर्णोंका विचित्र विन्यास भी है।

जैन-पद-रचयिताओमें कवि वृन्दावनका भी प्रतिष्ठित स्थान है इनके पदोंमें भक्तिकी उच्च भावना, धार्मिक सजगता और आत्म-निवेदन विद्यमान है। आत्म-परितोषके साथ लोक हित सम्पन्न करना ही इनके काव्यका उद्देश्य है। यद्यपि इनके पदोंमें मौलिकताका अभाव है। हाँ भक्ति-विह्वलता और विनम्र आत्म-समर्पणके कारण अभिव्यंजना शक्ति पूर्णरूपेण विद्यमान है। इनकी भावनाएँ आत्म-जगत्की सीमासे बाहर निकलकर सर्वसामान्यके साथ सहानुभूति रखती हैं। इनकी भक्ति केवल आत्म-परितोषी ही नहीं, विश्वव्यापक भी है। सुकुमार भावनाएँ और लयात्मक संगीतने अनुभूति और कल्पनाका समन्वय प्रस्तुत किया है। निराशाके बाद आशाका संदेश और आराध्यमें अटूट विश्वास इनके पदोका प्राण है। कवि कहता है—

कवि वृन्दावनके पद : परिचय और समीक्षा

निशदिन श्रीजिन मोहि अधार ॥ टेक ॥
जिनके चरन-कमलके सेवत, संकट कटत अपार ॥ निशदिन० ॥
जिनको वचन सुधारस-गर्भित, मेटत कुमति विकार ॥निशदिन०॥

भव आताप बुझावतको है, महामेघ जलधार ॥ निशदिन० ॥
जिनको भगति सहित नित सुरपत, पूजत अष्ट प्रकार ॥निशदिन०॥
जिनको विरद वेदविद वरनत, दारुण दुख-हरतार ॥ निशदिन० ॥
भविक वृन्दकी विथा निवारो, अपनी ओर निहार ॥ निशदिन० ॥

नीति-विषयक पदो और ज्ञानोपदेशक पदोमे कविने जैनागमके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हुए नीति और ज्ञानकी बाते बतायी है। यद्यपि वर्णनकी प्रणाली अत्यन्त सरल है, भाषामे माधुर्य गुण है।

धन धन श्री गुरु दीन दयाल ॥ टेक० ॥
परम दिगम्बर सेवाधारी, जगजीवन प्रतिपाल।
मूल अठाइस चौरासी लख, उत्तर गुण मनिभाल ॥ धन० ॥
देह भोग भवसो विरकत नित, परिसह सहत त्रिकाल ॥ धन० ॥
शुद्ध उपभोग जोग सुदमंडित, चाखत सुरस रसाल ॥ धन० ॥
× × × ×
सेठ सुजन बर निधि भरी, दुख द्वन्द विदारे।

कवि वृन्दावनकी भाषा पर पूर्वी भाषाका प्रभाव है। सुकुमार शब्दावलीमे स्वरकी साधना और तन्मयताका लयकारी संगीत है।

पदोंका तुलनात्मक विवेचन

अखण्ड सौन्दर्यात्मक सत्यके क्षणिक स्पर्शमात्रसे मानव-हृदय परिस्पन्दित हो भावना-लहरियोसे उद्वेलित होने लगता है। इसी हृदयालोडनका परिणाम गीति-काव्य है, जिसमें संगीतका माध्यम सर्व प्रधान स्थान रखता है। देश, काल और व्यक्तिकी सीमित परिधिसे आवेष्टित हो आन्तरिक संगीतका यह व्यक्तरूप अनेक रूप धारण कर सकता है। परन्तु प्रेरणाका प्रधान उत्स अखिल सत्य वास्तवमें अखण्ड और एक है। अतः बाह्य रूपरेखामे महान् अन्तर होते हुए भी यदि विभिन्न गीतिकारोने एक ही मौलिक तत्त्व व्यक्त किये हों तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। जो कुछ विभिन्नता मिलती है वह तो स्थूल

जगत्के प्रभावका परिणाम है। सूक्ष्म भावजगत्में तो अनेकताका कोई स्थान ही नही। इसलिए यह आवश्यक है कि हम विभिन्न देश और कालके तथा विभिन्न दार्शनिक विचारोंसे प्रभावित गीतकारोंके मौलिक तत्त्वों तथा उनकी कलात्मक विशेषताओंका तुलनात्मक विचार करें।

हम देख चुके हैं कि जनपद-साहित्यमे सगीतमय भावात्मक आत्माभिव्यक्तिके साथ दार्शनिक विचारोकी अभिव्यंजना भी अन्तर्निहित है। यद्यपि पदोका अन्तरङ्ग—वस्तुतत्त्व हृदयके अनुरूप ही सुकोमल, तरल और भावनापूर्ण है; पर मस्तिष्ककी ऊहापोही और दार्शनिक विचारोंकी गहनता भी है। जैन-पद-रचयिताओंकी प्रेरणाका स्रोत जिनेश्वर भक्ति या आत्मरति है। जैन दर्शनमें भक्तिका रूप दास्य, सख्य और माधुर्य भावकी भक्तिसे भिन्न है, अतः कोई भी साधक अनेक चिकनी-चुपड़ी प्रशसात्मक बातो-द्वारा वीतरागी प्रभुको प्रसन्न कर उनकी प्रसन्नता-द्वारा अपने किसी लौकिक या अलौकिक कार्यको सिद्ध करनेका उद्देश्य नही रखता है और न परम वीतरागी देवके साथ यह घटित ही हो सकता है, क्योंकि सच्चिदानन्दमय प्रभुमे रागाशका अभाव होनेसे पूजा, स्तुति या भक्ति-द्वारा प्रसन्नताका सञ्चार होना असम्भव है; अतएव वह भक्ति करनेवालोंको कुछ देता, दिलाता नही है। इसी तरह द्वेषाशका अभाव होनेसे वीतरागी किसीकी निन्दासे अप्रसन्न या कुपित भी नहीं होते है और न दण्ड देने, दिलानेकी ही कोई व्यवस्था निर्धारित करते है। निन्दा और स्तुति, भक्ति और ईर्ष्या उनके लिए समान है, वह दोनोके प्रति उदासीन हैं। परन्तु विचित्रता यह है कि स्तुति और निन्दा करनेवाला स्वतः अभ्युदय या दण्डको प्राप्त कर लेता है।[१]

१—सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते, द्विषंस्त्वयि प्रत्यय-वत्प्रलीयते।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि, प्रभो! परं चित्रमिदं तवेहितम् ॥६९॥

अर्थ—हे भगवन्! आपका मित्रसे न अनुराग है और न शत्रुसे द्वेष है; अतः आप किसीसे प्रसन्न और अप्रसन्न नहीं होते हैः फिर भी

शुद्धात्माओंकी उपासना या भक्तिका आलम्बन पाकर मानवका चंचल चित्त क्षण भरके लिए स्थिर हो जाता है, आलम्बनके गुणोंका स्मरण कर अपने भीतर भी उन्ही गुणोको विकसित करनेकी प्रेरणा पाता है तथा उनके गुणोंसे अनुप्राणित हो मिथ्या परिणतिको दूर करनेके पुरुषार्थमे रत हो जाता है। जैन दर्शनमें शुद्ध आत्माका नाम ही परमात्मा है; प्रत्येक जीवात्मा कर्मबन्धनोंके विलग हो जाने पर परमात्मा बन जाती है। अतः अपने उत्थान और पतनका दायित्व स्वय अपना है। अपने कार्योंसे ही यह जीव बँधता है और अपने कार्योंसे ही बन्धन-मुक्त होता है।

कर्मोंका कर्त्ता और भोक्ता भी यह जीव ही है। अपने किये कर्मों का फल इसको स्वय भोगना पडता है। ईश्वर या परमात्मा किसी भी प्राणीको किसी भी प्रकारका फल नहीं देता है। इस प्रकारके ईश्वरकी उपासना करनेसे साधककी परिणति स्वतः शुद्ध हो जाती है, जिससे अभ्युदयकी प्राप्ति होती है। अतः जैन दर्शनानुसार उपासना या भक्ति अकिंचन या नैराश्यकी भावना नही है। साधक उन शुद्धात्माओंकी, जिन्होंने आत्म-संयम, तपस्या, योग, ध्यान प्रभृतिके द्वारा कर्म-बन्धनको नष्टकर जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्त कर लिया है। पूर्ण ज्ञान-ज्योतिके प्रज्वलित हो जानेसे जिन्होंने ससारके समस्त पदार्थों एव उनके समस्त गुण और अवस्थाओंको भली भाँति अवगत कर लिया है, उपासना करता है। इस प्रकारकी उपासना या भक्तिसे आराधककी आत्मा स्वच्छ या निर्मल होती है।

जैन-पद-रचयिताओंने इसी भक्तिभावनासे प्रेरणा प्राप्त कर भावात्मक पदोकी रचना की है। यद्यपि कतिपय पद, जिन्हे प्रभाती या बधाईकी

आपकी भक्ति करनेवाला श्रीसमृद्धिको और निन्दा करनेवाला पाप-बुद्धि को प्राप्त होता है, यही आश्चर्यकी बात है। —स्तुतिविद्या।

संज्ञा दी गयी है, में दास्यभाव वर्तमान मिलेगा, परन्तु प्रधानतः साधक अपनेको शुद्ध करनेके लिए इस प्रकार शुद्धात्माओंका आश्रय लेता है; जिस प्रकार दीपकको प्रज्वलित करनेके लिए अन्य दीपकोंकी लौका सहारा लेना पड़ता है। लौका अवलम्बन देनेवाला दीपक अपने भीतरसे किसी वस्तुको प्रदान नहीं करता है, पर अपने तेज-द्वारा अन्यको प्रकाशित या प्रज्वलित करनेमें सहायक होता है। जैन पद-रचयिताओंने भी इसी भक्ति-भावनाकी अभिव्यजना की है। अवतारवाद इन्होने नहीं माना है और न निर्गुण या सगुण सिद्धान्तके विवादमें पडनेका प्रयास किया है। जैन-दर्शनमें अनेकान्तवादकी विवेचना—परस्पर आपेक्षिक अनेक धर्मात्मक वस्तुकी विवेचना की गयी है; जिसमे आराध्य वीतरागी प्रभु एककी अपेक्षा सुनिश्चित दृष्टिकोणसे सगुण और अन्य आपेक्षिक धर्मकी अपेक्षा निर्गुण है।

यद्यपि आराध्यको शील, ज्ञान, शक्तिका भाण्डार माना है, जिससे कोई भी साधक अपनी मनोरम, गुप्तशक्तियोका उद्घाटन करनेमें प्रगतिशील बनता है। लोकरजन और लोकरक्षण करना भगवान्‌का कार्य नहीं है, किन्तु उनके पूत गुणोकी स्मृति करनेसे लोकरजनके कार्य सहजमें सम्पन्न हो जाते हैं। इसी कारण जैन-पद-रचयिताओंको ससारका विश्लेषण करते समय माया, मिथ्यात्व, शरीर, विकार आदिका विवेचन भी करना पड़ा है। संसार और प्रलोभनोंसे वचनेके लिए जैन-पद-रचयिताओने मानव-प्रवृत्तियोंका सुन्दर विश्लेषण किया है। इनके मूलस्रोत एवं प्रेरणा दोनोका स्थान हृदय है। जैन सन्तोका भगवत्प्रेम शुष्क सिद्धान्त नहीं, अपितु स्थायी प्रवृत्ति है। यह आत्माकी अशुभ प्रवृत्तिका निरोध कर शुभ प्रवृत्ति-का उदय करता है, जिससे दया, क्षमा, शान्ति आदि श्रेयस्कर परिणाम उत्पन्न होते हैं।

जैन पदोका वर्ण्य विषय भक्ति और प्रार्थनाके अतिरिक्त मन, शरीर, इन्द्रिय आदिकी प्रवृत्तियोंका अत्यन्त सूक्ष्मता और मार्मिकताके साथ

विवेचन करना एव आध्यात्मिक भूमियोका स्पर्श करते हुए सहज समाधिको प्राप्त करना है। साधक अपने इस शरीरका उपयोग मोक्षप्राप्तिके लिए करता है, वह विश्वके भौतिकवादकी चकाचौंधसे अविचलित रहकर स्वानुभूति-द्वारा आत्माकी विभाव परिणतिको स्वभाव परिणतिके रूपमे परिवर्तित करता है। जैनपदोमे यद्यपि ऊँचे दार्शनिक सिद्धान्तोका भी विश्लेषण है, परन्तु जीवनकी व्याख्या अपनी प्रवृत्तियोका परिष्कार कर जीवनके चरम लक्ष्यको प्राप्त करनेका सकेत भी निहित है।

हिन्दी साहित्यमें गीत और पद-रचयिताओमे निर्गुण सन्त कबीर रविदास, दादू, मलूकदास और सगुण सम्प्रदायमे सूर, तुलसी, मीरा आदि भक्त कवियोका नाम आदरके साथ लिया जाता है। इन सन्त और भक्तोंने पदोकी रचना कर हिन्दी साहित्यमे भक्ति और अध्यात्म-सम्बन्धी अपूर्व व्याख्याएँ प्रस्तुत की है। निर्गुण सन्तोंके तात्त्विक सिद्धान्त उपनिषदोंके वेदान्तवाद तथा जैनोके शुद्धात्मवादसे बहुत साम्य रखते हैं। इन सबोंकी भक्तिकी मूलप्रेरणा वेदान्त या शुद्धात्मवादसे मिली, इसी कारण कबीरने बताया—"सबके हृदयमे परमात्माका निवास है। उसे बाहर न ढूँढकर भीतर ही ढूँढ़ना चाहिये। आत्मा ही परमात्मा है, दोनोंमे एकत्वभाव है। इस प्रकार प्रत्येक जीव परमात्मा है। यही नहीं, एक अर्थमे जो कुछ है सब परमात्मा है।" निर्गुण सन्तोंने अवतारवादका खण्डन किया। पूजा-अर्चा जिसका सम्बन्ध दृश्य पदार्थोंसे है, इनके विचारोके प्रतिकूल है। भौतिक शरीरकी दृष्टिसे कोई भी व्यक्ति ईश्वर नहीं हो सकता है। आत्माकी दृष्टिसे सभी आत्माएँ ब्रह्म हैं। अतएव सन्तोंके मतमे जन्म-मरणसे रहित परब्रह्म ही परमात्मा हो सकता है। इसी परब्रह्मका नाम-स्मरण, भक्ति और प्रेम करनेसे कल्याण होता है। जब इसका प्रेम चरमावस्थाको प्राप्त हो जाता है तो साधककी आत्मा उसी ब्रह्ममे मिल जाती है। इसी भक्ति-भावनाको लेकर कबीर, रविदास आदि सन्तोने अध्यात्म-पद रचे। इन पदोंकी तुलना अनेक जैन पदोसे की जा सकती

है। कबीरके रहस्यवाद-सम्बन्धी अनेक पद बनारसीदासके पदोंके समकक्ष हैं। कबीरका मानवीय विकारों और प्रवृत्तियोंका विश्लेषण तो अनेक अशोंमें जैन-पद-रचयिताओंसे समानता रखता है।

मोक्षप्राप्तिका मूलसाधन ब्रह्म या शुद्धात्माकी स्मृति है। मनुष्य सासारिक स्वार्थपरक कार्योंमे जैसे-जैसे रत होता जाता है, वैसे-वैसे यह स्मृति भी क्षीण होती जाती है। कबीरने बताया है कि इस सासारिक द्वन्द्वमें रहते हुए भी कभी-कभी ब्रह्मकी स्मृतिकी झलक प्राप्त हो सकती है। मनुष्य अपने स्वरूपको भूल जानेसे ही ससारमें परिभ्रमण कर रहा है। भ्रान्तिसे जैसे सिंह जलमें पडनेवाले प्रतिबिम्बको अपना शत्रु समझ क्रुद्ध हो उससे युद्ध करने लगता है और अनेक विपत्तियोंको सहन करता है, अथवा शुक जैसे अपने उड़नेकी चालको भूलकर व्याधकी नलिनीपर बैठते ही, उसके घूम जानेसे उलटा लटक जाता है और समझने लगता है कि नलिनीने उसे पकड लिया है; इसी प्रकार यह आत्मा अपने स्वरूपको भूलकर नाना प्रकारके कष्टोंको उठा रहा है—

अपनपौ आप ही बिसरौं।
जैसे सोनहा काँच-मन्दिर मैं भरमत भूँकि मरो॥
जो केहरि वपु निरखि कूपजल प्रतिमा देखि परो।
ऐसेहिं मदगज फटिकशिला पर दसननि आनि अरो॥
मरकट मुठी स्वाद ना बिसरै घर घर नटत फिरो।
कह 'कबीर' नलनी कै सुवना तोहि कौने पकरो॥

कवि दौलतरामने इसी आशयका विवेचन किया है। आत्मस्वरूपकी विस्मृतिके कारण ही ससारमे अनेक कष्ट उठाने पड़ रहे है। भ्रमवश ही यह जीव अपनेसे भिन्न पर-पदार्थोंको अपना समझ गया है। कवि कहता है—

अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ ।
ज्यों शुक नभचाल विसरि नलिनी लटकायौ ॥
चेतन अविरुद्ध शुद्ध दरशबोधमय विशुद्ध,
तजि जडरस-फरस-रूप, पुद्गल अपनायौ ॥
इन्द्रिय सुख दुख में नित्त, पाग राग रुख में चित्त,
दायक भव-विपति-वृन्द बन्धको बढ़ायौ ॥
अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ ॥

× × ×

आपा नहिं जाना तूने, कैसा ज्ञानधारी रे ।
देहाश्रित करि क्रिया आपको, मानत शिवमगचारी रे ॥

× × ×

आप भ्रमविनाश आप आप जान पायौ,
कर्णधृत सुवर्ण जिमि चितार चैन थायौ ।
मेरो तन तनमय तन, मेरो मैं तनको त्रिकाल,
यौं कुबोध नश सुबोध भान जायौ ॥ आप० ॥
यह सुजैनवैन ऐन, चिन्तत पुनि पुनि सुनैन,
प्रगटौ अब भेद निज, निवेद गुन बढ़ायौ ॥ आप० ॥
यौं ही चित अचित मिश्र, ज्ञेय न अहेय हेय,
इंधन धनंजय जैसे, स्वामि योग गायौ ॥ आप० ॥
भँमर पोत छुटत झटति, बाछित तट निकटत जिमि,
मोह राग रुख हरजिय, शिवतट निकटायौ ॥ आप० ॥
विमल सौख्यमय सदीव, मैं हूँ मैं नहिं अजीव,
जोत होत रज्जुमय, भुजंग भय भगायौ ॥ आप० ॥
यौं ही जिनचंद सुगुन, चिंतत परमारथ गुन,
'दौल' भाग जागो जब, अल्प पूर्व आयौ ॥ आप० ॥

तुलनात्मक दृष्टिसे कबीर और दौलतरामके उपर्युक्त पद्योंमें उपमान प्रायः समान हैं। भ्रमको व्यक्त करनेके लिए कबीरने सुआकी नलिनी, कर्णधृत स्वर्ण, सिंहका प्रतिबिम्ब, स्फटिकशिलामें गजके दाँतोका प्रतिबिम्ब और बन्दरका घर-घर नाचना आदि दृष्टान्त दिये हैं। कवि दौलतराम ने सुआकी नलिनी, कर्णधृत स्वर्ण आदि उदाहरणोंको ही लेकर भ्रम-का सुन्दर विश्लेषण किया है। कबीरदासने जहाँ उदाहरणोंके द्वारा ही भ्रमकी अभिव्यक्ति की है, वहाँ दौलतरामने भ्रमकी अभिव्यक्तिमें भ्रम क्या है, किस प्रकार हो रहा है तथा उसे किस प्रकार दूर किया जा सकता है, आदि विवेचन भी किया है। अर्थात् उनकी दार्शनिक भूमि अपेक्षाकृत विशद है।

कबीरने मायाका विवेचन करते हुए बतलाया है कि इस मोहिनी मायाने सारे संसारको ठग लिया है। मायाके कारण ही विष्णु, शिव आदि देव भी लक्ष्मी और भवानीके आधीन है। मायाकी व्यापकताका विवेचन करता हुआ कवि कहता है—

माया महा ठगिनी हम जानी।
तिरगुन फाँस लिये कर डोले, बोलै मधुरी बानी॥
केशव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरति ह्वै बैठी, तीरथ में भइ पानी॥
योगी के योगिनी ह्वै बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहु के कौड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिनि ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहैं 'कबीर' सुनो हो संतो, यह सब अकथ कहानी॥

कवि भूधरदासने भी मायाके उसी ठगिनी रूपका कबीरसे मिलता-जुलता विवेचन किया है। मायाको ठगिनीका रूपक दोनोंका समान है। अन्तर इतना ही है कि जहाँ कबीरने केवल उदाहरणों-द्वारा माया

-की धूर्तताका विश्लेषण किया है, वहाँ कवि भूधरदासने मायाके मोहक कार्योंका निरूपण करते हुए उसकी ठगाईका परिचय दिया है। भूधरदास-के इस पदमें व्यंग्यका पुट रहनेसे सर्व साधारणको अधिक प्रभावित करता है। कवि भूधरदास कहता है—

सुन ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया।
टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पछिताया॥ सुन०॥
आपा तनक दिखाय बीज ज्यों, मूढ़मती ललचाया।
करि मद अंध धर्म हर लीनौं, अंत नरक पहुँचाया॥ सुन०॥
केते कंथ किये तैं कुलटा, तो भी मन न अघाया।
किसही सौं नहिं प्रीति निवाही, वह तजि और लुभाया॥ सुन०॥
'भूधर' ठगत फिरै यह सबकौं, भौंदू करि जग पाया।
जो इस ठगनीको ठग बैठे, मैं तिसकौं सिर नाया॥ सुन०॥

नाम सुमिरनको सभी धर्मोंने एक विशेष स्थान दिया है। नाम-स्मरण करनेसे मन पवित्र होता है तथा आराध्यके उज्ज्वल गुणोंके प्रति सहज ही आकर्षण उत्पन्न होता है। वस्तुतः नामस्मरण बाह्य साधना नहीं है, किन्तु एक आध्यात्मिक साधना है, ध्यानका एक भेद है। जो विना भाव के मन्त्रवत् नाम दुहराने को सब कुछ मानते हैं, कबीरने उनका खडन किया है। कबीर ने कहा है—"पडित व्यर्थ ही बकवाद करते हैं, यदि राम कहने मात्रसे ही ससारको मुक्ति मिल जाय तो 'खाँड' शब्दके कहने मात्रसे ही हमारा मुँह मीठा हो सकता है। यदि 'आग' कहनेमात्रसे ही पाँव जलने लगे अथवा 'पानी' कहनेमात्रसे ही प्यास जाती रहे तथा 'भोजन' कहने मात्रसे ही भूख मिट जाय तो सभी मुक्तिके भागी हो सकेंगे। परन्तु केवल ऐसे मान्त्रिक स्मरणोंसे वास्तवमें कोई लाभ नहीं।" जैन मान्यतामें भी विना हार्दिक भावके नामस्मरण या माला फेरना निरर्थक माना गया है। "यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः" भावरहित नामस्मरण या

भक्ति करनेसे आत्मिक विकास नहीं होता है। जैनधर्मकी उपासना साधना-मय है, दीनताभरी याचना या खुशामद नहीं है। शुद्धात्मानुभूतिके गौरव-से ओत-प्रोत है; दीनता, क्षुद्रता और स्वार्थपरताको इसमें तनिक भी स्थान प्राप्त नहीं है। नामस्मरण और भगवद्भजनको जैन साहित्यकारोंने शुभ-परिणति रूप मानते हुए भी शुद्ध परिणतिका प्रबल साधन माना है। उक्त दोनों साधन आत्माको ध्यान या समाधिकी ओर प्रेरित करते हैं। जो केवल शब्दोच्चारण कर जाप कर लेनेमें अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री मानते हैं, वे वस्तुतः अन्धेरेमें हैं। हार्दिक भावनाओंका उपयोग—प्रभु-गुणोंका ध्यान रहना परमावश्यक है। अतः कबीरके नामस्मरण-विषयक पद जैन पदोंसे समता रखते हैं। कबीरने भी शब्दोच्चारणकी अपेक्षा भावको प्रधानता दी है। संसारके बाह्य द्वन्द्वोंमें संलग्न रहनेपर भी साधक आराध्यके स्मरण-से अपने स्वरूपको उपलब्ध करनेमें समर्थ होता है। धीरे-धीरे वह 'सोऽहं' का अनुभव करने लगता है और आगे चलकर "शुद्धोऽहं, बुद्धोऽहं, निरं-जनोऽहं" की अनुभूति करता हुआ अपनेमें विचरण करता है। कबीर कहता है—

भजु मन जीवन नाम सवेरा।
सुन्दर देह देख जिन भूलो, झपट लेत जस बाज बटेरा।
यह देही को गरब न कीजै, उड़ पंछी जस लेत बसेरा॥
या नगरी में रहन न पैहो, कोइ रहि जाय न दुख घनेरा।
कहै 'कबीर' सुनो भाई साधो, मानुष जनम न पैहो फेरा॥

× × ×

नाम सुमिर पछतायेगा।
पापी जियरा लोभ करत है, आज काल उठि जायेगा॥
लालच लागी जनम गँवाया, माया भरम भुलायेगा।
धन जोबन का गरब न कीजै, कागद ज्यों गलि जायेगा॥

जब जम आइ केस गहि पटकैं, ता दिन कछु न बसायेगा।
सुमिरन भजन दया नहिं कीन्हीं, तो मुख चोटा खायेगा॥
धरमराय जब लेखा माँगे, क्या मुख लेके जायेगा।
कहत 'कबीर' सुनो भई साधो, साध संग तरि जायेगा॥

कवि दौलतरामने इसी आशयके अनेक पदोंकी रचना की है। निम्न-पद तो बहुत अशोंमें मिलते-जुलते है। पाठक देखेंगे कि दोनों ही भक्त कलाकारोंमे कितना साम्य है—

भगवन्त भजन क्यों भूला रे।
यह संसार रैन का सुपना, तन धन वारि-बबूला रे॥ भगवन्त०॥
इस जोबन का कौन भरोसा, पावक में तृण-पूला रे।
काल कुदाल लिये सिर ठाढा, क्या समझै मन फूला रे॥ भगवन्त०॥
स्वारथ साधैं पाँच पाँव तू, परमारथ कौं लूला रे।
कहु कैसे सुख पैहै प्राणी, काम करै दुखमूला रे॥ भगवन्त०॥
मोह पिशाच छल्यो मति मारै, निज कर कंध वसूला रे।
भज श्रीराज मतीवर 'भूधर', दो दुरमति सिर धूला रे॥भगवन्त०॥

× × ×

जिनराज ना विसारो, मति जन्म वादि हारो।
नर भौ आसान नाहिं, देखो सोच समझ वारो॥ जिनराज०॥
सुत मात तात तरुनी, इनसौं ममत निवारो।
सबही सगे गरज के, दुखसीर नहिं निहारो॥ जिनराज०॥

नामस्मरण और भगवत्-भजन करनेपर जोर देते हुए बुधजन, आनन्दघन, भागचन्द आदिने भी अनेक सरस पदोंकी रचना की है।

मोह, अहंकार, कपट, आशा, तृष्णा, निद्रा, निन्दा, कनक-कामिनी, सन्तोष, धैर्य, दीनता, दया, सत्य, अहिंसा, मानसिक विकार, भौतिक जगत्की निस्सारता आदि-विषयक पदोंमें कबीर और जैनपद रचयिताओं-

के भावोंमे साम्य-सा है। अनेक पदोंमे तो केवल शब्दोंका अन्तर है। कही-कही कबीरके दो-तीन पदोंके भाव दौलतराम, भूधर, बुधजनके एक पदमे आ गये है और एकाध स्थलपर जैन-पद-रचयिताओंके दो-तीन पदों-के भाव कबीरके एक ही पदमे अभिव्यक्त हुए है। कबीरका चरखा और तॅबूरेका रूपक भूधरदासके चरखाके रूपकसे कितना साम्य रखता है—

चरखा चलै सुरत बिरहिन का।
काया नगरी बनी अति सुन्दर, महल बना चेतन का।
सुरत भाँवरी होत गगन में, पीढ़ा ज्ञान-रतन का॥
मिहीन सूत बिरहिन कातैं, माँझा प्रेम भगति का।
कहैं 'कबीर' सुनो भई साधो, माला गूँथो दिन रैन का॥

× × ×

साधो यह तन ठाठ तँबूरे का।
खेंचत तार मरोरत खूँटी, निकसत राग हजूरे का।
टूटे तार बिखरि गई खूँटी, हो गया धूरम धूरे का॥
या देही का गरब न कीजे, उडि गया हंस तँबूरे का।
कहत कबीर सुनो भई साधो, अगम पंथ कोइ सूरे का॥

भूधरदास कहते हैं—

चरखा चलता नाहीं, चरखा हुआ पुराना।
पग खूँटे द्वय हालन लागे, उर मदरा खखराना।
छीदी हुई पाँखड़ी पसली, फिरे नही मनमाना॥ चरखा०॥
रसना तकली ने बल खाया, सो अब कैसे खूँटे।
सबद सूत सूधा नहिं निकसै, घडी घडी पल टूटै॥ चरखा०॥
आयु माल का नहीं भरोसा, अंग चलाचल सारे।
रोज इलाज मरम्मत चाहै, वैद बाढ़ई हारे॥ चरखा०॥

नया चरखला रंगा रंगा, सबका चित्त चुरावै।
पलटा वरन गये गुन अगले, अब देखै नहिं भावै॥ चरखा०॥
मोटा महीं कात कर भाई, कर अपना सुरझेरा।
अन्त आग में ईंधन होगा "भूधर" समझ सवेरा॥ चरखा०॥

रूपकोमें जैन-पद-रचयिताओने निर्गुण सन्तोके समान आध्यात्मिक रहस्योंकी अभिव्यक्ति अपूर्व ढगसे की है। आध्यात्मिक जीवनके बीज आत्मनिरीक्षण और पश्चात्तापकी भावनापर जैन कवियोने विशेष जोर दिया है।

उपासनाके लिए उपास्यके विशिष्ट व्यक्तित्वकी आवश्यकता-समझ सगुण भक्तिका आविर्भाव हुआ। सगुण उपासकोंमें कृष्णभक्ति-शाखा और रामभक्ति-शाखामे श्रेष्ठ कलाकार हुए, जिन्होने पद और गीतोकी रचनाकर हिन्दीके भण्डारकी वृद्धि की। महाकवि सूरदासने पद-साहित्यमे नवीन उद्भावनाएँ, कोमल कल्पनाएँ और वैदग्धपूर्ण व्यञ्जनाएँ कीं। वस्तुतः सूर भाव-जगत्के सम्राट् माने गये हैं। हृदयकी जितनी गहरी थाह सूरने ली, उतनी शायद ही किसी अन्य कविने ली हो। यद्यपि सूरने अपने पदोकी रचना जयदेव और विद्यापतिकी गीत-पद्धतिपर की है; फिर भी सजीवता, चित्रमयता, मनोवैज्ञानिकता और स्वाभाविकताके कारण इनके पदोंमे मौलिकता पूर्णरूपसे विद्यमान है। जैन-पद-रचयिताओंसे सूरके पद कलापक्ष और भावपक्षकी दृष्टिसे अनेक अगोंमे साम्य रखते है।

जिस प्रकार सूरने गौरी, सारग, आसावरी, सोरठ, भैरवी, धनाश्री, ध्रुपद, विलावल, मलार, जैतिश्री, विहाग, झझोरी, सोहनीं, कान्हरा, केदारा, ईमन आदि राग-रागनियोमे पदोकी रचना की है, उसी प्रकार प्रभाती, विलावल कनडी, रामकली, अलहिया, आसावरी, जोगिया, माझ, टोडी, सारग, लहरि सारंग, पूरवी, गौड़ी, काफी कनड़ी, ईमन, झझोरी, खमाच, अहिंग, गारो कान्हरो, केदारा, सोरठ, विहाग, माल-

कोश, परज, कालिंगड़ा, गजल, मल्हार, गौरठा, विलावल, बरवा, सिंधड़ा, दुमरा, आदि अनेक राग-रागिनियोंमें जैन-पद-रचयिताओंने पदों-की रचना की है। संगीतका माधुर्य सूरके पदोंके समान ही जैनपदोंमें भी विद्यमान है।

अन्तर्जगत्के चित्रणकी दृष्टिसे सूरके अनेक पद जैन-पदोंके समान भावपूर्ण हैं। वात्सल्य, शृंगार और शान्त इन तीनों रसोंका परिपाक सूरके पदोंमें विद्यमान है। वात्सल्य रसके चित्रणमें बाल्मनोविज्ञान, शृङ्गार-विषयक पदोंमें प्रेमकी वृत्तिका व्यापक दिग्दर्शन एवं भक्ति-विषयक पदोंमें आत्माभिव्यक्ति पूर्ण रूपसे हुई है। विनयके पदोंके आरम्भमें आराध्य श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कवि कहता है—

चरनकमल बन्दौं हरिराइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लँघै, अन्धेको सब कुछ दरसाइ॥
बहिरो सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ।
'सूरदास' स्वामी करुनामय, बार-बार बन्दौं तिहि पाइ॥

जैनपदोंमें इस आशयके अनेक पद हैं। यहाँ तुलनाके लिए कवि बुधजनका एक पद उद्धृत किया जाता है। पाठक देखेंगे कि दोनोंमें कितनी समानता है—

तुम चरननकी सरन, आय सुख पायौ।
अबलौं चिर भव वन मैं डोल्यो, जन्म जन्म दुख पायौ॥ तुम०॥
ऐसो सुख सुरपति के नाहीं, सो मुख जात न गायौ।
अब सब सम्पति मो उर आई, आज परम पद लायौ॥ तुम०॥
मन वच तन तैं दृढ़ करि राखौं, कबहुँ न ज्या बिसरायौं।
बारम्बार वीनवै 'बुधजन', कीजै मनको भायौ॥ तुम०॥

सूरदासने अपने मनका परिष्कार करते हुए अपनी दूषित प्रवृत्तियोंकी निन्दा की है। तथा अपने आराध्यके समक्ष अपनी आलोचना करते

हुए अपनी कमजोरियो और त्रुटियोका यथार्थ प्रतिपादन किया है। जैन-पद-रचयिताओमे कवि भागचन्दके पद सूरदासके इन पदोसे बहुत कुछ साम्य रखते है। आत्मालोचन और पश्चात्ताप-सम्बन्धी एक-दो पद तुलनाके लिए उद्धृत किये जाते हैं। सूरदास कहते हैं—

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
तुम सौं कहाँ छिपी करुनामय, सबके अन्तरजामी॥
जो तन दियो ताहि बिसरायो, ऐसौ नोन-हरामी।
भरि-भरि द्रोह विषै को धावत, जैसे सूकर ग्रामी॥
सुनि सतसंग होत जिय आलस, विषयनि संग विसरामी।
श्रीहरि-चरन छाँडि विमुखनि की, निसदिन करत गुलामी॥
पापी परम, अधम अपराधी, सब पतितनि मैं नामी।
'सूरदास' प्रभु अधम-उधारन, सुनियै श्रीपति स्वामी॥

कवि भागचन्द भी पश्चात्ताप करते हुए कहते हैं—

मो सम कौन कुटिल खल कामी,
तुम सम कलिमल दलन न नामी।
हिंसक झूठ वाद मति विचरत, परधन-हर परवनितागामी।
लोभित चित नित चाहत धावत, दशदिश करत न खामी॥मो सम०॥
रागी देव बहुत हम जाँचे, राचे नहिं, तुम साँचे स्वामी।
बाँचे श्रुत कामादिक-पोषक, सेये कुगुरु सहित धन धामी॥ मो सम०
भाग उदय से मैं प्रभु पाये, वीतराग तुम अन्तरजामी।
तुम धुनि सुनि परलय में परगुण, जाने निजगुण चित विसरामी॥मो सम०
तुमने पशु पक्षी सब तारे, तारे अंजन चोर सुनामी।
'भागचंद' करुणाकर सुखकर, हरना यह भवसन्तति लामी॥मो सम०

कवि सूरदासने विषयोकी ओर जाते हुए मनको रोका है और

उसे नाना प्रकारसे फटकारते हुए आत्माकी ओर उन्मुख किया है। नाना प्रकारकी आकांक्षाएँ और तृष्णाएँ ही इस मनको आकृष्ट कर विषयोंमें संलग्न कर देती हैं, जिससे भोला असहाय मानव विषयेच्छाओंकी अग्निमें जलता रहता है। अनादिकालसे मानव विकार और वासनाओंके आधीन चला आ रहा है, जिससे इसे जीवनकी विविध प्रवृत्तियोंके अनुशीलनका अवसर ही नहीं मिला है। कवि सूरदासने मनको समझाते हुए अहंकार और ममकारकी भावनासे मनको दूर रखनेकी बात कही है। वास्तवमें अध्यात्म-आनन्द तभी प्राप्त हो सकता है, जब मन और हृदयका परिष्कार कर लिया जाय। इस स्वार्थी संसारके बाह्य रूपको देखकर मनुष्य अपनेको भूल जाता है, इसी कारण वह क्षणिक इन्द्रिय-जन्य सुखोंमें आनन्दका अनुभव करता है। चिरन्तन आनन्द काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मात्सर्य आदि विकारोंके परास्त करने पर ही प्राप्त हो सकता है। सत्य, सन्तोष और पवित्रता तभी आ सकती है, जब मानव अपनी आत्मामें ज्ञान और ध्यानकी अग्निको प्रज्वलित करे। ममत्व भाव ही वस्तुतः अनेक दुःखों की जड़ है। ममता के कारण ही पर-वस्तुओंको मानव अपनी समझता है। निज प्रकृतिमें दोष उत्पन्न कर अपनेको दुःखी बनाता है। प्रयोजनीभूत तत्त्वोंका चिन्तन और मनन न कर शरीरको ही अपना समझ लेता है। कवि सूरदास मानवके अज्ञान भ्रमको दूर करता हुआ कहता है—

रे मन मूरख, जन्म गँवायो।
कर अभिमान विषय-रस राँच्यो, स्याम सरन नहिं आयो॥
यह संसार फूल सेमर कौ, सुन्दर देखि भुलायो।
चाखन लाग्यो रुई गई उड़ि, हाथ कछू नहिं आयो॥
कहा भयो अब के मन सोचे, पहले नाहिं कमायो।
कहत 'सूर' भगवन्त-भजन बिनु, सिर धुनि-धुनि पछितायो॥

× × ×

जा दिन मन पंछी उडि जैहैं।
ता दिन तेरे तन-तरुवरके, सबै पात झरि जैहैं॥
घरके कहैं, वेगि ही काढौ, भूत भये कोउ खैहैं।
जा प्रीतम सों प्रीत घनेरी, सोऊ देखि डरैहैं॥

× × ×

रे मन जन्म अकारथ जात।
बिछुरे मिलन बहुरि कब ह्वैहै, ज्यो तरुवरके पात॥
सन्निपात कफ कण्ठ-विरोधी, रसना टूटी बात।
प्रान लिये जम जात मूढमति, देखत जननी तात॥

कवि सूरदासने ऊपर जिस प्रकारका ससार, शरीर और विषयोके सम्बन्धमे चित्रण किया है, ठीक वैसी ही भावाभिव्यञ्जना जैन कवियोने की है। जैन-पद-रचयिताओने बताया है कि हम स्वभावसे सुखी, ज्ञानी तथा सहज आनन्द रूप चेतन हैं। अपने इस स्वभावके भूल जानेके कारण ही हम दुःखी हो रहे हैं। शरीर जड है, विश्वके अन्य पदार्थ भी जड़ हैं। यद्यपि चैतन्य आत्माके गुणोकी अभिव्यक्ति शरीर आदि निमित्तोके आधीन है, पर स्वरूपतः आत्मा इनसे भिन्न है। मानवको दुःख कर्म-बन्धके कारण आत्माके विकृत हो जानेसे है। आत्माकी राग-द्वेष रूप परिणति ही कर्मबन्धका कारण है, अतः इस शरीरको परपदार्थ समझ कर शुद्धात्म-तत्त्वको प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। व्यर्थ ही मानव राग-द्वेष रूप परिणतिमे आसक्त रहता है तथा इसी आसक्तिमे इस अमूल्य जीवनको व्यतीत कर देता है। सभी जैन कलाकारोंने जीवन और जगत्‌के विविध रहस्योका उद्घाटन सहृदय सरस कविके रूपमे किया है, केवल दार्शनिक बनकर नहीं, यद्यपि दर्शनकी सबसे बडी थाती उनके पास थी। इसी कारण इनके जीवन-सम्बन्धी इन विश्लेषणोंमे ठोस ससारकी वास्तविकता कल्पना और भावनाके मनोरम आवरणमें निहित है। जीवनके

प्रति इनका एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है, जिससे जगत्के विभिन्न सत्योंका विश्लेषण बड़े ही सुन्दर ढगसे किया है। अहंकार और ममकार जो कि जीवनके सबसे प्रबल विकार है, जिनके कारण हमारा जीवन निरन्तर विचलित रहता है, का स्पष्ट और भावनात्मक निरूपण किया गया है। सूरदासके ही समान कवि बनारसीदास भी कहते हैं—

ऐसैं क्यों प्रभु पाइये, सुन मूरख प्रानी।
जैसैं निरख मीरिचिका, मृग मानत पानी॥
ज्यों पकवान चुरैलका, विषयरस त्यों ही।
ताके लालच तू फिरे, भ्रम भूलत यों ही॥
देह अपावन खेटकी, अपनी करि मानी।
भाषा मनसा करम की, तैं अपनी करि जानी॥

कवि भूधरदास भी संसारके विषयोंसे सावधान करते हुए कहते हैं—

मेरे मन सुवा, जिनपद पींजरे वसि, यार लाव न बार रे।
संसार में बलवच्छ सेवत, गयो काल अपार रे।
विषय फल तिस तोड़ि चाखे, कहा देख्यो सार रे।

× × ×

कवि बुधजन कहते है—

रे मन मूरख बावरे मति ढीलन लावै।
जपरे श्री अरहन्तकौं, यौ औसर जावै॥
नर-भव पाना कठिन है, यौ सुरपति चाहै।
को जाने गति कालकी, यौ अचानक आवै॥
छूट गये अब छूटते, जो छूटा चावै।
सब छूटैं या जालतैं, यौ आगम गावै॥

भोग रोग को करत हैं, इनकौं मत लावै ।
ममता तजि समता गहौ, 'बुधजन' सुख पावै ॥

× × ×

क्यो रे मन तिरपत नहिं कोय ।
अनादि काल का विपयन राच्या, अपना सरवस खोय ॥
नेकु चाख कै फिर न बाहुडे, अधिका लपटै जोय ।
ज्यों ज्यो भोग मिलै त्यो तृष्णा, अधिकी अधिकी होय ॥

× × ×

मन रे तेने जन्म अकारथ खोयो ।
तू डोलत नित जगत धंध में, ले विपयन रस लुब्यो ॥

× × ×

इस प्रकार जैन कवियोने आशाके निन्द्य रूपकी विवेचना सूरदास के समान ही की है। वस्तुतः आशा इतनी प्रचण्ड अग्नि है कि इसमे जीवनका सर्वस्व स्वाहा हो जाता है। जैन कवियोंने इसी कारण मनकी विविध दशाओका विवेचन सूक्ष्म रूपसे किया है।

महाकवि तुलसीदासके पदोकी प्रसिद्धि भी हिन्दी-साहित्यमें अत्यधिक है। इन्होंने बुद्धिवादके साथ हृदयवादका भी समन्वय किया है। इनके आध्यात्मिक और विनय-विषयक पदोका सकलन विनयपत्रिकामे है। इनके मतसे अन्तस्की शुद्धिके लिए भक्ति आवश्यक है, इसके लिए प्रभु-कृपा होनी चाहिये।

भक्तिके लिए दो बातें आवश्यक हैं—प्रथम आराध्यकी अपार वैभवशालीनता, शक्तिपूर्णता और सर्वगुणसम्पन्नताका अनुभव और द्वितीय अपनी तुच्छता, आत्मग्लानि, दीनता और असमर्थताका प्रदर्शन सच्चे भक्त अपनी दीनता या असमर्थता प्रदर्शित करनेमे अधिक

आनन्दानुभूतिका अनुभव करते है। कवि तुलसीदासने अपने पदो और भजनोमे भक्तिके सभी साधन—भजन (नाम-स्मरण), शरणागत भाव, चरित्रश्रवण-मनन-कीर्त्तन, शान्त स्वभावकी प्राप्तिका यत्न, आराध्यके स्वरूपका ध्यान, मन और शरीरके सयम-द्वारा साध्यकी प्राप्ति, आराध्यसे सम्बद्ध गगा, चित्रकूट आदि तीर्थोंका वन्दन-स्मरण एव सत्सग, साधु-सेवा, शिवभक्ति, हनुमद्भक्ति आदिका निरूपण किया है।

दास्यभावकी भक्ति न होनेपर भी जैन-पद-रचयिताओने तुलसीदासके समान ही अपने पद और भजनोंमे भक्त्यङ्गोको स्थान दिया है। आत्म-शुद्धिके लिए भी रागात्मिका भक्तिको लाभदायक बतलाया है। जैन-कवियोके द्वारा रचित पद-साहित्य अन्तःकरणमें रस उत्पन्न कर मनको सब ओरसे हटाकर उसीमें लीन करता है। इनके पद भाव, भाषा, शैली और रसकी दृष्टिसे कबीर, सूर, तुलसी आदि हिन्दीके कवियोसे किसी भी बातमें हीन नही है। तुलसीने अपनी विनयपत्रिका गणेशजीकी स्तुतिसे आरम्भ की है। जैनकवि वृन्दावन भी अपने आराध्य ऋषभनाथकी वन्दनासे ही कार्यारम्भ करनेकी ओर सकेत करता है।

कवि तुलसीदासने भगवान्से प्रार्थना की है कि हे प्रभो, आपके चरणों को छोड और कहाँ जाऊँ ! ससारमे पतितपावन नाम किसका है ? जो दीनोपर निष्काम प्रेम करता है वही सच्चा आराध्य हो सकता है। कविने अनेक उदाहरणो-द्वारा भगवान्की सर्व-शक्तिमत्ताका विवेचन किया है। उसने देव, दैत्य, नाग, मुनि आदिको मायाके आधीन पाया, अतएव वह सर्वव्यापक आराध्यके महत्त्वको बतलाता हुआ कहता है—

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतितपावन जग, केहि अति दीन पियारे ॥ १ ॥
कौन देव बराइ बिरद-हित, हठि-हठि अधम उधारे।
खग, मृग, व्याध पखान विटप जड, जवन-कवन सुरतारे ॥ २ ॥

देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब, माया विवस विचारे।
तिनके हाथ 'दास तुलसी' प्रभु, कहा अपनपौ हारे॥ ३॥

कवि दौलतराम भी इसी आशयका विश्लेषण करते हुए कहते हैं—

जाऊँ कहाँ तज शरन तिहारे।
चूक अनादितनी या हमरी, माफ करो करुणा गुनधारे॥ १॥
डूबत हों भवसागरमें अब, तुम बिन को मुह वार निकारो॥ २॥
तुम सम देव अवर नहिं कोई, तातैं हम यह हाथ पसारे॥ ३॥
मोसम अधम अनेक उधारे, बरनत हैं श्रुत शास्त्र अपारे॥ ४॥
'दौलत' को भवपार करो अब, आया है शरनागत थारे॥ ५॥

कवि तुलसीदासके पदोंमें मनका विश्लेषण, जगत्‌की क्षणभगुरता एव आत्मशोधन और हरिस्मरणकी आवश्यकताका प्रतिपादन जैन-पद-रचयिताओंके समान ही किया है। कवि कहता है—

मैं हरि, पतित-पावन सुने।
मैं पतित तुम पतितपावन, दोउ बानक बने।

कवि बुधजनने भी इसी आशयके अनेक पद रचे हैं—

पतित-उधारक दीनदयानिधि, सुन्यौ तोहि उपगारो।
मेरे औगुनपै मति जावो, अपनो सुजस विचारो॥

× × ×

पतित उधारक पतित रटत हैं, सुनिये अरज हमारी।
तुमसो देव न आन जगत में, जासौं करिये पुकारी॥

इसी प्रकार कवि तुलसीदासके पद जैन पदोंके साथ भाव, भाषा और शैलीकी दृष्टिसे साम्य रखते हैं।

प्राचीन कवियोंके अतिरिक्त आधुनिक छायावादी और रहस्यवादी कवियोंके आध्यात्मिक गीत भी जैनपदोंसे अनेक अशोंमे अनुप्राणित हैं।

जिस परिस्थितिमे ससीम आत्मा विश्वके सौन्दर्यमें असीम परमात्माके चिर सुन्दर रूपका दर्शन कर उससे तादात्म्य स्थापन करनेके लिए आकुल हो उठती है, उस स्थितिका चित्रण आध्यात्मिक जैनपदोंसे ग्रहण किया गया प्रतीत होता है। महादेवी वर्माके चिन्तनपरक और भक्तिपरक गीतोंकी भावसरणी रूप-सौन्दर्य और भावनाओंके गाम्भीर्यकी दृष्टिसे महाकवि बनारसीदासके पदोंसे प्रभावित प्रतीत होती है। दोनों कलाकारोंके अन्तस्‌मे दार्शनिक सिद्धान्तकी भावधारा एक-सी ही है। महादेवी वर्मा अव्यक्त सत्ताका अपने भीतर अनुभव करती हुई बुद्धिका विकास और भावनाका परिष्कार कर कहती हैं—

सखी मैं हूँ अमर सुहाग भरी!
प्रियके अनन्त अनुराग भरी!
किसको त्यागूँ किसको माँगूँ;
है एक मुझे मधुमय विषमय;
मेरे पद छूते ही होते,
काँटे कलियाँ प्रस्तर रसमय।
पालूँ जग का अभिशाप कहाँ,
प्रतिरोमोंमें पुलकें लहरीं।

× ×

प्रिय चिरन्तन है सजनि
क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं।

× ×

प्रिय सांध्य गगन,
मेरा जीवन!

कवि बनारसीदास भी आत्माकी रहस्यमयी प्रवृत्तियोंका उद्घाटन करते हुए कहते हैं—

बालम तुहुँ तन चितवन गागरि फूटी।
अँचरा गौ फहराय सरम गै छूटी ॥ बालम०।
हूँ तिक रहूँ जे सजनी रजनी घोर।
घर करकेउ न जानै चहुँदिसि चोर ॥ बालम०।
पिउ सुधियावत बनमें पैसिउ पेलि।
छाडउ राज डगरिया भयउ अकेलि ॥ बालम०।
सँवरौ सारदहामिनि और गुरु भान।
कछु बलमा परमारथ कहौं बखान ॥ बालम० ॥

× ×

या चेतनकी सब सुधि गई।
व्यापत मोहि विकलता भई।

× ×

पिउ निरन्तर रहत सजनि।

× ×

विषय महारस चेतन विष समतूल।
छाडहु वेगि विचार पापतरु मूल ॥

कवि प्रसादके अनेक रहस्यवादी दार्शनिक गीतोपर जैनपदोकी भावसरणीका प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। कवि प्रसाद कहता है कि जीव वृद्धावस्था और मृत्युके भयसे सदा दुःखी रहता है। जीवनमें जितने परिवर्त्तन होते आ रहे हैं, उनकी कोई सीमा नहीं है। जीवनमें अमरता स्वानुभूतिको प्राप्त करना ही है। विश्वका अणु-अणु परिवर्त्तनकी ओर अग्रसर हो रहा है, परिवर्त्तन ही जीवनका एक सत्य सिद्धान्त है। अमर आत्मामें भी शाश्वत परिवर्त्तन होता है। यह जीवात्मा शुद्ध होनेके लिए प्रतिक्षण प्रयत्नशील है।

मानव जीवन अनेक तृष्णा और आकाक्षाओंका केन्द्र है। हृदयमे अनेक प्रकारकी लालसाएँ बराबर उठती रहती हैं। जैसे 'पहाड़की चोटियोंसे बादल टकराते हैं, उसी प्रकार अनेक इच्छाएँ जीवनके कगारोंसे टकराती रहती है। बादलोंके बरसनेसे नदी प्रवाहित होती है और पहाड़ी भूमिमें हाहाकार गुरु गर्जन करती हुई तरंगायित हो आगे बढ़ती है, ठीक इसी प्रकार वेदना-परिपूर्ण ऑसुओंके बरसनेसे नाना प्रकारकी वृत्तियाँ जाग्रत होती हैं। कवि प्रसाद जीवनके व्यर्थ बीतने पर पश्चात्ताप करता हुआ कहता है—

सब जीवन बीता जाता है,
धूप छाँह के खेल सदृश। सब०।
समय भागता है प्रतिक्षण में,
नव-अतीत के तुषारकण में,
हमें लगाकर भविष्य रण में,
आप कहाँ छिप जाता है। सब०।

कवि द्यानतरायने भी जीवनके यों ही बीतने पर पश्चात्ताप प्रकट किया है।

जीवन यों ही जाता है।
बालपने में ज्ञान न पायो, खेलि खेलि सुख पाया है।
समय निकलता है प्रतिक्षण ही, मूरख मदमें सोया है।
धूप-चाँदनी झिलमिल करती, ले आशाओं का घेरा है।
धनि चेतन तू जाग आज रे, मूरख रैन बसेरा है।

× × ×

कवि प्रसादका चिरकालीन अशान्ति-चित्रण, जिसमे जीवनके सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आशा-निराशाकी भावनाओंका मार्मिक चित्रण

है; कवि भूधरदास और कवि बुधजनके पदोंमें अनुप्राणित-सा प्रतीत होता है। कवि प्रसाद कहता है—

तुम अन्तःकरणमें चिर अशान्त।
जिसको अबतक समझे थे सब जीवनमें परिवर्तन अनन्त,
अमरत्व वही अब भूलेगा तुम व्याकुल उसको कहाँ अन्त।

कवि भूधर कहता है—

आया रे बुढ़ापा मानी सुधि-बुधि बिसरानी।

× × ×

चंचल चित्त चरन थिर राखो, विषयन तैं बरजौ।
आनन तैं गुनगाय निरन्तर, पायन पाँय जजौ॥

इसप्रकार जैनपदोंमें आत्मानुभूति कोमल और मधुर शब्दोंके सम्बलसे अभिव्यक्त हुई है। पदोंमें भावप्रवणता सुन्दरी हुई है। कवि बनारसीदास, भूधरदास, भागचन्द, दौलतराम, बुधजन, आनन्दघनके पद हिन्दी साहित्यके लिए स्थायी निधि हैं। इनमें कबीर, सूर और तुलसी जैसे कवियोंसे अधिक ही आत्मानुभूति विद्यमान है।

तृतीयाध्याय

ऐतिहासिक गीतिकाव्य

अतीतसे सदा मानवका मोह रहा है। यह अतीत चाहे सुनहला हो अथवा मटमैला, पर उससे स्नेह करना मानवका स्वाभाविक गुण है। अतीतके प्रति इस प्रकार आकर्षित होनेका प्रधान कारण यह है कि भूतकालीन घटनाओंकी मधुर स्मृति वर्तमानकालीन कठिनाइयोंको विस्मृत करा सरस आनन्दानुभूति प्रदान करती है। बीती बातोंके चिन्तनमे अपूर्व रसानुभूति होती है, हृदय गौरव-रससे लबालब भर जाता है। मानवका आदिकालसे ही कुछ ऐसा अभ्यास है, जिससे वह यथार्थ जीवनके संकल्पोंसे ऊपर उठ कल्पना-लोकोंमे विचरण कर स्वर्णिम अतीतकी सजीव प्रतिमा गढ़ता है। पूर्वजोंका ज्वलन्त आदर्श नस-नसमें उष्ण रक्त प्रवाहित कर देता है। उज्ज्वल अतीतका प्रखर प्रकाश मानवके वर्त्तमान अन्धकारको विच्छिन्न कर उसे आलोकित करता है; और प्रस्तुत करता है उसे दानवतासे उठा मानवतामे।

भूतकालसे पृथक् रहकर मनुष्य अपने वर्त्तमानसे अभिज्ञ नहीं हो सकता है; क्योंकि वर्त्तमानके साथ भूतकाल इस प्रकार लिपटा हुआ है, जिससे प्रत्येक वर्त्तमान क्षण अतीत बनता जा रहा है। प्रत्येक क्षणका क्रिया-व्यापार अतीतके कोपमें सचित होता जा रहा है तथा कालान्तरमे यही इतिहासका प्रतिपाद्य विषय बननेका उम्मेदवार है। यही कारण है कि ऐतिहासिक स्थलों एव महापुरुषोंके नामोंके साथ हमारे हृदयका घनिष्ठ सम्बन्ध है और इसी कारण हम इतिहास-प्रेमी बनते हैं। मानव-ज्ञान-कोपका प्रत्येक कण इस बातका साक्षी है कि इतिहासका कलेवर साहित्यसे ही निर्मित होता है। प्रत्येक देश, प्रत्येक राष्ट्र और प्रत्येक जाति

अपनी आदर्शमयी यशस्वी गौरव-गाथाओंके मौलिक उपादानोंको लेकर ऐतिहासिक काव्योंका सृजन करती हैं। क्योंकि इतिहास ही राष्ट्र और व्यक्तिके जीवनमें चैतन्य, स्फूर्ति, स्वाभिमान, आशा और गौरवकी भावना उत्पन्नकर मानवको गतिशील जीवनकी ओर अग्रसर करता है। जबतक हमे अपनी पुरातन संस्कृति और आचार-व्यवहारोकी अभिज्ञता नही रहती, हम वास्तविक उन्नति करनेका अभ्यास नहीं कर पाते। महाभारतमें कृष्ण द्वैपायनने इसी कारण धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और पुरावृत्त कथाओंका मिश्रित रूप इतिहासको कहा है। इतिहासमे अतीतके सभी चलचित्र चित्रित किये जाते हैं, जिससे आगामी परम्परा जागरण प्राप्त करती है। कवि या साहित्यकारोने मानवताको अक्षुण्ण रखनेके लिए सरस, रागात्मक, मर्मस्पर्शी और कोमल-कमनीय भावनाओंकी अभि-व्यञ्जनाके साथ ऐतिहासिक व्यक्तियोके चरित्र, सास्कृतिक स्थलोकी गौरवगाथा, धर्म और सस्कृति-प्रतिष्ठापकोंके त्याग-बलिदान एव सत्साहित्य निर्माताओंकी जीवनगाथा भी अभिव्यक्त की है। महाभारतके रचयिताने इसी कारण इतिहासको मोहान्धकारनाशक दीपक कहा है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम् ।
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते ॥
इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना ।
लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत् संप्रकाशितम् ॥

कौटिल्य अर्थशास्त्रके रचयिता चाणक्यने भी इतिहासके विषयका प्रतिपादन करते हुए पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्रकी अन्वितिका निरूपण करना इतिहासका विषय बताया है। वस्तुतः अतीत-चित्रणमें हमारा चित्त रमता है, सौन्दर्यका साक्षात्कार होता है और पुरातन उदात्त भावनाओंका अवलम्बन पा हम सर्वतोमुखी विकासकी सीढीपर चढ़ते है। 'अहं' और 'मम' की भावनामे परिष्कार होता है, जिससे अन्तःविश्वासकी धारा अपनी प्रखरताके कारण ऊपरी

सतहपर लगे विकारोको ही नही, अपितु आन्तरिक जगत्मे प्रविष्ट हो प्रमाद और बुराइयोंको भी प्रक्षालित कर देती है। कला-सौन्दर्यके मर्मज्ञोंने जनोद्बोधनके लिए ऐतिहासिक काव्योकी आवश्यकता इसीलिए प्रतिपादित की है, जिससे जीवनकी पलायन और दैन्यवृत्ति छूट जाय तथा भाव-वीचियॉ एक लयसे तरगित हो पाठकको रसमग्न बना सके। पूर्वजोके बल, वैभव और विक्रमसे अनुप्राणित हो मानव जीवन-सग्राममे आन्तरिक और बाह्य द्वन्द्वोंके मध्य लडखडाता हुआ लोकमगलके दीप प्रज्वलित कर सके तथा जीवनके चरम लक्ष्य आनन्दानुभूतिको पा सके।

भक्ति-विभोर हो जैन कवियोंने अपने धर्माचार्योंका जीवनवृत्त भी काव्योंमे अकित किया है। इस आम्नायमे गुरुका स्थान देवके तुल्य माना गया है, अतः देवतुल्य उनकी भक्ति करना और अपनी श्रद्धा भावनाको उनके चरणोमे उड़ेलना जीवनोत्थानके लिए परम आवश्यक है। हिन्दी भाषाके जैन कवियोंने सहस्रो गीत महापुरुषोके कीर्त्ति-स्मरणमें रचे है, जिनमे सूक्ष्म और व्यापक धार्मिक भावनाएँ व्यक्त हुई है। सरस और मनोहर राग-रागनियोमे रचे जानेके कारण इन गीतोमे अपूर्व माधुर्य और लालित्य है। ये गीत शृगार-भावनाके स्थानमे हृदयकी सात्त्विक और उदात्त भावनाओंको उत्तेजित करते हैं। जैन गुरु और मुनियोंने अपने धर्म-प्रचारके लिए जो त्याग या चमत्कार दिखलाया है, उसका स्मरण इन गीतोंमे किया गया है। गीतोंकी ओर लोकरुचि विशेष रहनेके कारण तथा अपनी भावानुभूतिको व्यक्त करनेकी सुविधा अधिक होनेके कारण जैन कवियोंने गीतिकाव्यका प्रणयन अधिक किया है।

तीर्थयात्रा या अन्य धार्मिक उत्सवोंके अवसरपर ऐतिहासिक गीत गाये जाते है, इन गीतोंमे पुरातन गौरव-गाथाएँ निहित रहती हैं। जिससे साधारण व्यक्तिमे धार्मिक भावना उमड़ जाती है और वह अपने धर्म-प्रचारके महत्त्वका मूल्याङ्कन कर लेता है। महापुरुषोका कीर्त्ति-स्मरण करनेसे धृति और साहसकी भावना जाग्रत हो जाती है। दानवीरोंकी

यशोगाथाएँ दान देनेकी प्रेरणा तो देती ही है, पर साथ ही धर्मोत्कर्षके लिए आनन्दपूर्वक समस्त कष्टोको सहन करनेका सदेश भी हृदय पटल पर अकित कर देती है। वैयक्तिक विकासके बीज भी इनमें व्याप्त है।

ऐतिहासिक गीतोमें जैन कवियोने ऐतिहासिक तथ्योंके साथ अनुभूति और कल्पनाका प्रदर्शन भी किया है। महत् अनुभूतिके बिना न तो ऐतिहासिक तथ्य ही प्रभावोत्पादक हो सकते है और न कल्पना ही ठहर सकती है। जिन गीतोमे अनुभूतिका अभाव है, वे निष्प्राण है, उनमे मानव हृदयको रमानेवाले तत्त्व नहीं हैं। अनुभूतिहीन कल्पना और तथ्य-विवेचन जीवन-तत्त्वोको छोडकर गतिशील होनेके कारण हृदयको अपने साथ नही ले जा सकते है, अतः हृदय तत्त्वका अभाव होनेसे वे लोक-प्रिय नहीं बन सकते है। जिन गीतोंमे लोकानुरजनकी क्षमता होती है, वे ही जनताके हृदयमें रसानुभूति उत्पन्न कर सकते हैं तथा मानव इसी प्रकारके गीतोंको अपना कण्ठहार बनाता है। कल्पना और वैचित्र्यकी प्रधानता रहने पर भी लोकानुरजनके अभावमें गीत जीवनको अनुप्राणित कर सकेंगे, इसमे सन्देह है। अतएव जैन कवियोने ऐतिहासिक गीतोंमे जीवन-तत्त्वोका पूरा समावेश किया है, उन्होने लोकानुरंजन और अनुभूति को पूरा अवकाश दिया है। यही कारण है कि ऐतिहासिक होनेपर भी जैन-गीत लोकप्रिय हैं।

यद्यपि समयके प्रभावसे अब अधिकाश पुराने गीतोको जैन जनता भूल रही है, फिर भी इन गीतोका महत्त्व सदा अक्षुण्ण रहेगा। गीति-काव्यके विकास-क्रमको अवगत करनेके लिए तथा जीवनकी भावधारासे परिचित होनेके लिए जैन ऐतिहासिक गीतिकाव्योका विशेष महत्त्व है। भाषाके पारखियोंके लिए तो ऐतिहासिक जैन गीतोका अत्यधिक महत्त्व है ही, पर कलापारखियोके लिए भी जीवन-तत्त्वोंका अभाव नही है। वाह्य सौन्दर्यानुभूतिके साथ अन्तःसौन्दर्यका इतना सुस्पष्ट वर्णन कम ही स्थलोंमे मिलेगा। अन्तः साधनके रूपमे ज्ञान, दर्शन और चारित्रको महत्ता दी

गयी है, किन्तु हृदय-पद्मको विकसित होनेकी पूरी गुंजाइश है। यद्यपि इन ऐतिहासिक गीतिकाव्योंमे रागात्मक तत्त्वोंकी अनुभूति अधिक गहरी नही है; जिससे शायद कतिपय समालोचक हृदय-रमण-वृत्तिका अभाव अनुभव करेंगे; परन्तु दार्शनिक पृष्ठभूमिपर भक्ति-भावनाका पुट इतना अधिक है जिससे चराचर जगत्‌के साथ मानवका सौहार्द स्थापित हो जाता है। अहिंसाकी सूक्ष्म और सरस व्याख्याएँ रहनेके कारण मानव सहानुभूति-सूत्रमें आबद्ध हो, विश्वबन्धुत्वकी ओर अग्रसर होता है और जीवनमे प्रेम, करुणा एव दयाकी यथार्थताको अवगत करता है। मानवका मानवके साथ ही नहीं, अन्य समस्त प्राणि-जगत्‌के साथ जो सौहार्द-सम्बन्ध है, उसकी अभिव्यंजना इन काव्योमे मुख्य रूपसे हुई है। जगत् और जीवनके नाना रूपोंकी मार्मिक अनुभूति कई गीतोंमे विद्यमान है।

जैन ऐतिहासिक गीतोका प्रधान वर्ण्य विपय जैन साधुओ और गुरुओकी कीर्त्तिगाथा, राजा-महाराजाओं और सम्राटोंको प्रभावित कर धार्मिक अधिकार प्राप्त करनेकी चर्चा, जैनधर्मके व्यापक प्रभाव एव धार्मिक भावनाओको उभाडनेके तत्त्व है। अनेक सूरि और आचार्योंने मुसलिम बादशाहोको प्रभावित कर अपने धर्मकी धाक जमाई थी तथा सनदे प्राप्त कर जिनालय निर्माण करनेकी स्वीकृति प्राप्त की थी। जिनप्रभ सूरिकी प्रशसा करते हुए एक गीतमें बताया गया है कि अश्वपति कुतुबुद्दीनके चित्तको प्रसन्न कर इन्होंने अनेक प्रकारसे सम्मान प्राप्त किया था। सवत् १३८५ पौप सुदी ८ शनिवारको इन्होने दिल्लीमे अश्वपति मुहम्मदशाहसे भेंट की थी। सुल्तानने इन्हे उच्चासन दिया। इनकी भाषण-शक्ति विलक्षण थी, अतः इन्होने अपने व्याख्यान-द्वारा सुल्तान का मन मोह लिया। सुल्तानने भी ग्राम, हाथी, घोडे, धन तथा यथेच्छ वस्तुएँ देकर सूरीश्वरका सम्मान करना चाहा, पर इन्होंने स्वीकार नहीं किया। इनके इस त्यागको देखकर सुल्तानको इनके प्रति भारी भक्ति हो गई, जिससे उन्होंने इनका जुलूस निकाला, रहने के लिए 'वसति'

निर्माण करायी। गीतमें अनेक राष्ट्रिय और अहिंसक भावनाओंके साथ उक्त ऐतिहासिक तथ्य व्यञ्जित किया है—[1]

उदय ले खरतरगच्छ गयणि, अभिनउ सहस करो।
सिरी जिणप्रभुसूरि गणहरो, जंगम कल्पतरो॥

× × ×

हरखितु देइ राय गय तुरय, धण कणय देस गामा।
भणइ अनेवि जे चाह हो, ते तुह दिउ इमा॥
लेइ णहु किंपि जिणप्रभसूरि, मुणिवरो अतिनिरीहो।
श्रीमुख सलहिउ पातसाहि, विविहपरि मुणि सीहो॥

× × ×

'असपति' 'कुतुबदीनु' मनरंजेउ, दीठेलि जिणप्रभ सूरी ए।
एकन्तिहि मन सासउ पूछई, रामसणोरह पूरी ए॥
गाम भूरिय पटोला गजवल, तूठउ देइ सुरिताणू ए।
जिणप्रभसूरि गुरुकम्पनई छइ, तिहु अणि अमलिय माणू ए॥
ढोल दमामा अरु नीसाणा, गहिरा बाजइ तूरा ए।
इनपरि जिनप्रभसूरि गुरु आवइ, संघ मणोरह पूरा ए॥

एक दूसरे[2] गीतमे बताया गया है कि जिनदत्त सूरिने बादशाह सिकन्दरशाहको, जो बहलोल लोदीके उत्तराधिकारी थे, अपना चमत्कार दिखलाकर ५०० वन्दियोको मुक्त कराया था। इस गीतमें अनेक उपमा और उत्प्रेक्षाओंका आश्रय लेकर अन्य ऐतिहासिक तथ्यके साथ जीवन की सरस अनुभूतियोकी भी अभिव्यंजना सुन्दर हुई है।

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य-संग्रह पृ० १३-१४।

२. ऐतिहासिक जैन काव्य-संग्रह पृ० ५३-५४।

सरसति मति दिउ अम्ह अति घणी, सरस सुकोमल वाणि।
श्रीमज्जिनहंस सूरि गुरु गाइसिउँ, मन लीणउ गुण जाणि॥

× × ×

नंति वधावइ गीत गावइ, पुण्यकलस धरइ सिरे।
सिंगारसारा सव नारी करइ, उच्छव वर घरे॥

× × ×

श्री सिकंदर चित्त मानियउ, किरामत काइं कही।
पाँच सइ बन्दी वाखरसी, छोड्या इण गुरु सही॥

कुछ गीतोंमें[1] बताया गया है कि मुगल-सम्राट् अकबरके मनमें जिन-चन्द्र सूरिके दर्शनकी बड़ी उत्कण्ठा थी, अतः उन्होंने सूरीश्वरको गुजरातसे बड़े आग्रह और सम्मानसे बुलाया। सूरीश्वरने आकर उन्हें उपदेश दिया और सम्राट्ने उनकी बड़ी आवभगत की। जब बादशाह सलेमशाह 'दरलविया' दीवान पर कुपित हो गये थे तो इन्हीं सूरीश्वरने गुजरातसे आकर बादशाहके क्रोधको शान्त किया और धर्मकी महिमा बढ़ाई। यह सूरीश्वर मुल्तान भी गये थे, और वहाँके खानमलिक-द्वारा इनका सम्मान किये जानेका भी उल्लेख है।

इन गीतोंमें युग-चेतनाके स्पष्ट दर्शन होते हैं। उस युगके मानवकी विराट् व्यथा, हिंसाके ज्वार और उतार-चढ़ाव, साम्प्रदायिक संकीर्णता, ग्रामीणोंके हृदयकी झाँकी एवं देशकी यथार्थ स्थितिका विश्लेषण इन गीतोंका प्राण है। साम्प्रदायिक गीतोंमें भी रचयिताओंने मानव-समाजके हितोंकी पूरी विवेचना की है। ऐसा शायद ही कोई गीत होगा, जिसमें चेतना और स्फूर्ति न विद्यमान हो। अपभ्रंशसे प्रभावित पुरानी राजस्थानी भाषा होनेके कारण आजके पाठक इन गीतोंमें शायद रम न सकें, परन्तु भारतीय संस्कृति और सभ्यताका परिचय पाने तथा युगविधायक

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य-संग्रह पृ० ५८, ८१, ८२, ९६।

सामाजिक घटनाओसे अवगत होनेके लिए इन गीतोका अत्यधिक महत्त्व है। इसी कारण इनको केवल जैनोंकी सम्पत्ति न मानकर हिन्दी-साहित्य-की अमूल्य निधि मानना चाहिये। इन गीतोमे मुसलिम शासनके अन्याय और शोषणका विवरण भी उपस्थित किया गया है, परन्तु यह विवरण ऐतिहासिक तथ्य नही, प्रत्युत काव्यका तत्त्व है।

कतिपय गीतोमें ग्राम-वधुएँ पथिकोसे अनुरोध कर पूछती है कि आप जिस रास्तेसे आ रहे हैं, क्या आपको उस मार्गमे आचार्यश्री मिले? इन सूरिजीकी वाणीमे अमृत है, अनेक चमत्कारोके ज्ञाता और ये अपरिमित शक्तिके धारी है। इनके तेजका वर्णन कोई नही कर सकता है। ये परम अहिंसा धर्मके पुजारी है, शुद्ध आचार-विचारका पालन करते हैं, समस्त प्राणियोके साथ इनकी मित्रता है। जो एक बार इनका दर्शन कर लेता है, इनके मिष्ट वचनोको सुन लेता है, उसकी इनके प्रति अपार श्रद्धा हो जाती है। कचन और कामिनी, जिन्होने सारे जगतको अपने वश कर रखा है, इनके लिए तृणवत् है। हे पथिक! यदि तुम इनके आगमनका यथार्थ समाचार कह सको, तो तुम्हारी हमारे ऊपर बड़ी कृपा हो। हमारा मन-मयूर उनके आगमनके समाचारको सुन कर ही हर्षित हो जायगा। हमारे हृदयकी वीणाके तारोपर सुरीले स्वरोका आरोहण-अवरोहण स्वतः होने लगेगा। इस प्रकार अपनी भावनाको व्यक्त करती हुई ग्राम-वधुएँ उन सूरीश्वरका ऐतिहासिक परिचय भी देती हैं, जिससे उनके आगमनकी सच्ची जानकारी प्राप्त कर सकें। इस ऐतिहासिक परिचयमें सन्, सवत् और तिथिका उल्लेख तो है ही, साथ ही उन सूरीश्वरके गण, गच्छ, गोत्र, गुरु और प्रभावका भी ऐतिहासिक तथ्य निरूपित है।

गुरु दर्शन हो जानेपर अपूर्व आनन्दानुभूति होती है। जैन कवियोंने ऐतिहासिक गीतोमें सरसताको पर्याप्त स्थान देनेके लिए ऐसे अनेक गीतों-की रचना की है, जिनमे अपूर्व आत्म-परितोष व्यक्त किया गया है। निम्न

गीतोंमें इतिहासकी शुष्क धाराको कितना शीतल और सरस बनानेका प्रयास किया है—

आज मेरे मनकी आश फली ।
श्री जिनसिंह सूरी मुख देखत, आरति दूर टली ॥१॥
श्री जिनचन्द्र सूरि सइं हत्थइ, चतुर्विध संघ मिली ।
शाही हुकम आचारज पदवी, दीधी अधिक भली ॥२॥
कोडिवरिस मंत्री श्री करमचन्द्र, उत्सव करत रली ॥
'समयसुन्दर' गुरुके पदपंकज, लीनो जेम अली ॥३॥

निम्न गीतमें जिनसागर सूरिके जन्मका निरूपण करते हुए बताया गया है कि बीकानेर नगरमें बोथरा गोत्रीय शाह वच्छा निवास करते थे, इनकी भार्याका नाम मृगादे था । जब यह सूरीश्वर गर्भमें आये तो माताको 'रक्तचोल रत्नावलीका स्वप्न', आया, उसीके अनुसार इनका नाम 'चोला' रखा गया । कालान्तरमें यह श्रीजिनसिंह सूरिजीसे दीक्षा लेकर साधु बन गये और इनका नाम जिनसागर सूरि पड़ा । उसके चमत्कार और महत्त्वको प्रकट करने वाले अनेक गीत हैं ।

सुख भरि सूती सुन्दरी, देखि सुपन मध राति ।
रगत चोल रत्नावली, पिउ नैं कहइ ए बात ॥
सुणी वचन निज नारि ना, मेंघ घटा जिम मोर ।
हरख भणइ सुत ताहरइ, थासइ चतुर चकोर ॥
आस फली माहरी मन मोरी, फूलइ कुमर निधान रे ।
मनवांछित दोहला सवि पूरइ, पामइ अधिकउ मान रे ॥
संवत 'सोलबावन्ना' वरषइ 'काती सुदी' रविवार रे ।
चउदसिने दिनि असिनि नक्षत्रइ जनम थयो सुखकार रे ॥

---

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० २४३–'सुण रे पन्थियाँ' गीत, पृ० २४५, पृ० २४६ 'जीहो पन्थी' गीत ।

नित नित कुमर वाधइ बहुलक्खणि सुरतरु नउ जिमि कंद रे।
नमणी अनोपम निलवट सोहइ, वदन पूनम नउ चंद रे॥
सहुअ सजन भगतावी भगतइ, मेलि बहु परिवार रे।
'चोलउ' नाम दियउ मन रंगइ, सुपन तणइ अनुसारि रे॥
सहिअ समाण मिलि मात पासइ सरुह 'वच्छराज' कुल दीव रे।
'सामल' नाम धरि हुलरावइ, मुखि बोलइ चिरजीव रे॥

गुरुओंके चातुर्मासोका वर्णन, सघका वर्णन तथा उनके धर्मोपदेश और धर्म प्रभावनाका वर्णन इन ऐतिहासिक गीतोमें सुन्दर हुआ है। अधिकाश गीतोका एक विशाल सग्रह 'ऐतिहासिक जैन काव्यसग्रह'के नामसे श्री अगरचद नाहटा और श्री भँवरलाल नाहटाके सम्पादकत्वमे प्रकाशित हो चुका है। इस सग्रहके सभी गीत राग-रागनियोसे युक्त हैं। कर्मगीतोंमें ६ राग और ३६ रागनियोका समावेश किया गया है।

चतुर्थाध्याय

आध्यात्मिक रूपक काव्य

जैन कवियोंने अपनी रचनाओंमें आत्मभाव सच्चाईके साथ अभिव्यक्त किया है। इनके काव्यके अन्तर्वृत्ति-मूलक विश्लेषणसे जीवनकी विभिन्न वृत्तियोंका परिज्ञान सहजमें किया जा सकता है। इनके काव्यमें शुद्धात्म और संसारी अशुद्धात्माके प्रसंगको उपस्थितकर आध्यात्मिक बोधके साथ लौकिकताका अक्षुण्ण सम्बन्ध बनाये रखनेका प्रयास निहित है। जैन कवियोंने आध्यात्मिक अनुभूतिकी सचाईको अन्योक्ति और समासोक्तिमें बड़ी मार्मिकताके साथ व्यक्त किया है। इन कवियोंकी आध्यात्मिक भावनाने हृदयको समतलपर लाकर भावोंका सार समन्वय उपस्थित किया है। जीवनके सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आकर्षण-विकर्षणको दार्शनिक दृष्टिकोणसे प्रस्तुत करनेमें मानव भावनाओंका गहन विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत-द्वारा अप्रस्तुतका विधान साधारण छोटी-छोटी आख्यायिकाओंमें किया गया है। कवियोंने इतिवृत्त भी कहीं-कहीं आध्यात्मिक ही अपनाये हैं; परन्तु इनमें विचारों, भावनाओं और प्रवृत्तियोंके संश्लिष्ट चित्रोंका सद्भाव पूर्ण रूपेण विद्यमान है।

जैन आध्यात्मिक रूपक काव्योंमें विराट् कल्पना, अगाध दार्शनिकता तथा सूक्ष्म भावनाओंका विश्लेषण है। इन काव्योंके लघु आख्यानोंमें क्षमा, क्रोध, उत्साह एवं सहानुभूति आदि नैसर्गिक पात्रोंकी योजना कर जीवनके प्रकाश और अन्धकार पक्षकी उद्भावना मौलिक रूपमें की है। इन कलाकारोंकी कल्पनाने कभी स्वर्णकमलोंसे कलित-सुधा सरोवरके कूलोंपर मलयानिल स्पन्दित पादपोंके बीच विचरण किया है, कभी अलकापुरीके रत्नजटित प्रासादोंकी भव्यताका संकेत करते हुए लोभ-

मान-माया-लोभादि मनोविकारोंके परिमार्जनका प्रयास किया है एव कभी कनकमेखलामंडित विविधवर्णमय घनपटलोंकी क्षणभंगुरताका दिग्दर्शन कराते हुए संसार-आसक्त मानवको वैराग्यकी ओर ले जानेका सुन्दर प्रयत्न किया है।

आध्यात्मिक रूपक काव्योंका उद्देश्य ज्ञान और क्रिया-द्वारा दुःखकी निवृत्ति दिखलाकर लोककल्याणकी प्रतिष्ठा करना है। लोकमंगलाशासे जैन कवियोंका हृदय परिपूर्ण और प्रफुल्ल था। अतः सच्चिदानन्द स्वरूप आत्माका आभास करा देना ही इन्हें अभीष्ट है और इसीमें इन्होंने सच्चा लोककल्याण भी समझा है। मनोविकारोंके आधीन रहनेसे मानव-जीवनमें 'शिव'की उपलब्धिमें बाधाएँ आती हैं, जीवनव्यापी आदर्शों और धर्मोंकी अनुभूति भी नहीं हो पाती है तथा सात्त्विक, राजस और तामस प्रवृत्तियों-मेंसे राजस और तामस प्रवृत्तियोंका परिष्कार भी नहीं हो पाता है; जिससे जीवनकी सात्त्विक, उदात्त भावनाएँ आच्छादित ही पड़ी रहती हैं। भौतिकवादकी निस्सारता और आध्यात्मिकवादकी श्रेयताका मार्मिक विवेचन—"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" अहिंसा वाक्यको मूलमें रखकर किया है। आत्माकी प्रेयता तथा इसका शोधन भी अहिंसाकी भावनापर ही अवलम्बित है। इसी कारण रूपक काव्य-निर्माताओंने आत्मतत्त्वकी उपलब्धिके लिए निवृत्ति मार्गको विशेषता या महत्त्व प्रदान किया है। यद्यपि प्रवृत्ति-मार्ग आकर्षक है, पर पूर्ण दुःखकी निवृत्ति नहीं करा सकता है तथा इस मार्गमें प्राप्त होनेवाली भोगसामग्रियाँ क्षणभंगुर होनेसे अन्तमें वेदनाप्रद होती हैं। अतः जैन कलाकारोंने जैन दर्शनके सूक्ष्म तत्त्वोंके विश्लेषणके साथ शुद्धात्माकी उपलब्धिका विधान बतलाया है। इस विधानमें आत्माकी विभिन्न अवस्थाओं और उसके विभिन्न परिणामोंका बड़े ही स्पष्ट और मार्मिक ढंगसे विवेचन हुआ है। आध्यात्मिकताके विकृत रूपके प्रति विद्रोहकर आत्माकी विशाल अतुलित शक्तिका उद्‌घाटन भव्य और आकर्षक रूपमें विद्यमान है। इस विवेचनमें

उदात्त भावनाके चित्र बड़े ही संयत, गम्भीर और आदर्श उतरे हैं। दार्शनिक भाव-भूमिपर आत्मा और जड़-बन्धनके विश्लेषणको जिस प्रकार सजाया-सँवारा है, वह महान् है। मानव हृदयकी दुर्बलताओं और शक्तियोंको इतना टटोला और परखा है, जिससे रूपकोंमें तात्त्विक अभिव्यंजनाने नीरसता नहीं आने दी है। आत्मिक विधान स्वस्थ और सन्तुलित रूपमें मानस संशोधनके लिए प्रेरणा तो देता ही है, साथ ही जीवनको कर्त्तव्य-मार्ग—रचनात्मक मार्गकी ओर गतिशील करता है।

आध्यात्मिक रूपक जैन काव्य-निर्माताओंमें महाकवि बनारसीदास और भैया भगवतीदासका नाम विशेष गौरवके साथ लिया जाता है। कवि बनारसीदासने नाटक समयसार, बरवै, सोलह तिथि, तेरह काठिया, ज्ञानपच्चीसी, अध्यात्मबत्तीसी, मोक्षपैड़ी, शिवपच्चीसी, भवसिन्धु चतुर्दशी, ज्ञानबावनी आदि रचनाएँ लिखी हैं। चेतन कर्मचरित्र, अक्षरबत्तीसी, मिथ्यात्वविध्वंसन चतुर्दशी, मधुविन्दुक चौपई, सिद्ध चतुर्दशी, अनादिबत्तीसिका, उपशमपच्चीसिका, परमात्मछत्तीसी, नाटकपच्चीसी, पञ्चेन्द्रियसंवाद, मनबत्तीसी, स्वप्नबत्तीसी एवं सूवाबत्तीसी आदि रचनाएँ भैया भगवतीदासने लिखी हैं। इनमें कुछका परिचय निम्न है—

नाटक समयसार

यह एक उत्कृष्ट आध्यात्मिक रचना है। आत्मान्वेषकोंको सरस कवितामें आत्म-तत्त्वकी उपलब्धि करनेकी सुन्दर अभिव्यञ्जना इसमें निहित है। कुशल कलाकारने चित्रकारके समान आत्मानुभूतिमें नाना कल्पनाओंका रंग लगाकर अद्भुत चित्र खींचनेका प्रयास किया है। यद्यपि कविने अपने इस ग्रन्थकी रचना आचार्य कुन्दकुन्दके समयसारके आधारपर की है, परन्तु रागतत्त्व, बुद्धितत्त्व और कल्पनातत्त्वका मिश्रण कर इसे मौलिकता प्रदान करनेमें तनिक भी कमी नहीं की है। प्रत्येक पद्यमें प्रवाह और माधुर्य वर्तमान है। सरस और कोमल शब्दोंका चयन करनेमें कविने अद्भुत सफलता पायी है। अनूठी उक्तियाँ और नवीन उद्भावनाएँ तो पाठकका मन बरबस ही

अपनी ओर खींच लेती है। जीवनके कोमल पक्षकी सम्यक् अभिव्यञ्जना होनेसे कविता हृदय और मस्तिष्क दोनोंको समान रूपसे छूती है। इसमें जीवन सम्बन्धी उन विशेष विचारों और भावनाओंका सकलन किया गया है, जो यथार्थ जीवनको प्रगति देते है।

अन्तर्जगत् और बाह्य-जगत्का यथार्थ दिग्दर्शन कराते हुए आत्माकी शुद्धताका निरूपण अद्भुत ढगसे किया है। इसमें ३१० दोहा-सोरठा, २४३ सवैया-इकतीसा, ८६ चौपाई, ६० सवैया-तेईसा, २० छप्पय, १८ कवित्त, ७ अडिल्ल और ४ कुण्डलियाँ है। सब ७२६ पद्य हैं। इसमें कविने आत्मतत्त्वका निरूपण नाटकके पात्रोंका रूपक देकर किया है। इसमें सात तत्त्व अभिनय करनेवाले हैं। यही कारण है कि इसका नाम नाटक समयसार रखा गया है।

कविने मगलाचरणके उपरान्त सम्यग्दृष्टिकी प्रशसा, अज्ञानीकी विभिन्न अवस्थाएँ, ज्ञानीकी अवस्थाएँ, ज्ञानीका हृदय, ससार और शरीरका स्वरूप-दिग्दर्शन, आत्मजागृति, आत्माकी अनेकता, मनकी विचित्र दौड़ एवं सप्त व्यसनोंका सच्चा स्वरूप प्रतिपादित करनेके साथ, जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष इन सातों तत्त्वोंका काव्य रूपमें निरूपण किया है। आत्माकी अनुपम आभाका कविने कितना सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण किया है। कवि कहता है—

जो अपनी दुति आप विराजत, है परधान पदारथ नामी।
चेतन अंक सदा निकलंक, महासुख सागरको विसरामी॥
जीव अजीव जिते जगमें, तिनको गुनज्ञायक अन्तरजामी।
सो शिवरूप बसै शिवथानक, ताहि विलोकनमें शिवगामी॥

अज्ञानी व्यक्ति भ्रमके कारण अपने स्वरूपको विस्मृत कर ससारमें जन्म-मरणके कष्ट उठा रहा है। कवि कहता है कि कायाकी चित्रशालामें कर्मका पलग बिछाया गया है, उसपर मायाकी सेज सजाकर मिथ्या

कल्पनाका चादर डाल रखा है । इस शय्यापर अचेतनकी नींदमें चेतन सोता है । मोहकी मरोड़ नेत्रोंका बन्द करना—झपकी लेना है । कर्मके उदयका बल ही श्वासका घोर शब्द है और विषय सुखकी दौर ही स्वप्न है । इस प्रकार तीनो कालोमे अज्ञानकी निद्रामे मग्न यह आत्मा भ्रमजालमें ही दौड़ती है, अपने स्वरूपको कभी नही पाती । अज्ञानी जीवकी यह निद्रा ही ससार-परिभ्रमणका कारण है। मिथ्यात्व-तत्त्वोंकी अश्रद्धा होनेसे ही इस जीवको इस प्रकारकी निद्रा अभिभूत करती है। आत्मा अपने शुद्ध, निर्मल और शक्तिशाली स्वरूपको विस्मृत कर ही इस व्यापक असत्यको सत्य रूपमे समझती है। अतः कवि यथार्थताका विश्लेषण करता हुआ कहता है—

> काया चित्रसारीमें करम परजंक भारी,
> मायाकी सँवारी सेज चादर कलपना ।
> शैन करे चेतन अचेतनता नींद लिए,
> मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना ॥
> उदै बल जोर यहै श्वासको शबद घोर,
> विषै सुखकारी जाकी दौर यहै सपना ।
> ऐसी मूढ़ दशामें मगन रहे तिहुँकाल,
> धावे भ्रम-जालमें न पावे रूप अपना ॥

कविने रूपक-द्वारा अज्ञानी जीवकी उक्त स्थितिका मार्मिक चित्रण किया है। वस्तुतः आत्मा सुख-शान्तिका अक्षय भण्डार है, इसमे ज्ञान, सुख, वीर्य आदि गुण पूर्ण रूपेण विद्यमान हैं, अतएव प्रत्येक व्यक्तिको इसी शुद्धात्माकी उपलब्धि करनेके लिए प्रयत्नशील होना चाहिये ।

ज्ञानका प्रकाश होते ही हृदय परिवर्तित हो जाता है। परिष्कृत हृदयमे नानाप्रकारकी विचार-तरंग उठने लगती हैं। एकाएक सारी स्थिति बदल जाती है। जिन पर-पदार्थोंमे निजबुद्धि उत्पन्न हो गयी थी,

वे पदार्थ आत्मासे भिन्न प्रतीत होने लगते है। शरीर एव बाह्य भौतिक पदार्थोंकी आत्मासे पृथक् अनुभूति होने लगती है। कवि इसी परिवर्तनकी अवस्थाका चित्रण करता हुआ कहता है—आत्म-ज्ञानके अभावमे मानवका हृदय माया-मोह और बेचैनीसे व्यथित रहता है, जिससे प्राणिहिंसा, असत्य आदि दुष्प्रवृत्तियाँ शाश्वत सत्यको प्राप्त करनेमे अत्यन्त बाधक होती है। कुत्सित रूपोमे राग या द्वेष दोनों ही प्रकारकी वृत्तियाँ दुःख परम्पराको उत्पन्न करती हैं। राग-द्वेषके नाना सकल्प मोहके विकारको उद्बुद्ध करते हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ ये अन्तरात्माके भयंकर दोष है। इनका पूर्णरूपसे त्याग करनेपर ही ज्ञानभावकी उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे घना अन्धकार दूर हो जाता है, जलकी वर्षा होनेपर दावाग्नि शान्त हो जाती है एव वसन्तागमन जानकर कोयल कूकने लगती है उसी प्रकार ज्ञान भावके उदित होते ही मोह, पाप, भ्रम, अज्ञान, दुष्प्रवृत्तियाँ क्षणभरमे पलायन कर जाती हैं।

हिरदै हमारे महामोहकी विकलताई,
ताते हम करुना न कीनी जीवघातकी।
आप पाप कीने औरनिको उपदेश दीने,
हुती अनुमोदना हमारे याही बातकी॥
मन, वच, काया मैं मगन ह्वै कमायो कर्म,
धाये भ्रमजालमैं कहाए हम पातकी।
ज्ञानके उदयतैं हमारी दशा ऐसी भई,
जैसे भानु भासत अवस्था होत प्रातकी॥

आत्मामे अशुद्धि परद्रव्यके सयोगसे आती है। यद्यपि मूल द्रव्य अन्य प्रकार रूप परिणमन नहीं करता है, फिर भी पर द्रव्यके निमित्तसे अवस्था मलिन हो जाती है। जब सम्यक्त्वके साथ ज्ञानमें भी सच्चाई उत्पन्न होती तो ज्ञानरूप आत्मा परद्रव्योसे अपनेको भिन्न समझकर शुद्धात्मावस्थाको

प्राप्त होती है। कवि कहता है कि कमल रातदिन पंकमें रहता है तथा पंकज कहा जाता है, फिर भी कीचड़से वह सदा अलग रहता है। मन्त्र-वादी सर्पको अपना गात पकड़ाता है, परन्तु मन्त्रशक्तिसे विषके रहते हुए भी सर्पका डंक निर्विष रहता है। पानीमें पड़ा रहनेसे जैसे स्वर्णमे काई नहीं लगती है; उसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति संसारकी समस्त क्रियाओंको करते हुए भी अपनेको भिन्न एवं निर्मल समझता है।

जैसे निशिवासर कमल रहै पंक ही में,
पंकज कहावै पै न वाके ढिग पंक है।
जैसे मन्त्रवादी विषधरसों गहावै गात,
मंत्रकी शकति वाके बिना विष डंक है॥
जैसे जीभ गहे चिकनाई रहे रूखे अंग,
पानीमें कनक जैसे काईसे अटंक है।
तैसे ज्ञानवान नानाभाँति करतूत ठानै,
किरिया तैं भिन्न मानै यातै निष्कलंक है॥

ज्ञानके उत्पन्न होनेपर ही आत्मराज्यकी उत्पत्ति होती है, विकार और वासनाएँ ज्ञानके उद्बुद्ध होते ही क्षीण हो जाती हैं। यह ज्ञान बाह्य पदार्थोंमे नही रहता है, किन्तु आत्माका गुण है। आत्मबोध पाते ही ज्ञानकी अवस्था जागृत हो जाती है। आत्मज्ञानी भेद-ज्ञानकी ओरसे आत्मा और कर्म इन दोनोकी धाराओंको अलग-अलग करता है। आत्माका अनुभव कर श्रेष्ठ आत्मधर्मको ग्रहण करता है और कर्मोंके भ्रमको नष्ट कर देता है। इस प्रकार रत्नत्रय मार्गकी ओर अग्रसर होता है, जिससे पूर्ण ज्ञानका प्रकाश सहजमे ही उत्पन्न हो जाता है। ज्ञानी विश्वनाथ बन जाता है। पूर्ण समाधिमे मग्न होकर शुद्धात्माको प्राप्त करता है, जिससे शीघ्र ही ससारके आवागमनसे रहित होकर कृतकृत्य हो विश्वनाथके पदपर आसीन हो जाता है। कवि कहता है—

भेदज्ञान आरा सौं दुफारा करे ज्ञानी जीव,
आतम करम धारा भिन्न भिन्न चरचै।
अनुभौ अभ्यास लहे परम धरम गहे,
करम भरम का खजाना खोलि खरचै॥
यौं ही मोक्ष मग धावै केवल निकट आवे,
पूरण समाधि जहाँ परमको परचै।
भयो निरदोर याहि करनो न कछु और,
ऐसे विश्वनाथ ताहि बनारसी अरचै॥

जड कर्मोंके ससर्गसे आत्माकी विभिन्न प्रकारकी लीलाएँ हो रही हैं। निश्चय रूपसे वास्तविक दृष्टिकोणसे आत्मा एक होनेपर भी व्यवहारमे अनेक रूप है तथा अनेक होनेपर भी एक रूप है। ससारमे कर्मोंके बन्धन ने आत्माको इतना विकृत और विचित्र कर दिया है, जिससे इसकी यथार्थ अवस्थाका चित्रण नही किया जा सकता है। यह आत्मा कर्त्ता भी है और अकर्त्ता भी। कर्मफलका भोक्ता भी है और अभोक्ता भी। व्यवहारसे पैदा होता है और मरता है, किन्तु निश्चयसे न पैदा होता है और न मरता है। व्यवहार रूपमे बोलता है, विचारता है, नाना प्रकारके सिंह-सूकर-स्वान-शृगाल-काक-कीट आदि रूपोको धारण करता है। वस्तुतः यह आत्मा अचेतन कर्मोंके ससर्गसे नट बन गयी है, इसी कारण अनेक वेषोको धारणकर नानाप्रकारकी क्रियाओको किया करती है। समय—आत्माके विभिन्न नटरूपो तथा उसके वास्तविक स्वरूपका विश्लेषण होनेसे ही इस ग्रन्थका नाम समय-सार नाटक रखा है। कवि आत्माकी इसी नट-बाजीका निरूपण करता हुआ कहता है—

एकमे अनेक है अनेक ही में एक है सो,
एक न अनेक कछु कह्यो न परत है।
करता अकरता है भोगता अभोगता है,
उपजे न उपजत मरे न मरत है॥

बोलत विचारत न बोले न विचारे कछु,
भेख को न भाजन पै भेख को धरत है।
ऐसो प्रभु चेतन अचेतनकी संगतिसों,
उलट-पलट नटबाजी सी करत है॥

जिस प्रकार नदीकी एक ही धारामें नाना स्रोतोंका जल आकर मिलता है तथा जिस स्थानपर पाषाणशिलाएँ रहती हैं, वहाँ धारा मुड़कर जाती है; जहाँ कंकड़ रहते हैं, वहाँ झाग देती हुई आगे बढ़ती है; जहाँ हवाका जोर पड़ता है, वहाँ चंचल तरंगे उठती हैं और जहाँकी भूमि नीची होती है, वहाँ भँवरें पड़ती हैं; इसी प्रकार आत्मामें पुद्गल—अचेतनके अनन्त रसोंके कारण अनेक प्रकारके विभव उत्पन्न होते हैं। आत्माकी ये लीलाएँ नाटकके पात्रोंकी लीलाओंसे कम नहीं होतीं। संसाररूपी रंगस्थलीपर आत्मा नट बनकर नाना तरहकी लीलाएँ किया करती है। नायक आत्मा है और प्रतिनायक पुद्गल-जड़ पदार्थ। कविने आत्माकी इस अनेकरूपताका कितना स्वाभाविक चित्रण किया है—

जैसे महीमण्डलमें नदीको प्रवाह एक,
ताहीमें अनेक भाँति नीरकी ढरनि है।
पाथरके जोर तहाँ धारकी मरोर होत,
कांकरकी खानि तहाँ झागकी झरनि है॥
पौनकी झकोर तहाँ चंचल तरंग उठै,
भूमिकी निचानि तहाँ भौंरकी परनि है।
तैसो एक आत्मा अनंत रस पुद्गल,
दोहूके संयोगमें विभावकी भरनि है॥

नाटक समयसारकी भाषा सरस, मधुर और प्रसादगुणपूर्ण है। शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास और पदावलियोंके संगठनमें सतर्कता और सार्थकताका ध्यान सर्वत्र रखा गया है। इसमें मलयानिलका स्पर्श

विद्यमान है, जो हृदयकलिका विकसित करनेमें पूर्ण समर्थ है। अतएव भाव और भाषा दोनो ही दृष्टियोसे यह रचना उत्कृष्ट कही जा सकती है।

तेरह काठिया

यह एक सरस रचना है। इसमे कवि बनारसीदासने भौतिक जीवनको पशु-जीवन बतलाते हुए मानव बननेका मार्ग बतलाया है। मानव जीवनका उच्च आदर्श प्रतिपादित होनेके कारण यह वर्ग विशेषकी वस्तु न होकर सर्व साधारणकी सम्पत्ति है। इसमे साहित्यके उपयोगवादी दृष्टिकोणके अनुसार जीवनमे 'अशिव'का परिष्कार कर 'शिव'को प्राप्त करनेका संकेत किया गया है। क्षणभगुर शरीरके मोह और ममताको छोड़ आत्माकी अमरताको प्राप्त करनेका प्रयत्न ही श्लाघ्य हो सकता है। समस्त पार्थिव तृप्तियोंके साधन रहते हुए भी मन एक अभावका अनुभव करता है; सारी सुख-सुविधाओंके रहने पर भी मनकी तृप्ति नहीं होती है, यह अभाव राजनैतिक या सामाजिक नहीं; प्रत्युत आध्यात्मिक होता है। इस ग्रन्थमे कविने जीवनमे इसी अभावकी पूर्णताकी आवश्यकता बतलायी है। आध्यात्मिक संवेदनशील सरस स्रोतसे हमारी समस्त आन्तरिक पीडाएँ दूर हो जाती है। यह सरस रचना पाठकको साधारण मानव-जीवनके धरातलसे ऊपर उठाकर जीवनका वास्तविक आनन्द देती है।

कवि जीवन-परिष्कारके लिए विधानका प्रतिपादन करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार लुटेरे, बदमाश, चोर आदि देशमे उपद्रव मचाते है, उसी प्रकार तेरह काठिया आत्मामे उपद्रव—विकृति उत्पन्न करते हैं। जुआ, आलस, शोक, भय, कुकथा, कौतुक, कोप, कृपणबुद्धि, अज्ञानता, भ्रम, निद्रा, मद और मोह ये तेरह आत्मामें विकार उत्पन्न करते हैं। विभाव परिणतिके कारण शुद्ध, बुद्ध और निरंजन आत्म-तत्त्वमें पर-पदार्थोंके संयोगसे विकृति उत्पन्न हो जाती है। जब तक आत्मामे विभाव-परिणति पर-पदार्थ रूप प्रवृत्ति, करनेकी क्षमता रहती है तब तक उक्त

तेरह धूर्त आत्माके निजी धन अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यको चुराते रहते हैं।

पहला धूर्त जुआ है। मानव जीवनमे सबसे बड़ी अशान्ति इसीके कारण उत्पन्न होती है। यह प्रभुता, शुभकृत्य, सुयश, धन और धर्मका ह्रास करता है। जुआरी व्यक्ति सबसे प्रथम अपने वैभव और साखसे हाथ धोता है। मान-मर्यादा और ऐश्वर्य सभी जुआके कारण नष्ट हो जाते हैं। आत्मोत्थानके कार्योंमें प्रवृत्ति नहीं होती है, निन्द्य और खोटे कामोंमें शक्ति और धनका व्यय होता है। जगत्में जुआरीका अपयश भी फैल जाता है। हृदयकी सत् भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं और आसुरी-भावनाओंका प्रतिष्ठान होने लगता है। स्वार्थ और हिंसा प्रवृत्ति जो व्यक्ति और समाज दोनोंके लिए अत्यन्त अहितकारक है; जुआके कारण ही जन्म-ग्रहण करती है।

दूसरा धूर्त है आलस। यह जीवनके मन्दाकिनी-प्रवाहको पर्वतके उस सूने पथपर ले जाता है, जहाँ लहरें उठती हैं और कगारकी गोदमें जाकर विलीन हो जाती हैं। जीवनमेंसे श्रद्धा, विश्वास और कर्त्तव्य-परायणता निकल जाती है तथा हृदय-मण्डलमें धूल और राख भर जाती है। जीवन क्षितिज अन्धकाराच्छन्न हो ज्ञान-मार्गको अवरुद्ध करनेमें सहायक बनता है, शान्त-सरोवरकी मधुर चाँदनी अस्ताचलकी ओर प्रस्थान कर देती है तथा भावनाओंका उठना बन्द हो जाता है और झपकी आने लगती है। बाह्य जगत्का हाहाकार अन्तर्जगत्में भी मुखरित होने लगता है। प्रेमका पपीहा अध्यात्मरस न मिलनेसे प्यासा ही रह जाता है। जीवनकी ओर गतिशील होनेकी कामना सुख-स्वप्न हो जाती है और जीवन जेठकी दुपहरियाके समान प्रमादके कारण दहकता है। कविका कहना है कि प्रमाद का अभाव होनेपर ही जीवन-क्षितिज रम्य प्रकाश-रश्मियोंसे व्याप्त हो सकता है।

तीसरा धूर्त शोक है, यह सन्ताप-बीजको उत्पन्न कर आत्माकी धैर्य

और धर्म-क्रियाओंको लुप्त कर देता है। परिश्रम और शक्तिका अभाव हो जानेपर शोक नृपका शासन अधिक दिनों तक चलता है। जीवनमें अगणित विद्युत्-कण नृत्य करने लगते हैं। प्रलयकालीन मेघोंकी मूसला-धार वर्षा होने लगती है। जीवन-समुद्रमे यह धूर्त वाड़वाग्नि उत्पन्न करता है, जिससे वह गुरु गर्जन-तर्जन करता हुआ क्षुब्ध हो जाता है तथा नाना प्रकारके भयकर और विषैले जन्तु आत्माकी शक्तिका अपहरण कर लेते हैं।

चौथा ठग है भय। जीवन-पथको विषय और भयकर बनानेमें यह अपनी सारी शक्तिको लगाता है। उल्लास, स्फूर्ति, तेज और गतिशीलता आदि सभी प्रवृत्तियोंमे ज्वालामुखी विस्फोटन होने लगता है। जीवन-नौका डॉड न लगनेसे तथा पतवारके अस्थिर होनेसे अनिश्चित दिशाकी ओर विभिन्न विकारजनित लहरोंके साथ थपेड़े खाती हुई प्रवाहित होती जाती है। इस ठगका आतक इतना व्याप्त रहता है जिससे सामनेका कगार भी धुँधला ही दृष्टिगोचर होता है। जीवनमे अगति और अनिश्चि-तता इसीके कारण आती है तथा भयाक्रान्त व्यक्ति जीवनमें सुनहले प्रभातके दर्शन कभी नहीं कर पाते हैं। जीवनका प्रत्येक कोना इस ठगके कारण अरक्षित रहता है। यह रात्रिमे ही धोखा नहीं देता, चोरी नहीं करता; प्रत्युत दिनमें भी निधड़क हो अपने कार्योंका सम्पादन करता है। जीवनकी विकासशील स्थितिको डावॉडोल करना इसीका काम है।

जीवन-मार्गका पाचवॉ ठग कुकथा है। रागात्मक चर्चाएँ आत्मा-भावनाको आवृतकर अनात्म-भावनाओंको उद्बुद्ध करती हैं। जिस प्रकार प्रलयकालमें समुद्रके जल-जन्तु विकल हो उछल-कूद मचाते हैं, उसी प्रकार कुकथाओंके कहने और सुननेसे मानसिक विकार आत्मिक भावोंका मन्थन करते हैं, जिससे आत्मिक शक्तियॉ कुटित हो जाती हैं। आत्म-चेतना लुप्त हो जाती है और जीवनमें विकारोंका तूफान उठकर जीवनको परम अशान्त बना देता है। मानव प्रकृत्या कमजोर है, वह कुत्सित

चर्चाओं और वार्ताओंके श्रवण, पठन एवं चिन्तनमें सदा आगे रहता है, जिससे यह ठग अपना अवसर पाकर आत्मिक शक्तिको चुप-चाप ही अपहृत कर लेता है तथा जीवन अशान्त हो जाता है। यौन प्रवृत्तिको प्रोत्साहन भी इसी ठग द्वारा मिलता है।

जीवन-मार्गका छठवाँ पाकिटमार है कौतूहल। इसकी माया अपार है, जिधर अपूर्व और रमणीय वस्तु दिखलायी पड़ती है, उधर भी यह पहुँच जाता है। कोमल, सुनहली और उजली आशा-किरणें जीवनके मार्गमें मनमोहक और आकर्षक दृश्य उपस्थितकर एकान्त और निर्जन स्थानके खेतोंमें ले जाती हैं; जहाँ जीवात्माके रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रको बलपूर्वक लूट लिया जाता है। यद्यपि इस मार्गमें शीतलजलके सहस्रों स्रोत रस वर्षा करते हैं, परन्तु है यह खतरनाक।

सातवाँ डाकू कोप है। इस अग्निमें अधिक उष्णता, दाहकता और भस्मसात् करनेकी शक्ति निहित है। जीवनमें कालरात्रिका आगमन इस डाकूकी कृपाका ही फल है। दया और स्नेह, जिनसे जीवनमें सरसता आती है, हृदय कंजोंपर अनुराग मकरन्द बिखरने लगता है एवं नाना भाव रूपी वृक्षोंपर आच्छादित हिमके पिघल जानेसे जीवनकी जड़ी-बूटियाँ जागरणको प्राप्त करती हैं, यह डाकू उन्हें देखते-देखते ही चुरा लेता है। इसी कारण इसे पश्यतोहर कहा गया है। मान और क्षमाके साथ इसका भीषण युद्ध भी होता है। दोनोंकी सेनाएं सजती हैं, युद्ध-वाद्य बजने हैं, तथा अपनी-अपनी ओरसे युद्ध-कौशलका पूरा-पूरा प्रदर्शन किया जाता है। यह विद्रोही रत्नत्रयको लेनेके लिए नाना उपाय करता है, इसको परास्त करना साधारण बात नहीं है। जो महावीर हैं, इन्द्रियजयी हैं, संयमी हैं और जिन्होंने प्रलोभनोंको जीत लिया है, वे ही इसे परास्त करनेकी क्षमता रखते हैं। जीवनमें उच्छृङ्खलता और अव्यवस्था इसीकी देन है।

आठवाँ ठग है कृपणबुद्धि। समस्त वस्तुओंको ले लेनेका लोभ करना

ही आत्मोत्थानका बाधक है। विश्वके मनमोहक पदार्थ इस प्राणीको अपनी ओर खींचते हैं। प्रलोभनोपर विजय प्राप्त किये बिना व्यक्तित्वका विकास नहीं हो सकता है। वस्तुतः वासना और सयमके उचित अनुपातसे ही जीवन अभ्युदयकी ओर बढ़ता है। प्रलोभनोंके मनमोहक दृश्य मानव मनको उलझाये बिना नहीं रह सकते। कृपणबुद्धि तो सर्वदा ही छोटे-बड़े सभी प्रकारके प्रलोभनोंमे ममत्व करती है, जिससे धर्मका नाश होता है। रत्नत्रय-धर्मका विघातक यह ठग है। आजतक इस ठगने कितने ही व्यक्तियोकी हत्या कराई, कितने ही देवायतनोंको दूषित कराया और कितने ही निरपराधियोको मौतके घाट उतारा। सासारिक सौन्दर्य का मूल्य इसी मापदण्डसे निर्धारित किया गया। एक-एक पैसेके लिए पाप किये, अनाचार किये, झूठ बोला, चोरी की और न मालूम क्या-क्या नहीं किया। सब इसी ठगने तो कराया, आत्माकी शक्तिको मुख्य रूपमें इसने विकृत किया।

नौवॉ ठग है अज्ञान, जिसने प्रकाशमान भास्करके ऊपर घने अन्धकारका आवरण डाल दिया है। इसके रहनेसे जीवन-पथ बिल्कुल अरक्षित है। यह अकेला नहीं रहता है, इसकी सेना बहुत बड़ी है। यद्यपि यह अपने दलका मुखिया है, परन्तु अन्य ठग भी बडे ही शक्तिशाली हैं। सयमसे यह डरता है, उसके धनुषकी टकार सुनते ही इसके कान बधिर और ऑखे अन्धी बन जाती हैं। धर्मरत्नकी सुरक्षाके लिए इस ठगको भगाना ही पडेगा। इसके साथ सन्धि करनेसे काम नहीं चल सकेगा।

दसवॉ ठग भ्रम है, इससे सारी शक्तियोको ही चुरा लिया है। यह अहर्निश वसन्त वैभव और ओस मोतीकी माला लिये भावना वैभवकी सृष्टि करता है। जीवनको ठोस सत्यके धरातलसे पृथक्कर किसी भयकर सागरमे डुबाना चाहता है। शुद्ध, निर्मल और ज्ञानरूप आत्माको शरीर आदि जड़ पदार्थोंमें समझता है।

ग्यारहवॉ ठग है नीद। तन्द्रा मानवको संसारके मधुर स्वप्नोंमे भले ही विचरण कराये, पर ठोस विश्वसे पृथक् कर देती है। जन्म-मरणकी समस्या और संसारके प्रति विराम भावकी कल्पनामें यह अनेक विघ्न उपस्थित करती है। यह ठग आत्मानुभूति सौन्दर्यकी यथार्थ अभिव्यक्तिको चुरा लेता है।

बारहवॉ ठग है अहकार। ससारकी दो प्रवृत्तियॉ जो जीवनको इस क्षितिजसे उस क्षितिजकी ओर ले जाती है, इसीके कारण उत्पन्न होती हैं। आत्मामे मार्दवधर्म उत्पन्न न होने देना तथा सहानुभूति और सहृद-यता, जो कि नम्रता भावको उत्पन्न करनेमे साधक हैं, नहीं उत्पन्न होने देना इसकी विशेषता है।

तेरहवॉ ठग मोह है। सारा विश्व इसके प्रभावसे दुःखी है। रत्नत्रय-धर्मको ये सभी ठग चुराते है, उसको प्राप्त करनेमे बाधक बनते हैं।

यद्यपि इस तेरह काठियाकी रचना साधारण है, काव्य-सौन्दर्य अत्यल्प है; फिर भी भावनाओं और विचारकी दृष्टिसे यह रचना श्रेष्ठ है, इसमे जीवनके सभी पक्षोंकी अनुभूतिके लिए हृदय-कपाटको खुला रखा गया है। मनोविकारोंके परिमार्जनकी ओर प्रत्येक व्यक्तिको सर्वदा ध्यान रखना चाहिये, उसपर विशेष जोर दिया है। भाषापर गुजरातीका प्रभाव है।

भवसिन्धु-चतुर्दशी

यह सरस हृदयग्राहक रचना है। कवि बनारसीदासने इसमे ससार-की विडम्बनाओसे पृथक् रहनेकी ओर संकेत करते हुए परमात्म-चिन्तन अथवा तत्त्वान्वेषणकी ओर प्रवृत्त होनेकी बात कही है। प्रायः देखा जाता है कि उच्चतर अभि-व्यक्तिसे वञ्चित मानव-जीवन ऐन्द्रिय उपयोगमे ही डूबा रहता है। भौतिक सघर्षके कारण जीवन-नौका आध्यात्मिकताकी ओर गीतशील नहीं होती है। रागवश मानव स्वभावतः विषम परि-स्थितियोसे आहत रहता है और उसे आत्म-सुख-रूपिणी स्थिति नही मिल

पाती। शरीर और मन दोनो ही अस्वस्थ रहते हैं तथा कुत्सित लालसाएँ जीवन-रसको सुखा देती है। कविने प्रस्तुत रचनामे ससारको समुद्रकी उपमा देकर उसका विश्लेषण मनोहर ढगसे किया है तथा आत्मोद्धार करनेके सरल और अनुभूत उपाय बतलाये गये है। उपमाएँ अत्यन्त चुभती हुई सरल और सरस है। कवि कहता है कि—कर्मरूपी महा-समुद्रमे क्रोध मान-माया-लोभ रूप विकारोका जल भरा है और विषय-वासनाओंकी नाना तरगे अहर्निश उठती रहती हैं। तृष्णा-रूपी प्रबल वाडवाग्नि इसमें नाना प्रकारसे विकृति उत्पन्न करती रहती है और चारो ओर ममतारूपी गुरुगर्जनाएँ होती रहती है। इस विकराल समुद्रमे भ्रम, मिथ्याज्ञान और कदाचाररूपी भँवर उठती रहती हैं। समुद्रकी भीषणताके कारण मनरूपी जहाज चारो ओर घूमता है, कर्मके उदयरूपी पवनके जोरसे वह कभी गिरता है, कभी डगमगाता है, कभी डूबता है और कभी उतराता है।

जैसे समुद्र ऊपरसे सपाट दिखलायी पडता है, पर कहीं गहरा होता है और कहीं चंचल भँवरोमें डाल देता है, उसी प्रकार ससार भी ऊपरसे सरल दिखलायी पड़ता है, किन्तु नाना प्रकारके प्रपचोके कारण गहरा है और मोहरूपी भँवरोंमें फँसानेवाला है। इस ससारमे समुद्रकी बड़-वाग्निके समान माया तथा तृष्णाकी ज्वाला जला करती है, जिससे ससारी जीव अहर्निश झुलसते रहते है।

ससार अग्निके समान भी है, जैसे अग्नि ताप उत्पन्न करती है, उस प्रकार यह भी त्रिविध ताप—दैहिक, दैविक और भौतिक संतापोको उत्पन्न करता है। अग्नि जिस प्रकार ईंधन डालनेसे उत्तरोत्तर प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार अधिकाधिक परिग्रह बढ़ानेसे सासारिक आकाक्षाएँ बढ़ती चली जाती हैं। यह संसार अन्धकारके तुल्य भी है, क्योंकि प्राणीके सम्यग्ज्ञानको ढककर उसे विवेकहीन बना देता है। मिथ्यात्वके सवर्द्धन

और पोषणसे प्राणीको अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं तथा उसकी चिरन्तन शान्ति भी इसीके कारण विकृत हो जाती है।

जब चैतन्य आत्मा जागृत हो जाता है, तब मानव जड़ पदार्थोंके सुखको नीरस अनुभव करने लगता है। समतारूपी पतवारके हाथमें आजानेसे भव-समुद्रको पार करनेमें सरलता होती है। आत्मगुणरूपी यन्त्र दिशाओंका परिज्ञान करता है। शुक्लध्यानरूपी मल्लाह शिवद्वीप मोक्षकी ओरसे चलता है। यद्यपि मार्गमें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, पर रत्नत्रयके पासमें रहनेसे गन्तव्यपर पहुँचनेमें विलम्ब नहीं होता है।

इसमें प्रस्तुत संसारकी अभिव्यंजनाके लिए अप्रस्तुत समुद्रका साङ्गोपाङ्ग निरूपण करते हुए उससे पार होनेके प्रयत्नोंपर प्रकाश डाला है। कथानकके अवलम्बन बिना ही भावनाओंकी इतनी सुन्दर अभिव्यञ्जना कविके काव्य-चमत्कारकी सूचिका है। कविने कितने सीधे-सादे ढंगसे भावोंको प्रकट किया है—

कर्म समुद्र विभाव जल, विषय कषाय तरंग।
बड़वानल तृष्णा प्रबल, ममता धुनि सर्वंग॥
भरम भँवर तामें फिरे, मन जहाज चहुँओर।
गिरै फिरै बूड़े तिरै, उदय पवनके जोर॥
जब चेतन मालिक जगै, लखै विपाक नजूम।
डारै समता शृंखला, थकै भँवर की धूम॥
दिशि परखै गुण जन्त्रसौं, फेरै शकति सुखान।
धरै साध शिव दीप मुख, बादबान शुभ ध्यान॥

इसकी भाषा सरल, परिमार्जित और मधुर है। उपमाएँ सार्थक हैं, कल्पनाकी उड़ान ऊँची नहीं है, फिर भी भावकी दृष्टिसे रचना अच्छी है। कविने इसमें आध्यात्मिक भावनाओंका अपूर्व मिश्रण किया है।

कवि बनारसीदासने हिंडोलेका रूपक देकर आत्मानुभूतिकी जो इतनी सरस अभिव्यञ्जना की है वह अन्यत्र मिल सकेगी, इसमे सन्देह है। चेतन

अध्यात्म-हिंडोलना

आत्मा स्वाभाविक सुखके हिंडोलेपर आत्मगुणोके साथ क्रीडा करती रहती है। हिंडोलेका झूलना आनन्दप्रद, श्रान्ति और क्लान्तिको दूर करनेवाला एव नानाप्रकारसे मनमे हर्ष और प्रसन्नताको उत्पन्न करता है। यह हिंडोला समतल भूमिपर निर्मित किसी भव्य प्रासादमे रस्सीके सहारे टॉगा जाता है। हिंडोला झूलते समय सौभाग्यवती नारियॉ चित्तको आह्लादित करनेवाले नानाप्रकारके मनोरम गायन गाती है तथा हर्षातिरेकसे तन-बदनको भूल अलौकिक आनन्दमें मग्न हो जाती है। हिंडोलेके समय वर्षा भी होती है, घन-घटाऍ गर्जन-तर्जन करती हुई नानाप्रकारके भय उत्पन्न करती हैं। कभी-कभी शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु प्रवाहित होती है, जिससे हिंडोला झूलनेवालेका मन अपार आनन्दको प्राप्त होता है। वर्षा ऋतुमे हिंडोला झूला जाता है, अतः विद्युत्की चकाचौंध अन्धकारमें एक क्षीण प्रकाशकी रेखा उत्पन्न करती है। कविने इस छोटेसे वर्णनके सहारे जीवन और जीवन-विकासके सारे सिद्धान्तको अभिव्यञ्जित करनेमे अपूर्व सफलता पायी है। कवि इसी रूपकको स्पष्ट करता हुआ कहता है—हर्षके हिंडोलेपर चेतन राजा सहज रूपमें झूमता हुआ झूलता है। धर्म और कर्मके सयोगसे स्वभाव और विभावरूप रस उत्पन्न होता है। मनके अनुपम महलमें सुरुचिरूपी सुन्दर भूमि है, उसमे ज्ञान और दर्शनके अचल खभे और चारित्रकी मजबूत रस्सी लगी है। यहॉ गुण और पर्यायकी सुगन्धित वायु बहती है और निर्मल विवेकरूपी भ्रमर गुञ्जार करते है। व्यवहार और निश्चय नयकी डंडी लगी है। सुमतिकी पटरी बिछी है और उसमे छह द्रव्यकी छह कीलें लगी है। कर्मोंका उदय और पुरुषार्थ दोनो मिलकर हिंडोलेको हिलाते है। सवेग और सवर दोनों सेवक सेवा करते है तथा व्रत ताम्बूल आदि देते है, जिससे आनन्दस्वरूप चेतन अपने आत्मसुखकी समाधिमे निश्चल

होता है। धारणा, समता, क्षमा और करुणा ये चारों सखियाँ चारो ओर उपस्थित हैं तथा सकाम, अकाम निर्जरारूपी दासियाँ सेवा करती हैं। यहाँ सातों नयरूपा सुहागिनी बालाओंके कंठकी मधुरध्वनि सुनाई पड़ती है। गुरुवचनका सुन्दर राग आलापा जा रहा है तथा सिद्धान्तरूपी ध्रुपद और अर्थरूपी तालका सचार हो रहा है। सत्य श्रद्धानरूपी मेघमाला गुरु गर्जन करती हुई क्रोध, तृष्णा, ईर्ष्या आदि लुटेरोंको भगा रही है। स्वानुभूतिरूपी विद्युत् जोरसे चमकती है और शीलरूपी शीतलवायु प्रत्येक सहृदयके हृदयको रस निमग्न कर देती है। तप करनेसे कर्म-कालिमा भस्म हो जाती है और अपरिमित आत्मशान्ति प्रकट हो जाती है। कविने उपर्युक्त भावकी कितनी सुन्दर अभिव्यजना की है—

सहज हिंडना हरख हिंडोलना, झूलत चेतन राव।
जहँ धर्म कर्म सँजोग उपजत, रस स्वभाव विभाव॥
जहँ सुमन रूप अनूप मन्दिर, सरुचि भूमि सुरंग।
तहँ ज्ञान दर्शन खंभ अविचल चरन आड अभंग॥
मरुवा सुगुन पर जाय विचरत, भौंर विमल विवेक।
व्यवहार निश्चल नय सुदंडी, सुमति पटली एक॥
उद्यम उदय मिलि देहिं झोटा, शुभ-अशुभ कल्लोल।
पटकोल जहाँ षट् द्रव्य निर्णय, अभय अंग अडोल॥
संवेग संवर निकट सेवक, विरत बीरे देत।
आनन्द कन्द सुछन्द साहिब, सुख समाधि समेत।
धारना समता क्षमा करुणा, चार सखि चहुँ ओर।
निर्जरा दोउ चतुरदासी, करहिं खिदमत जोर॥
जहँ विनय मिलि सातो सुहागिन, करत धुन झनकार।
गुरु वचन राग सिद्धान्त धुरपद, ताल अरथ विचार॥
श्रद्धहन साँची मेघमाला, दाम गर्जन घोर।
उपदेश वर्षा अति मनोहर, भविक चातक शोर॥

अनुभूति दामिन दमक दीसै, शील शीत समीर।
तप भेद तपत उछेद परगट भाव रंगत चीर॥

यद्यपि अध्यात्म-हिंडोलनाकी भाषा साधारण है, किन्तु कविने रमणीयतामें पवित्रताको इस प्रकार मिला दिया है जिससे आत्म-ज्योति फूटती हुई दिखलायी पडती है। आत्माकी मधुर स्मृति जाग्रत हो जानेसे मानव आत्माके साथ आनन्दका झूला झूलने लगता है अर्थात् अशुद्ध आत्मा शुद्ध होनेकी ओर अग्रसर होती है।

यह भैया भगवतीदासका सुन्दर आध्यात्मिक रूपक-काव्य है। वस्तुतः यह आत्मचेतनाकी वाणी है। कवितामें हृदयकी कोमलता, कल्पनाकी मनोरमता और आत्मोन्मुखी तीव्र अनुभूति है। कृति सुरम्य, विचित्रवर्णोंसे सयुक्त, अलौकिक आनन्द देनेवाली और मनोज्ञ है। आन्तरिक विचारो और अनुभूतियोका सम्मिश्रण इस कृतिमे इतना अद्भुत है, जिससे यह कृति मानव अन्तस्तलको स्पर्श किये विना नहीं रह सकती है। विकारोको पात्र कल्पना कर कविने इस चरित्रमे आत्माकी श्रेयता और प्राप्तिका मार्ग प्रदर्शित किया है।

चेतन-कर्म-चरित्र

सुबुद्धि और कुबुद्धि ये दोनो चेतनकी भार्याएँ थीं। अतः कविने इन तीनोंका वार्तालाप आरम्भमे कराया है। सुबुद्धि चेतन आत्माकी कर्म-सयुक्त अवस्थाको देखकर कहने लगी—"चेतन! तुम्हारे साथ यह दुष्टोका संग कहाँसे आ गया? क्या तुम अपना सर्वस्व खोकर भी सजग होनेमे विलम्ब करोगे। जो व्यक्ति सर्वस्व खोकर भी सावधान नहीं होता है, वह जीवनमे कभी भी उन्नतिशील नहीं हो पाता है। नाना प्रकारके व्यक्तियोके सम्पर्क एव विभिन्न प्रकारकी परिस्थितियोंके बीच गमन करते हुए भी वास्तविकताको हृदयंगम करनेका प्रयत्न अवश्य होना चाहिये।"

कथावस्तु

चेतन—"हे महाभागे! मै तो इस प्रकार फँस गया हूँ जिससे इस

गहन-पंकसे निकलना मुझे असमव-सा लगता है। मै यह जाननेके लिए उत्सुक हूँ कि मेरा उद्धार किस प्रकार हो सकेगा। मै किस प्रकार उन अनन्तोकी पक्तिमे स्थान प्राप्त कर सकूँगा, जो अपनेको ईश्वर हो जानेका दावा करते हैं।"

सुबुद्धि—"नाथ! आप अपना उद्धार स्वय करनेमे समर्थ है जो व्यक्ति अपने स्वरूपको भूल जाता है, उस व्यक्तिको पराधीन करनेमे विलम्ब नहीं होता। जब तक हम अपनी यथार्थ स्थिति नहीं समझते है, तब तक प्रायः हमारे ऊपर शासन किया जाता है। हमारे ऊपर शोषणका क्रम भी तभीतक चलता है, जबतक हम अपने अधिकार और कर्त्तव्योसे वञ्चित है। भेदविज्ञान ही आपके लिए परम उपयोगी अस्त्र है, इसीसे आप रण-क्षेत्रमें युद्ध करनेके लिए सक्षम हो सकते हैं। जैसे सिंह गधोंके साथ रहते-रहते अपनेको भूल जाता है, उसी प्रकार आप भी कुबुद्धिके कुसगसे पथच्युत हो गये है तथा इधर-उधर भ्रमण कर रहे हैं। सावधान होकर अब मैदानमे आ जाइये, विजय निश्चित है।"

कुबुद्धि—"री दुष्टा! क्या बक रही है। मेरे सामने तेरा इतना बोलनेका साहस, तू नहीं जानती कि मै प्रसिद्ध शूरवीर मोहकी पुत्री हूँ। मुझे इस बातका अभिमान है कि अपने प्रभावसे मैंने अनेक योद्धाओको परास्त कर दिया है। अरी सौत! तू इतनी बढ-बढ कर क्यो बाते कर रही है, क्यो नही यहॉसे चली जाती?"

सुबुद्धि—"वाह! वाह!! आपने ख़ूब कहा। मैं और यहॉसे चली जाऊॅ और तुम अकेली क्रीड़ा करो। न! न!! यह कभी नहीं होनेका। मेरे रहते हुए तेरा अस्तित्व कभी सम्भव नहीं, तू दुराचारिणी है। चल हट यहॉसे।"

सुबुद्धिके इन वाक्य-बाणोने कुबुद्धिके हृदय-कुसुमको छिन्न-भिन्न कर दिया, वह क्रुद्ध हो लाल-पीली होती हुई अपने पिता मोहराजके पास गई। यद्यपि यह मोहराज प्रचण्ड बली थे, पर समय और परिस्थितिका उन्हे

पूर्ण रूपसे अनुभव था, अतएव अपनी प्यारी पुत्रीको समझाते हुए कहने लगा—"बेटी, चिन्ता मत करो, मेरे रहते हुए ससारमे ऐसा कोई नही है जो तुम्हारा परित्याग कर सके। मै तुम्हारे पतिकी बुद्धिको ठिकाने पर लाता हूँ। अभी अपने समस्त सरदारोंको बुलाकर चेतनके पास भेजता हूँ। जबतक वह सुबुद्धिको निकालकर तुमको अपने घरमे स्थान नही देगा, प्यार नही करेगा तबतक मैं चुप होने का नही। मेरी और मेरे योद्धाओं-की शक्ति महान् है।"

इस प्रकार कुबुद्धिको समझा-बुझाकर मोहने अपने चतुर दूत 'काम-कुमार'को बुलाया और उसे आदेश दिया कि तुम चेतन राजासे जाकर कहो कि तुमने अपनी स्त्रीका परित्याग क्यो कर दिया है। या तो हाथ जोडकर क्षमा याचना करो, अन्यथा युद्धके लिए तैयार हो जाओ।

दौत्यकर्ममे निपुण काम-कुमारने मोहका सन्देश जाकर चेतन राजासे कह दिया। वाद-विवादके उपरान्त चेतन राजा भी मोहसे युद्ध करनेको तैयार हो गया। मोहने महापराक्रमशाली क्रोध और लोभ योद्धाओंको चेतनराजको पकड़नेके लिए आमन्त्रित किया।

राग और द्वेष दोनो मन्त्रियोने नानातरहसे परामर्शकर चेतनराजको आधीन करनेका उपाय बतलाया। ज्ञानावरणने मन्त्रियोको प्रसन्न करनेके लिए चाटुकारिता करते हुए कहा—"प्रभो! मेरे पास पॉच प्रकारकी सेनाऍ हैं, मैंने एक चेतनकी बात ही क्या, सारे ससारको अपने आधीन कर लिया है। मै, आप जिस प्रकार कहें, चेतनराजको बन्दी बनाकर आपके सामने प्रस्तुत कर सकता हूँ। मेरी शक्ति अपार है, जहॉ-जहॉ आपको अज्ञान दीख पड़ता है, वह मेरी कृपाका फल है।"

इसी समय दर्शनावरणने अपनी डींग हॉकते हुए कहा—"देव! मै अपने विषयमे अधिक प्रशसा क्या करूँ, मैने तो चेतनकी वह दुरवस्था कर रखी है, जिससे वह कहींका नही रहा है। मुझ-जैसे सेनानीके रहते हुए आपको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नही"। अवसर पा इसी समय

वेदनीय बोला—"नाथ! मेरा प्रताप जगविख्यात है। जो वीतरागी कहलाते हैं, जिनके पास संसारका तिल-तुप मात्र भी परिग्रह नहीं है उनको भी मैंने नहीं छोड़ा है। सुख-दुःख विकीर्ण करना मेरी महिमा नहीं तो और क्या है?" अब मोहनीयकी पारी आई और वह ताल ठोकता हुआ बोला—"अह, विश्वमें मेरा ही तो साम्राज्य है। मेरे रहते हुए चेतनका यह साहस कि कुबुद्धिको घरसे निकाल दे। यह कभी नहीं हो सकता है, मैं तो प्रधान सेनापति हूँ। यदि मैं यह कहूँ कि मोहराज्यका सारा सचालन मेरे ही द्वारा होता है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।" इसी प्रकार क्रमानुसार आयु, नाम, गोत्र और अन्तरायने अपनी-अपनी विशेताएँ बतलायीं। मोहराजा अपनी अपरिमित शक्तिको देखकर हँसा और बोला—"मुझ जैसे प्रतापीके शासन करते हुए, जिसके पास अष्ट कर्मोंकी प्रबल सेना है, चेतनराजा कभी अनीति नहीं कर सकेगा। क्या मेरी पुत्री दुर्बुद्धिको इस प्रकार घरसे निकाल सकेगा। अतः निश्चय हुआ कि अब जल्दी ही चेतनराजापर आक्रमण कर देना चाहिये।

समस्त सेना आनन्दभेरी बजाती हुई राग-द्वेपको मोर्चेपर आगे कर रणक्षेत्रको चली। जब वे चेतननगरके समीप पहुँचे तो दूर ही पड़ाव डाल दिया।

इधर जब चेतनराजाको मोहके आक्रमणका समाचार मिला तो उसने भी अपने सभी सचिव और सेनापतियोंको एकत्रित किया। सर्व प्रथम ज्ञान बोला—"नाथ! मोहसे डरनेकी कोई बात नहीं, विजय निश्चय ही हमारे हाथ है। हमारी बाणवर्षाको मोहकी सेना कभी भी सहन नहीं कर सकती है।"

चेतनराजा प्रसन्न हो बोला—"ज्ञानदेव! तुम्हारी आन ही हमारी शान है। वीर! मैं तुम्हारे ऊपर पूर्ण विश्वास करता हूँ, अनेक युद्धोंमे तुम्हारी वीरता देख भी चुका हूँ अतः शीघ्र ही अपने सैन्यदलको तैयार कर यहाँ उपस्थित करो। भयकी कोई बात नहीं है; तुम्हें याद होगा,

अनेकबार तुमने मोहराजाकी सेनाको परास्त किया है, जल्द जाओ। इसी प्रकार दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य आदि भी क्रमशः चेतनराजाके समक्ष उपस्थित हुए और अपनी-अपनी विशेषताएँ बतलाकर बैठ गये। चेतनराजाने अपनी समस्त सेनाको आज्ञा दी कि शीघ्र ही तैयार होकर एकत्रित हो जाय; आज भयकर युद्धका सामना करना होगा।

ज्ञानदेव अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हो गया था, फिर भी वह शत्रुके पराक्रमसे सशंक था अतः विनीत होकर कहने लगा—"प्रभो! अपराध क्षमा हो तो प्रार्थना करूँ।"

चेतनराजा—"वीरवर! तुम्हारे ऊपर तो सारे युद्धका निपटारा निर्भर है। इस समय तुम्हें अप्रसन्न करनेसे मेरा कार्य किस प्रकार चल सकेगा? अतः निस्संकोच जो कहना चाहो, कहो; डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं। युद्धके अवसर पर वीरोंकी बात मानी जाती है। जो राजा रणनीतिविज्ञ वीरोंकी बात नहीं सुनता वह पीछे पश्चात्ताप करता है, अतः आप निर्भय होकर अपनी बातें कहें।"

ज्ञानदेव—"प्रभो, युद्धके लिए आक्रमण करनेके पूर्व दूत भेजकर शत्रुके प्रधान सचिवको या उसके किसी प्रतिनिधिको बुलवा लीजिये तथा जहाँ तक हो सके सन्धि कर लेना ही ठीक होगा।"

चेतनराजा—"ज्ञानदेव! आज तुम युद्धके अवसरपर कातर क्यों हो रहे हो? हमारी शक्ति अपार है, विश्वास करो, विजय होगी। घरमे दुश्मन-को बुलवाना कहाँतक उचित है। राजनीति बड़ी विलक्षण होती है, अतः अब सन्धिका अवसर नही है। इस समय युद्ध करना ही हमारे लिए श्रेयस्कर है।"

ज्ञानदेव—"देव! आप मोहराजाकी अपार शक्तिसे परिचित होकर भी इस प्रकारकी बाते कर रहे है। मेरा विश्वास है कि जब आपके सामने राग-द्वेष नाना प्रलोभनोंके साथ सुन्दर रमणियोंके समूहोंको लेकर प्रस्तुत

होंगे, उस समय आप दृढ़ रह सकेंगे ? आप मोहराजाके भयंकर अस्त्रोंसे अपरिचित हैं ?"

चेतन राजा—ज्ञानदेव ! बात तो तुम्हारी ठीक है। मोहराजाने भुलावा देकर ही अपनी पुत्री कुबुद्धिके साथ मेरा विवाह कर दिया, जिसके वशीभूत हो मैंने कौन-कौन कुकर्म नहीं किये हैं ? परन्तु हमें अपनी अतुलित शक्तिका पूर्ण विश्वास है, विजय-लक्ष्मी मिलेगी। रमणियोंके कटाक्ष-वाण हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेंगे, परन्तु तुम्हें हमारा साथ देना पड़ेगा। वीर तुमने यदि दृढ़तासे हमारा साथ दिया तो मोहका सैन्यदल हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेगा। अतः रणनीतिके अनुसार विवेक-दूतको मोहराजाके पास भेज देना चाहिये, शायद सन्धि हो जाय। यहाँ किसीका बुलाना ठीक नहीं। जब हममें अनन्त बल है, अनन्त सुख है, फिर इतना भय क्यों ?"

बहुत विचार-विनिमयके बाद ज्ञानदेवके सेनापतित्वमें चेतनराजाकी सेना और कामदेव कुमारके सेनापतित्वमें मोहराजाकी सेनाका युद्ध होने लगा। ज्ञानदेव समरनीतिका विशेषज्ञ था, यद्यपि कामदेवकुमार भी राजनीतिका पण्डित था, पर था शरीरसे सुकुमार। कठोर बलशाली ज्ञानदेवने सुकुमार कामदेव कुमारको एक ही बाणमें धराशायी कर दिया, यद्यपि कामदेव कुमारने अपना पौरुष दिखलानेमें कोई कमी नहीं की, किन्तु ज्ञानदेवके समक्ष उसकी एक भी चाल सफल नहीं हुई। ज्ञानदेवने चक्रव्यूह-रचना की और द्वार-संरक्षणका भार व्रतदेवको प्रदान किया। इस चक्रव्यूहको तोड़नेमें मोहराजाकी सारी सेना अक्षम रही और ज्ञानदेवने अवसर पा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चारों वीरोंको मूर्च्छित कर दिया। मिथ्यात्वभट, जो कि मोहका बलवान सेनानी था, व्रतदेवने गिरा दिया। अविरतिको भी इस प्रकार पटका, जिससे यह वीर रणभूमिसे उठ ही नहीं सका, और सदाके लिए सो गया।

चेतनगढ़ शत्रुओंसे खाली हो रहा था, शत्रुसेना भाग रही थी और चेतन राजाने गुणस्थान प्रदेशोंका मार्ग ग्रहण कर अपने गढ़के कोने-कोनेसे शत्रुके भगानेका कार्य आरम्भ किया। यद्यपि मोहराजाकी सेना अस्त-व्यस्त थी, फिर भी कुछ सुभट, जिनमें प्रधान लोभ, छल, कपट, मान, माया आदि थे, छिपे हुए उचित समयकी प्रतीक्षामें थे। चेतन राजा मिथ्यात्व, सासादन, सम्यग्मिथ्यात्व और अविरत स्थानोंसे मोहकी सेनाको खदेड़ता हुआ आगे बढ़ा और देशविरत, प्रमत्त एवं अप्रमत्त देशमे जाकर उसने मोह राजाके बलशाली सेनापति प्रमादका हनन किया। इस वीरके मारे जानेसे मोहकी सेना बलहीन होने लगी। भेद-विज्ञानका अस्त्र लेकर चेतन राजाने यहाँ भयंकर युद्ध किया और क्षपकश्रेणी—ढूँढ़-ढूँढकर शत्रुओंको परास्त करनेके मार्गका आरोहण कर अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण नामक नगरोंमे पहुँच ज्ञानावरणके दो वीर, मोहनीयके चार और नामकर्मके तीस वीरोंको धराशायी किया। सूक्ष्म लोभका विध्वंस करनेके लिए अपने राज्यके दसवें नगर सूक्ष्मसाम्परायमें प्रवेश करना पड़ा। यहाँ थोड़ी देर तक सूक्ष्म लोभके साथ युद्ध हुआ। बेचारा जर्जरित लोभ चेतन राजाका सामना नहीं कर सका और ध्यानवाण-द्वारा विद्ध होकर गिर पड़ा। चेतन राजाने अब समाधि अस्त्रको अपनाया, उसने समस्त कषाय शत्रुओंको इस एक ही वाण-द्वारा परास्त कर ग्यारहवे और बारहवे नगरोंको शत्रुओंसे खाली कराया। यद्यपि ग्यारहवाँ नगर उपशान्त मोह चेतन राजाके भयसे यों ही शत्रुओंसे खाली हो गया था, इसलिए उसे इस नगरमें जाना नहीं पड़ा। बारहवें क्षीण मोह नगरमें पहुँचकर मोह राजाको चेतन राजाने खूब पटका और उसका सर्वनाश कर कतिपय अवशेष शत्रुओंको परास्त करनेके लिए तेरहवे नगर सयोगकेवली मे पहुँचा और वहाँ विजयका डंका बजाता हुआ केवलज्ञान-लक्ष्मीको प्राप्तकर निहाल हो गया। इस समय एक ओर विजयी चेतन राजा आनन्दमे मग्न ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यको प्राप्तकर निष्कटक राज्य करने

लगा और दूसरी ओर विजित मोह अपनी सेनाको खोकर चेतनकी आधी-नता और महत्ता स्वीकार कर चुका था। चेतन राजाने अपने चौदहवे नगरमें पहुँच थोडे ही समयमें मोक्षनगरी प्राप्त कर ली थी और यहीं स्थायी रूपसे राजधानी नियुक्तकर शासन करने लगा।

यह एक सुन्दर काव्य है। कविने दोहा, चौपाई, सोरठा, पद्धरि मरहठा, करिखा और प्लवङ्गम छन्दोंमे इसकी रचना की है। कुल पद्य २९६ हैं। यह काव्यके अनेक गुणोंसे समन्वित है।

काव्य-सौष्ठव

कल्पना, अरूप भावना, अलंकार, रस, उक्ति-सौन्दर्य और रमणीयता आदिका समवाय इसमें वर्तमान है। भावनाओंके अनुसार मधुर अथवा परुप वर्णोंका प्रयोग इस कृतिमे अपूर्व चमत्कार उत्पन्न कर रहा है। युद्धका वर्णन कविने कितना सजीव किया है—

सूर बलवंत मदमत्त महा मोह के, निकसि सब सैन आगे जु आये।
मारि घमासान महा जुद्ध बहु क्रुद्ध करि, एक तें एक सातों सवाये॥
वीर सुविवेकने धनुष ले ध्यानका, मारिकै सुभट सातों गिराये।
कुमुक जो ज्ञान की सैन सब संग धसी, मोहके सुभट मूर्छा सवाये॥
रणसिंगे बज्जहिं कोऊ न भज्जहिं, करहिं महा दोऊ जुद्ध।
इत जीव हंकारहिं, निज पर वारहिं, करँह अरिन को रुद्ध॥

युद्ध-वर्णनमें द्वित्व और संयुक्त वर्णोंका प्रयोगकर सजीवता लानेका प्रयास प्रशंस्य है। शब्दचित्रों-द्वारा कविने युद्धक्षेत्रका चित्र उतारनेमें सफलता प्राप्त की है। वीर रसके सहायक भयानक और वीभत्स रसोंका निरूपण भी यथास्थान विद्यमान है। आरम्भमें सुसंस्कृत शृङ्गारका आभास भी मिलता है, कविने वीर रसकी प्रेरणाके लिए संयमित शृङ्गारका वर्णन किया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, यमक, रूपक और समासोक्ति अलंकारोंकी छटा भी कवितामें विद्यमान है। रूपक-द्वारा व्यजित आत्मिक वाणीका सिंहावलोकन करनेपर प्रतीत होता है कि कवि चिर सुखकी

लालसासे जगत्‌के कोलाहलपूर्ण वातावरणसे निकलकर जीवनकी आनन्द-मयी निधियाँ एकत्रित करनेमे सलग्न है तथा छल-कपट-राग-द्वेष-मोह-माया-मान-लोभ आदि विकारोका परिमार्जनकर आत्मानन्दमे विचरण करना चाहता है और अपने पाठकोको भी आत्मसरितामे अवगाहन, मजन और पान करनेकी प्रेरणा करता है। सक्षेपसे यह अनघ पद्य-बद्ध रूपक है।

एकसौ आठ पद्योंमें कवि भगवतीदासने आत्मज्ञानका सुन्दर उपदेश दिया है। यह रचना बडी ही सरस और हृदय-ग्राह्य है। अत्यल्प कथानक के सहारे आत्मतत्त्वका पूर्ण परिज्ञान सरस शैलीमे करा देनेमे इस रचनामे अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई है। कवि

शत अष्टोत्तरी

कहता है कि चेतन राजाकी दो रानियाँ हैं—एक सुबुद्धि और दूसरी माया। माया बहुत ही सुन्दर और मोहक है। सुबुद्धि बुद्धिमती होनेपर भी सुन्दर नहीं है। चेतन राजा माया रानीपर बहुत आसक्त है, दिनरात भोग-विलास में सलग्न रहता है। राज-काज देखनेका उसे बिल्कुल अवसर नहीं मिलता है, अतः राज्यकर्मचारी मनमानी करते है। यद्यपि चेतन राजाने अपने शरीर देशकी सुरक्षाके लिए मोहको सेनापति, क्रोधको कोत-वाल, लोभको मन्त्री, कर्म उदयको काजी, कामदेवको प्राइवेट सेक्रेटरी और ईर्ष्या-घृणाको प्रबन्धक नियुक्त किया है, फिर भी शरीर-देशका शासन चेतनराजाकी असावधानीके कारण विशृंखलित होता जा रहा है। मान और चिन्ताने प्रधानमन्त्री बननेके लिए संघर्ष आरम्भ कर दिया है। इधर लोभ और कामदेव अपना पद सुरक्षित रखनेके लिए नाना प्रकारसे देशको त्रस्त कर रहे है। नये-नये प्रकारके कर लगाये जाते हैं, जिससे राज्यकी दुरवस्था हो रही है। ज्ञान, दर्शन,सुख, वीर्य जो कि चेतन राजाके विश्वासपात्र अमात्य हैं, उनको कोतवाल, सेनापति, प्राइवेट सेक्रे-टरी आदिने खदेड़ बाहर कर दिया है। शरीर-देशको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ चेतनराजाका राज्य न होकर सेनापति मोहने अपना

करें, जिससे शीघ्र ही मोक्ष महलपर अधिकार किया जा सके। प्राणनाथ! राज्य सँभालते समय तुमने मोक्षमहलको प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञा भी की थी। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मोक्षमहलमे रहनेवाली मुक्ति-रानी इस ठगनी मायासे करोड़ों गुनी सुन्दरी और हाव-भाव प्रवीण है। उसे देखते ही मुग्ध हो जाओगे। एक बार उसका आलिंगन कर लेनेपर तुम अपनी सारी सुध-बुध भूल जाओगे। प्रमाद और अहंकार दोनो ही तुमको मुक्तिरमाके साथ विहार करनेमे बाधा दे रहे हैं।

इस प्रकार सुबुद्धिने नाना तरहसे चेतनराजाको समझाया। सुबुद्धिकी बात मान लेनेपर चेतनराजा अपने विश्वासपात्र अमात्य ज्ञान, दर्शन आदिकी सहायतासे मोक्षमहलपर अधिकार करने चल दिया।

काव्यत्वकी दृष्टिसे इस रचनामें सभी गुण वर्तमान हैं। मानवके विकार और उसकी विभिन्न चित्तवृत्तियोका अत्यन्त सूक्ष्म और सुन्दर विवेचन किया गया है। यह रचना रसमय होनेके साथ मंगलप्रद है। 'शिवं' और 'सुन्दर'का सयोग इसमे इतने अच्छे ढंगसे दिखलाया गया है जिससे यह रचना स्थायी साहित्यमे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। शैलीकी दृष्टिसे इस रचनामे संस्कृत तत्सम शब्दोकी प्रधानता, गम्भीरता और अलंकारोका प्रयोग सुन्दर हुआ है। भावात्मक शैलीमें कविने अपने हृदयकी अनुभूतिको सरलरूपसे अभिव्यक्त किया है। दार्शनिकताके साथ काव्यात्मक शैलीमें सम्बद्ध और प्रवाहपूर्ण भावोकी अभिव्यंजना रोचक हुई है। चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ हृदयको स्पर्श ही नहीं करतीं, किन्तु भीतर प्रविष्ट हो जाती है। माधुर्य और प्रसाद गुणके साथ कतिपय पद्योंमें ओज-गुण भी विद्यमान है। व्रजभाषाका निखरा रूप भावोंको हृदयंगम करनेमें अत्यधिक सहायक है।

कवि चेतन राजाकी व्यवस्थाका विश्लेपण करता हुआ कहता है—

काया-सी जु नगरीमें चिदानन्द राज करै;
माया-सी जु रानी पै मगन बहु भयो है।

मोह-सो है फौलदार क्रोध-सो है कोतवार ;
लोभ-सो वर्जार जहाँ लूटिवैको रह्यो है ॥
उदैको जु काजी मानै, मानको अदल जानै ;
कामसेनाका नवीस आई वाको कह्यो है ।
ऐसी राजधानीमें अपने गुण भूलि रह्यो ;
सुधि जब आई तबै ज्ञान आय गह्यो है ॥

सुबुद्धि चेतनराजाको समझाती है—

कौन तुम, कहाँ आए कौन बौराये तुमहिं ;
काके रस राचे कछु सुधहू धरतु हो ।
कौन हैं ये कर्म जिन्हें एकमेक मानि रहे ;
अजहूँ न लागे हाथ भाँवरि भरतु हो ॥
वे दिन चितारो जहाँ बीते हैं अनादि काल ;
कैसे कैसे संकट सहे हू विसरतु हो ।
तुम तो सयाने पै सयान यह कौन कीन्हों ;
तीन लोक नाथ ह्वै के दीन से फिरतु हो ॥
सुनो जो सयाने नाहु देखो नेकु टोटा लाहु ;
कौन विवसाहु जाहि ऐसी लीजियतु है ।
दस द्यौस विषै सुख ताको कहो केतो दुख ;
परिकैं नरक मुख कौलों सीजियतु है ।
केतो काल बीत गयो, मनहू न छोर लोय ;
कहूँ तोहि कहा भयो ऐसो रीझियतु है ।
आपु ही विचार देखो, कहिबे को कौन लेखो ;
आवत परेखो तातैं कह्यो कीजियतु है ॥

इसमे पाँचों इन्द्रियोंका सुन्दर सवाद भैया भगवतीदास-द्वारा वर्णित

है। बताया गया है कि एक सुरम्य उद्यानमें एक दिन एक मुनिराज

पञ्चेन्द्रिय-संवाद

धर्मोपदेश दे रहे थे। उनकी धर्मदेशनाका श्रवण करनेके लिए अनेक व्यक्ति एकत्रित थे। सभामे नाना प्रकारकी शकाएँ की जाने लगी। एक व्यक्तिने मुनिराजसे पूछा—"प्रभो! पञ्चेन्द्रियोंके विषय सुखकर है या दुखकर।"

मुनिराज—"ये पञ्चेन्द्रियॉ बड़ी दुष्ट हैं, इनका जितना ही पोषण किया जाता है, दुःख देती हैं।"

एक विद्याधर बीचमे ही इन्द्रियोका पक्ष लेकर बोला—"महाराज इन्द्रियॉ दुष्ट नही है। इनकी बात इन्हींके मुखसे सुनिये, ये प्राणियोंको कितना सुख देती हैं।"

मुनिराज—"इन्द्रियॉ मेरे सामने प्रस्तुत हैं। मै आज्ञा देता हूँ कि जो इनमे प्रधान हो, वह अपनी महत्ता बतलाये।"

मुनिराजके इन वचनोको सुनकर सबसे पहले नाक अपनेको बड़ा सिद्ध करती हुई बोली—"मेरे समान महान् ससारमे कौन है? नाकके लिए राजा-महाराजा, गरीब-अमीर सभी कष्ट सहन करते हैं। नाक रखनेके लिए ही तो बाहुबलीने दीक्षा धारण की, रामने वन-वन भ्रमण किया, सती सीताने अग्निमे प्रवेश किया, द्रौपदी सोमा आदिने अनेक कष्ट सहन किये और कितने ही साधु बनकर दर-दरके भिखारी बने। मेरी महत्ताका पता इतनेसे ही लगाया जा सकता है कि नाककी रक्षाके लिए कोई भी व्यक्ति अपना सर्वस्व छोड़नेको तैयार हो जाता है।"

नाककी इस आत्मप्रशसाको सुनकर कान कहता है—"री मूर्खा! तुझे घमण्ड हो गया है, तेरे दर्पको मैं चूर कर दूँगा। तू कितनी घिनावनी है, दिनरात तुझमेंसे पानी गिरता रहता है। छींक किसी भी इष्ट काममे बाधक हो जाती है। तू गन्दगीका भाण्डार है। देख मेरी ओर, मैं कितना भाग्यशाली हूँ। अच्छे-अच्छे मधुर शब्द श्रवण कर कविता रचनेकी प्रेरणा मैं ही देता हूँ। धर्मोपदेश सुननेका काम भी

मेरा ही है, यदि मैं उपदेश न सुनूँ तो यह जीव कभी भी मोक्ष प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं कर सकता है। द्वादशांग वाणीका श्रवण मैं ही करता हूँ, मेरी ही प्रेरणाको प्राप्त कर जीव आत्म-कल्याण करनेके लिए तैयार होता है।"

कानकी इन अहम्मन्यतापूर्ण बातोंको सुनकर आँख बोली—"तुझे झूठी बड़ाई करते हुए लज्जा नहीं आई, झूठ बोलना पाप है। तुम नहीं जानते कि तुम्हारे द्वारा ही अश्लील और गन्दी बातें सुनकर राग-द्वेष उत्पन्न होता है। तुम्हारे द्वारा सुनी गई बातें झूठी भी हो सकती हैं; कितने ही व्यक्ति इन झूठी बातोंके कारण आपसमें कलह करते हैं, लड़ते हैं तथा कितने ही लड़-झगड़कर मृत्युको भी प्राप्त हो जाते हैं। मुझसे बड़े तुम कभी नहीं हो सकते। मेरे द्वारा देखी गयी बात कभी भी झूठी नहीं हो सकती है। सुन्दर और मनोरंजक दृश्योंका अवलोकन मैं ही करती हूँ। मेरे द्वारा ही तुम तीर्थंकरोंके मनोहर रूपको देख सकते हो, मेरे द्वारा ही साधु-सन्तोंके दर्शन हो सकते हैं। यदि मैं न रहूँ तो संसारका काम चलना बन्द हो जाय। शरीरमें सबसे प्रधानता मेरी ही है। सिद्धान्त-ग्रन्थोंका अध्ययन मुझसे देखे बिना कोई कैसे कर सकेगा? रास्ता चलना, देना-लेना, पुण्य कार्य करना मेरी ही कृपाका फल है। मेरे रहनेपर ही भाई-बन्धु इज्जत करते हैं। एक ही क्षणमें मैं क्यासे क्या बना देती हूँ।"

आँखकी इस आत्मश्लाघाको सुनकर रसना बोली—"अरी! तुझे काजलसे रँगकर भी लज्जा नहीं आती। तेरी ही कृपाका यह फल है कि सुन्दरी रमणियाँ अपने अद्भुत सलोने रूप-द्वारा साधु-मुनियोंको भ्रष्ट कर देती हैं। तुझसे अधिक तो मेरा ही प्रभाव है, अतः मैं तुझसे बड़ी हूँ। क्या तू नहीं जानती कि मैं ही षट्रस व्यंजनोंका स्वाद लेती हूँ। मेरे बिना शरीर पुष्ट नहीं रहेगा, परिणाम यह होगा कि न कान सुन सकेगा, न आँख देख सकेगी और न नाक सूँघ सकेगी। स्वाद लेनेके अतिरिक्त

मन्त्रसिद्धि और साहित्यके रसका आस्वादन मैं ही करती हूँ। मुझमे इतनी प्रबल शक्ति है कि मै शत्रुको मित्र बना सकती हूँ। बड़े-बड़े मुनिराज और धर्मोपदेशक मेरे द्वारा ही धर्मका वर्णन करते हैं। स्वर्ग, नरक और मोक्षकी चर्चा मेरे द्वारा ही होती है।"

बीचमें बात काटकर स्पर्शनेन्द्रिय बोल उठी—"अरी जिह्वा! व्यर्थ अभिमान मत कर। तेरी ही कृपासे आपसमें युद्ध होता है, तू ही राजा-महाराजो-द्वारा खून-खराबी कराती है। अभक्ष्य-भक्षण करना भी तेरा ही काम है। मै अपने सम्बन्धमे अधिक क्या कहूँ—नाक, कान, आँख सभी तो मेरे पाँवो पड़ते है, तुम सभी इन्द्रियाँ मेरी दासी हो। मेरे सामने तुमने व्यर्थमें झूठी बडाई कर पाप अर्जन किया है। मेरी महत्ता यही है कि मेरे बिना जप, तप, दान, पुण्य आदि कोई भी कार्य नहीं हो सकता है। हाथोसे दान दिया जाता है, पाँवोसे तीर्थयात्रा की जाती है और मेरे ही द्वारा ससारके विषयोका अनुभव किया जाता है। जानती हो मेरे बिना क्रिया नहीं और क्रियाके बिना सुख नहीं, अतः मै सब इन्द्रियोंमें प्रधान हूँ।"

इसी बीचमे मन बोल उठा—"अरी मूर्खा, तुम क्या अनाप-सनाप बकती हो। तुम्हारे समान धूर्त कोई भी नहीं है। रमणियोके प्रेमालिंगन से तुम्हीं जीवको बाँधती हो, तपस्यासे विचलित करना तुम्हारा ही काम है। अतः तुमसे बड़ा और प्रधान मै हूँ। मेरे शुद्ध रहने पर ही सब कुछ शुद्ध रह सकता है। मै ही दया, ममता आदिको करता हूँ, जितने भी विकार है, मुझमें ही उत्पन्न होते है। इन्द्रियोका सचालन मेरे ही द्वारा होता है। अतः मैं सबका राजा हूँ और इन्द्रियाँ मेरी दासी हैं। मेरी प्रेरणाके बिना एक भी इन्द्रिय अपना कार्य नहीं कर सकती है। जीवके समस्त कार्योंका सचालन मेरे ही हाथमे है।"

इसी बीच मुनिराज हँसते हुए कहने लगे—"अरे मूर्ख मन, तू क्यो गर्व करता है। जीवके पापोंकी अनुमोदना तुम्हारे ही द्वारा होती है।

इन्द्रियॉ स्थिर भी रहती हैं, किन्तु तुम सदा बन्दरके समान चंचल रहते हो। कर्मबन्धनका कारण रे मन, तू ही है। विषयोंकी ओर दौड़ना तेरा सहज स्वभाव है।"

मुनिराजकी इन बातोंको सुनकर नमस्कार करता हुआ मन कहने लगा:—"प्रभो ! मै अपना दोष समझ गया। आप कृपाकर मुझे यह बतलाइये कि परमात्मा कौन है और सुख किस प्रकार उपलब्ध होता है।"

मुनिराज—"राग-द्वेषके दूर हो जानेपर यह आत्मा ही परमात्मा बन जाती है। परमात्मा दो प्रकारके हैं—सकल और निकल। परमात्माके ये भेद राग-द्वेषके अभावकी तारतम्यताके कारण है। यद्यपि किसी भी परमात्मामे राग-द्वेष बिल्कुल नहीं रहता, परन्तु जर्जरित सस्कार और वासनाएँ इस जीवके साथ लगी रह जाती हैं, जिससे निकल परमात्मा शरीर के बन्धनको छोड़नेके उपरान्त ही यह जीव बन पाता है।"

इस पञ्चेन्द्रिय सवादमे इन्द्रियोंके उत्तर-प्रत्युत्तर बड़े ही सरस और स्वाभाविक हैं। कविने प्रत्येक इन्द्रियका उत्तर इतने प्रभावक ढगसे दिखाया है, जिससे पाठक प्रभावित हुए विना नहीं रह सकता। सर्व प्रथम अपने पक्षको स्थापित करती हुई नाक कहती है—

नाक कहै प्रभु मैं बडी, और न बडो कहाय।
नाक रहै पत लोकमें, नाक गए पत जाय॥
प्रथम वदन पर देखिए, नाक नवल आकार।
सुन्दर महा सुहावनी, मोहित लोक अपार॥
सुख विलसै संसारका, सो सब मुझ परसाद।
नाना वृक्ष सुगन्धि को, नाक करै आस्वाद॥

नाकके पक्षको सुनकर कानका उत्तर—

कान कहै री नाक सुन, तू कहा करै गुमान।
जो चाकर आगे चलै, तो नहिं भूप समान॥

नाक सुरनि पानी झरै, बहै श्लेषम अपार।
गूँधनि करि पूरित रहै, लाजै नहीं गँवार॥
तेरी छींक सुनै जिते, करै न उत्तम काज।
मूदै तुह दुर्गन्धमें, तऊ न आवै लाज॥
वृषभ ऊँ नारी निरख, और जीव जग माँहिं।
जित तित तोको छेदिये, तोऊ लजानो नाहिं॥

× × ×

कानन कुण्डल झलकता, मणि मुक्ताफल सार।
जगमग जगमग ह्वै रहै, देखै सब संसार॥
सातों सुरको गाइबो, अद्भुत सुखमय स्वाद।
इन कानन कर परखिये, मीठे मीठे नाद॥
कानन सरभर को करै, कान बड़े सरदार।
छहों द्रव्य के गुण सुनै, जानै सवद विचार॥

यह एक सरस आध्यात्मिक रूपक काव्य है। इसका सृजन कवि भगवतीदासने मानवात्माकी उस चिरन्तन पुकारको लेकर किया है, जो मानव-मनमें अनादि कालसे व्याप्त जड़ीभूत अन्ध तमिस्रा-पुञ्जका विदारण कर चिर-अमर आनन्द-भासके अन्वेषणकी आकांक्षासे व्याप्त है। कविने रूपकात्मक कथानकमें अपने अन्तःप्राणोंका स्पन्दन भर कर शाश्वत वास्तविकताका अक्षम स्वरूप कलात्मक रूपसे प्रस्फुटित किया है। इसके मर्ममें निहित चिरन्तन सत्य सदा सूर्यकी तरह प्रोज्ज्वल रहेगा, युग या समय-विशेषका प्रकोप श्रावणके मेघोंके समान इसके उज्ज्वल स्वरूपको क्षणभरके लिए भले ही अन्धकार-मय बना दे, परन्तु इसका दिव्य सन्देश सदा ही मानवताका पाठ पढ़ाता रहेगा। कविने अतीन्द्रिय आनन्दका निरूपण करते हुए नाना मनोद्वेग एवं मायामय दृश्यपटोंका विवेचन बड़े ही हृदय-ग्राह्य ढंगसे किया है।

मधुबिन्दुक चौपाई

प्रलोभन इस मानवको मानवतासे किस प्रकार दूर कर देते हैं तथा जीवन-क्षितिज इन प्रलोभनोंसे कितना धूमिल हो जाता है, आदिका सूक्ष्म विश्लेपण इस लघुकाय काव्यमें विद्यमान है। कञ्चन और कामिनीका प्रलोभन ही प्रधान है, इसीके अधीन होकर मानव नाना प्रताडनाओ, वेदनाओं और उद्वेलनोका सन्दोह अपनेमें समेटे अखण्ड ऐश्वर्य-सम्भोगके अप्रतिहत आत्मोल्लासमे रत रहता है। परन्तु इस अपरिमित सुख-भाण्डारमें भी आकाक्षाओंकी अतृप्ति रहनेसे वेदनाजन्य अनुभूति वर्त्तमान रहती है। कविने अपनी भावुकता और कलात्मकताका आश्रय लेकर इस रूपकमे उपर्युक्त तथ्यकी सुन्दर विवेचना की है।

कविने मधुबिन्दुकका रूपक देते हुए बताया है कि एक दिन एक मुनिराज पूछे गये प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए कथा कहने लगे—"एक पुरुष वनमे जाते हुए रास्ता भूलकर इधर-उधर भटकने लगा। जिस अरण्यमे वह पहुँच गया था, वह अरण्य अत्यन्त भयकर था। उसमे सिंह और मदोन्मत्त गजोंकी गर्जनाएँ सुनाई पड़ रही थी। वह भयाक्रान्त होकर इधर-उधर छिपनेका प्रयास करने लगा, इतनेमे एक पागल हाथी उसे पकड़नेके लिए दौड़ा। हाथीको अपनी ओर आते हुए देखकर वह व्यक्ति भागा। वह जितनी तेजीसे भागता जाता था, हाथी भी उतनी ही तेजीसे उसका पीछा कर रहा था। जब उसने इस प्रकार जान बचते न देखी तो वह एक वृक्षकी शाखासे लटक गया, इस वृक्षकी शाखाके नीचे एक बड़ा अन्धकूप था तथा उसके ऊपर एक मधुमक्खीका छत्ता लगा हुआ था। हाथी भी दौड़ता हुआ उसके पास आया, पर शाखासे लटक जानेके कारण, वह उस पेड़के तनेको सूँड़से पकड़कर हिलाने लगा। वृक्षके हिलनेसे मधुछत्तेसे एक-एक बून्द मधु गिरने लगा और वह पुरुष उस मधुका आस्वादन कर अपनेको सुखी समझने लगा।

नीचेके अन्धकूपमे चारो किनारोपर चार अजगर मुँह फैलाये हुए बैठे थे तथा जिस शाखाको वह पकड़े था, उसे काले और सफेद रङ्गके

वटकी जटा लटकि जो रही। सो आयुर्दा जिनवर कही॥
तिहँ जर काटत मूसा दोय। दिन अरु रैन लखहु तुम सोय॥
माँखी चूँटत ताहि शरीर। सो वहु रोगादिक की पीर॥
अजगर पर्यो कूपके वीच। सो निगोद सवतैं गति वीच॥
याकी कछु मरजादा नाहिं। काल अनादि रहै इह माहिं॥
तातैं भिन्न कही इहि ठौर। चहुँगति महितैं भिन्न न और॥
चहुँदिश चारहु महाभुजंग। सो गति चार कही सरवंग॥
मधुकी वून्द विषै सुख जान। जिहँ सुख काज रह्यौ हितमान।
ज्यों नर त्यों विषयाश्रित जीव। इह विधि संकट सहै सदीव॥
विद्याधर तहँ सुगुरु समान। दै उपदेश सुनावत ज्ञान॥

कविने इस रूपक द्वारा विषय-सुख और सारहीनताका सुन्दर विश्लेषण किया है। तथा मिथ्यात्व, अविरति आदिको त्यागकर सम्यक् श्रद्धालु और सम्यक् ज्ञानी वननेके लिए ज़ोर दिया है।

स्वप्नबत्तीसी, मिथ्यात्वचतुर्दशी आदि और भी कई रचनाएँ आध्यात्मिक रूपक काव्यके अन्तर्गत आती हैं। जैन रूपक काव्यकी परम्परा बहुत दिनोंतक चलती रही।

हिन्दी साहित्यमें जायसीके पद्मावतके पश्चात् रूपक साहित्यकी धारा सूखी-सी मालूम पड़ती है। यद्यपि नाट्यक्षेत्रमें भारतेन्दुका पाखण्ड-विडम्बन, प्रसादका कामना नाटक और कवि पन्तका ज्योत्स्ना रूपकके सुन्दर उदाहरण हैं, तो भी इस अंगके विकासकी अभी आवश्यकता है। काव्य साहित्यमें प्रसादकी 'कामायनी' रूपक काव्य है। भारतेन्दुने कलियुगके प्रभावसे जीवनमें सतोगुणका अभाव एवं रजोगुण-तमोगुणका प्राधान्य है, इसका चित्रण इस रूपकमें किया है। नाटककारने वताया है कि शान्ति और करुणा दो सखियाँ हैं। शान्ति अपनी प्यारी माँ श्रद्धाके वियोगमें दुःखी है। करुणा अपनी सखी शान्तिको सान्त्वना देती हुई तीर्थों,

आश्रमो, मठों, देवालयो एव मुनियोके आवासोमें श्रद्धाको ढूँढ़नेको कहती है। शान्ति सर्वत्र श्रद्धाको ढूँढती है, पर उसे सर्वत्र पाखण्ड ही दिखलायी पड़ता है। धार्मिक श्रेष्ठताका भाव केवल शब्दोमे ही है, क्रियात्मक जीवनमे प्रत्येक धर्मावलम्बी धर्मके उदात्तस्वरूपको भूलकर इन्द्रिय-सुख-लिप्सामें ही धर्म समझता है। यह नाटक ज्ञानसूर्योदय नाटककी छाया-सा प्रतीत होता है।

कवि प्रसादका कामना नाटक सास्कृतिक रूपक है। कामना मानव-मनःलोककी रानी है, वह विलासके प्रति आकृष्ट होती है, पर उसके साथ उसका विवाह नहीं होता और अन्तमे सन्तोषके साथ उसका परिणय हो जाता है। विलास कामनाको छोड़ लालसाके साथ परिणय करता है—दोनों एक दूसरेके आकर्षणपर मुग्ध हैं। विलास अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके लिए स्वर्ण और मदिराका प्रचार करता है, पश्चात् शनैः-शनैः सभ्य शासनकी दुहाई देकर सभी लोगोपर नियन्त्रण करना आरम्भ कर देता है। जब मानवता त्राहि-त्राहि करने लगती है, तो कामनाको अपनी भूल अवगत हो जाती है और वह सन्तोपको वरण करती है। सब मिलकर विलास और लालसाको उनकी समस्त स्वर्णराशिके साथ समुद्रमे विसर्जित कर देते है। वह रूपक सागोपाङ्ग है।

जैन काव्यके रूपक भी साङ्गोपाङ्ग हैं। यद्यपि कथामे मानवीय रोचकता कुछ क्षीण है, सैद्धान्तिक आधार कुछ अधिक स्पष्ट होनेके कारण मानव मनको रमानेमें कुछ असमर्थसे है; पर मानव मनको थकाते या बोझिल नहीं बनाते हैं। कवित्वका उल्लास प्रत्येक काव्यमे विद्यमान है। पात्रोका चरित्र-विलास, उनका मासल व्यक्तित्व और आकर्पक वार्तालाप इन काव्योमें प्रायः नहीं है, फिर भी विचारोंका सुन्दर सकलन हुआ है। सूक्ष्म शरीरधारी पात्रोंका अतीन्द्रिय कर्मलोक स्वभावतः मनोरञ्जक होता है। इन काव्योमें सिद्धान्त और कविता जीवनकी आधार भूमिपर सहज समन्वित है। सुनहली कल्पनाएँ वायवी वातावरणमें कविताकी रग-

विरंगी क्यारियोंमें सिद्धान्तोंकी कुसुमवाटिका आरोपित करती हैं। यह वाटिका केवल इन्द्रियोंको ही तृप्ति नहीं देती, प्रत्युत अतीन्द्रिय जगत्को भी शान्ति प्रदान करती है। जीवनके रागात्मक सम्बन्धोंसे पृथक् हो मानव आध्यात्मिक लोकमें विचरण करने लगता है। जैन कवियोंने रूपकके अमूर्त सिद्धान्तोंमें और मूर्त कथावस्तुमें समानान्तर चलनेवाली एक साम्य भावना अंकित की है। साम्य प्रायः इतना स्पष्ट और कथाका आवरण इतना झीना है कि सिद्धान्त स्वयं बोलते हुए सुनाई पड़ते हैं।

पञ्चमाध्याय

प्रकीर्णक काव्य

जीवनके सूक्ष्म व्यापक सत्योंका उद्घाटन करना, मानवके प्रकृत राग-द्वेषोंका परिमार्जन करना एव मानवकी स्वभावगत इच्छाओ, आकाक्षाओं और प्रवृत्ति-निवृत्तियोंका सामञ्जस्य करना ही जैन प्रकीर्णक काव्योका वर्ण्य विषय है। इन काव्योंमे मानवको जड़तासे चैतन्यकी ओर, शरीरसे आत्माकी ओर, रूपसे भावकी ओर बढना ही ध्येय बतलाया गया है। जीवनकी विभूति त्याग और सयम है, यह त्याग भावुकताका प्रसाद न होकर ज्ञानका परिणाम होता है। जबतक जीवनमे राग-द्वेषकी स्थिति बनी रहती है तबतक त्याग और सयमकी प्रवृत्ति आ नही सकती। राग और द्वेष ही विभिन्न आश्रय और अवलम्बन पाकर अगणित भावनाओके रूपमें परिवर्तित हो जाते है। जीवनके व्यवहार-क्षेत्रमें व्यक्तिकी विशिष्टता, समानता एव हीनताके अनुसार उक्त दोनो भावोंमें मौलिक परिवर्त्तन होता है। साधु और गुणवान्के प्रति राग सम्मान हो जाता है, यही समानके प्रति प्रेम एव हीनके प्रति करुणा बन जाता है। मानव राग भावके कारण ही अपनी अभीष्ट इच्छाओकी पूर्ति न होनेपर क्रोध करता है, अपनेको उच्च और बड़ा समझ कर दूसरोका तिरस्कार करता है, दूसरोंकी धन-सम्पत्ति एव ऐश्वर्य देखकर हृदयमे ईर्ष्याभाव उत्पन्न करता है तथा सुन्दर रमणियोके अवलोकनसे काम-तृष्णा उसके हृदयमें जाग्रत हो जाती है।

जिस प्रकार रोगकी अवस्था और उसके निदानके मालूम हो जानेपर रोगी रोगसे निवृत्ति प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है, उसी प्रकार प्रत्येक

व्यक्ति ससाररूपी रोगका निदान और उसकी अवस्थाको जानकर उससे मुक्त होनेका प्रयास कर सकता है। संसारके दुःखोंका मूल कारण राग-द्वेष है, इन्हे शास्त्रीय परिभाषामें मिथ्यात्व कहा जाता है। आत्माके अस्तित्वमें विश्वास न कर अनात्मरूप—राग-द्वेष रूप श्रद्धा करनेसे मनुष्य-को स्व-परविवेक नहीं रहता है, जड़-शरीरको आत्मा समझ लेता है तथा स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, ऐश्वर्यमें रागके कारण लिप्त हो जाता है; इन्हे अपना समझकर इनके सद्भाव और अभावमें हर्ष-विषाद उत्पन्न करता है।

आत्मविश्वासके अभावमे ज्ञान भी मिथ्या रहता है। अतएव कषाय और असंयमसे युक्त आचरण भी मिथ्याचरण कहा जाता है। अनात्म-विषयक प्रवृत्ति होनेसे इस मानवको सर्वदा कष्ट भोगना पड़ता है। इसी कारण सदाचारसे विमुख मानवको आत्मभावमें प्रतिष्ठित करना सत्सा-हित्यका ध्येय माना गया है। प्रकीर्णक काव्यके रचयिता जैन आचार्यों और कवियोने मानवका परिष्कार करनेके लिए धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक आदि आदर्शोंकी सरस विवेचना की है। उन्होंने मानवको व्यष्टिके तलसे उठाकर समष्टिके तलपर प्रतिष्ठित किया है। बहिर्जगत्के सौन्दर्यकी अपेक्षा अन्तर्जगत्के सौन्दर्यका इन्होंने प्रकीर्णक काव्योंमे विशेष निरूपण किया है। यह सौन्दर्य क्षणिक आनन्दको प्रदान करनेवाला नहीं है, अपितु मानव-हृदयकी गूढतम जटिल समस्याओंका प्रत्यक्षीकरण करनेवाला है।

जो कवि मानवके अन्तर्जगत्के रहस्यको खोलकर देखता है, उसकी मानसिक पहेलियोंको सुलझाता है, वही श्रेष्ठ कविके सिंहासनपर आरूढ़ होनेका अधिकारी है। यद्यपि कुछ आलोचक काव्यके इस उपयोगिता-वादी दृष्टिकोणको स्वीकार नहीं करते हैं तथा आचारात्मक वर्णनोंकी प्रधानता होनेसे दूसरे काव्य साहित्यसे पृथक् ही कर देना चाहते हैं; परन्तु वे सम्भवतः इसे भुला देते हैं कि जीवनमे जो प्रमुख इच्छाएँ और कामनाएँ हैं, साहित्यमे वे ही स्थायी भाव हैं। जो साहित्यकार

मानवको अनात्म-भावनाओंसे मोड़कर आत्मभावनाओंकी समचतुरस्र भूमिमें ले जाता है और वहाँ जीवनका यथार्थ परिज्ञान करा देता है, उसे स्थायी साहित्यका निर्माता माननेमें किसीको भी आपत्ति नहीं होनी चाहिये। हाँ, जहाँपर भावोंकी अप्रतिहत धारा न होकर कोरा उपदेश रहता है, वहाँ निश्चय ही काव्य निष्प्राण हो जाता है। जैन प्रकीर्णक काव्यके निर्माताओंने अपार भाव-भेदकी निधिको लेकर प्रायः श्रेष्ठ काव्य ही रचे है, जो युग-युगतक सास्कृतिक चेतना प्रदान करते रहेंगे।

काव्यके सत्य, शिवं और सुन्दर इन तीनो अवयवोंमेसे जैन प्रकीर्णक काव्योंमें शिवत्व—लोकहितकी ओर विशेष ध्यान दिया है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि सत्य और सुन्दरंकी अवहेलना की गयी है। इन काव्योंमे सौन्दर्य और सत्यकी स्वाभाविकता इतनी प्रचुरमात्रामे पायी जाती है, जिससे उदात्त भावनाओका सञ्चार हुए बिना नहीं रहता। तथ्य यह है कि लोकहितकी प्रतिष्ठाके लिए जैन प्रकीर्णक काव्य-रचयिताओंने रचना-चातुर्यके साथ मानसिक शक्तिके निमित्त सद्वृत्तियोंकी आवश्यकता अनिवार्य रूपसे प्रतिपादित की है।

कवि बनारसीदासकी सूक्तिमुक्तावली, ज्ञानपच्चीसी, अध्यात्मबत्तीसी, कर्मछत्तीसी, मोक्षपैड़ी, शिवपच्चीसी, ज्ञानबावनी; भैया भगवतीदासकी पुण्यपच्चीसिका, अक्षरबत्तीसिका, शिक्षावली, गुणमंजरी, अनादिबत्तीसिका, मनबत्तीसी, स्वप्नबत्तीसी, वैराग्यपच्चीसिका, आश्चर्यचतुर्दशी; कवि रूपचन्दका परमार्थ-शतक दोहा, कवि द्यानतरायका 'सुबोधपचासिका' धर्मपच्चीसी, व्यसन त्याग षोड़श, सुखबत्तीसी, विवेकबीसी, धर्मरहस्य-बावनी, व्यौहारपच्चीसी, सज्जनगुणदशक; कवि आनन्दघनकी आनन्द-बहत्तरी; भूधर कविका जैनशतक, बुधजन कविकी बुधजनसतसई; डालूरामका गुरूपदेश श्रावकाचार एवं दौलतराम कविकी छहढाला प्रसिद्ध प्रकीर्णक काव्य हैं। इन सभी कवियोंने आचार और नीतिकी अनेक बातें

सरस रूपमे अंकित की है। यहाँ कुछ रचनाओंके सम्बन्धमे प्रकाश डाला जायगा।

संस्कृत भाषामे कवि सोमप्रभने सूक्ति-मुक्तावलीकी रचना की है। कविवर बनारसीदासने इसका इतना सरल और सरस अनुवाद किया है कि अनुवाद होनेपर भी इस रचनामे मौलिकताका आनन्द आता है। कविने जीवनोपयोगी, आत्मोत्थानकारी बातें अद्भुत ढगसे उपस्थित की हैं। मूर्ख मनुष्य इस मानव जीवनको किस प्रकार व्यर्थ खोता है, इसका निरूपण करता हुआ कवि कहता है कि जैसे विवेकहीन मूर्ख व्यक्ति हाथीको सजाकर उसपर ईंधन ढोता है, सोनेके पात्रमे धूल भरता है, अमृतसे पैर धोता है, कौएको उड़ानेके लिए रत्न फेंककर रोता है, उसी प्रकार वह इस दुर्लभ मानव शरीरको पाकर आत्मोद्धारके बिना योंही खो देता है। कविका निरूपण जितना प्रभावोत्पादक है, उतना ही मर्मस्पर्शी भी है। कवि कहता है—

सूक्ति-मुक्तावली

ज्यौं मति हीन विवेक विना नर, साजि मतङ्गज ईंधन ढोवै।
कंचन भाजन धूल भरै शठ, मूढ सुधारस सौं पग धोवै॥
बाहित काग उड़ावन कारण, डार उदधि मणि मूरख रोवै।
त्यौं यह दुर्लभ देह 'बनारसि' पाय अजान अकारथ खोवै॥

लक्ष्मी कितनी चचल होती है और यह कितने तरहकी विलास-लीलाएँ करती है, इसका चित्रण करता हुआ कवि कहता है कि वह सरिताके जल-प्रवाहके समान नीचकी ओर ढलती है, निद्राके समान बेहोशी बढ़ाती है, बिजलीकी तरह चचल है तथा धुँएके समान मनुष्यको अन्धा बनाती है। यह तृष्णा अग्निको उसी तरह बढ़ाती है जैसे मदिरा मत्तताको। वेश्या जिस तरह कुरूप-सुरूप, शूद्र-ब्राह्मण, ऊँच-नीच, विद्वान्-मूर्ख, आदिसे दिखावटी स्नेह करती है, उसी प्रकार यह भी सभीसे कृत्रिम प्रेम करती है। वेश्याके समान ही विश्वघातिनी और नाना दुर्गुणोंकी खान है। कवि इसी आशयको स्पष्ट करता हुआ कहता है—

नीच की ओर ढरै सरिता जिमि, घूम बढावत नींदकी नाईं।
चंचलता ह्वै प्रगटै चपला जिमि, अन्ध करै जिम धूमकी झाँईं॥
तेज करै तिसना दव ज्यो मद, ज्यो मद पोषित मूढके ताईं।
ये करतूत करै कमला जग, डोलत ज्यों कुलटा बिन साईं॥

समस्त दोषोको उत्पन्न करनेवाला अहंकार विकार है। इस 'अहं' प्रवृत्तिके आधीन होकर मनुष्य दूसरोंकी अवहेलना करता है। अपनेको बड़ा और अन्यको तुच्छ या लघु समझता है। अतएव समस्त दोष इस एक ही दुष्प्रवृत्तिमें निवास करते हैं। कवि कहता है कि इस अभिमानसे ही विपत्तिकी सरिता कल-कल ध्वनि करती हुई चारो ओर प्रवाहित हो रही है। इस नदीकी धारा इतनी प्रखर है, जिससे यह एक भी गुणग्रामको अपने पूरमे वहाये विना नहीं छोड़ती। अतएव यह 'अहभाव' एक विशाल पर्वतके तुल्य है, कुबुद्धि और माया इसकी गुफाऍ है, हिंसक बुद्धि धूम-रेखाके समान और क्रोध दावानलके समान है। कवि कहता है—

जातैं निकस विपति सरिता सब, जगमें फैल रही चहुँ ओर।
जाके ढिग गुणग्राम नाम नहिं; माया कुमतिगुफा अति घोर॥
जहँ वधबुद्धि धूमरेखा सम; उदित कोप दावानल जोर।
सो अभिमान पहार पढंतर, तजत ताहि सर्वज्ञ किशोर॥

इस काव्यमे जीवनोपयोगी अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरि-ग्रह एव सयमकी विवेचनाके साथ क्रोध, मोह, लोभ, अभिमान, काम, ईर्ष्या, घृणा आदि विकारोंकी आलोचना की गयी है। भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियोसे रचना उपादेय है।

मानवके शान्त गम्भीर हृदयको अज्ञान सर्वदा वेदनामय बनाता रहा है। ज्ञानका जो अश शिवत्वका उद्घाटन करता है, उसके तिरोहित या आच्छादित हो जानेसे मानवका मानवत्व ही लुप्त हो जाता है। कविने इस रचनामें ज्ञानकी महिमा का मनोहर वर्णन किया है तथा कवि मानव-हृदयके अन्तरतमको टटो-

ज्ञानबावनी

रता हुआ प्रभावोत्पादक शैलीमें मर्मोद्गार व्यक्त करता हुआ पाखण्डियों-को फटकारता है कि रे मूर्ख प्राणी ! तू क्यों दीन पशुओंका वध करता है। हृदयमें ज्ञान-ज्योतिके जागृत हुए बिना तुम यज्ञ करनेके अधिकारी नहीं। सच्चा यज्ञ वही व्यक्ति कर सकता है जो आत्मज्ञानके दीपकको प्रज्वलित कर सकेगा। जो व्यक्ति नाना तीर्थों और अनेक सरिताओंमें अबोधपूर्वक स्नान करता है, उसका वह स्नान व्यर्थ है। निर्मल आत्म-जलमें स्नान किये बिना तीर्थस्नान कोरा आडम्बर है। सच्चा आत्मबोध ही शान्ति दे सकता है, इसीसे आत्मदर्शन सम्भव है। ज्ञानी व्यक्ति विपत्ति और सकटके समय अचल, अडिग और स्थिर रहता है। संसार-का कोई भी प्रलोभन उसे अपने कर्त्तव्य-मार्गसे च्युत नहीं कर सकता है। सुख-दुःख तो संसारमें पुण्य-पापके उदयसे अहर्निश आते रहते हैं। विचारों और भावनाओंमें सन्तुलन उत्पन्न करना तथा अन्तस्में ज्ञानदीपको प्रकाशित कर अनात्म-भावनाओंके तिमिरको विच्छिन्न करना प्रत्येक विचारवान् व्यक्तिका कर्त्तव्य है। कवि बनारसीदास इसी भावना-को व्यक्त करते हुए कहते हैं—

> कौन काज मुगध करत वध दीन पशु,
> जागी न अगम ज्योति कैसो यज्ञ करिहै।
> कौन काज सरिता समुद्र सर जल डोहै,
> आतम अमल डोह्यो अजहूँ न डरिहै॥
> काहे परिणाम संक्लेश रूप करै जीव,
> पुण्य पाप भेद किए कहुँ न उधरिहै।
> 'बनारसीदास' निज उकत अमृत रस,
> सोई ज्ञान सुनै तू अनन्त भव तरिहै॥

आत्मज्ञानीकी अवस्था, कार्य-पद्धति एवं जीवनकी गतिविधिका निरूपण करते हुए कवि कहता है कि जिस व्यक्तिको सच्चा आत्मबोध प्राप्त

हो गया है, वह अपनी सीमाका उल्लघन नहीं करता है। जिस प्रकार वर्षा ऋतुमे सरिताओंमे बाढ आ जाती है और उसमे तृण, काष्ठ आदि वस्तुएँ वह जाती है, किन्तु चित्रावेल इस बाढ़मे बह जानेपर भी सड़ती-गलती नहीं है और न वह गली-गली मारी-मारी फिरती ही है, इसी प्रकार पाँचों इन्द्रियोके प्रपचमे पडकर भी आत्मज्ञानी विलाससे पृथक् रहता है, इन्द्रियाँ उसे आसक्त नहीं कर पाती हैं। लोभ, मोह आदि विकारोसे वह अपनी रक्षा कर लेता है—

ऋतु बरसात नदी नाले सर जोर चढ़े,
बाढ़ै नाहिं मरजाद सागरके फैल की।
नीरके प्रवाह तृण काठवृन्द बहे जात,
चित्राबेल आइ चढै नाही कहू गैल की॥
'बनारसीदास' ऐसे पंचनके परपंच,
रंचक न संक आवै वीर बुद्धि छैल की।
कुछ न अनीत न क्यों प्रीति पर गुण सेती,
ऐसी रीति विपरीति अध्यातम शैल की॥

इस रचनामे कुल ५२ पद्य हैं, सभी आत्मबोध जागृत करनेमे सहायक है।

भैया भगवतीदासको जीवनकी नश्वरता और अपूर्णताकी गम्भीर अनुभूति है। इसी कारण विश्व और विश्वके द्वन्द्वोंका चिन्तन, मनन और विश्लेषण इनकी कवितामे विद्यमान है। काल्पनिक और वास्तविक जीवनकी गहन व्याख्या करते हुए आत्मतत्त्वका विवेचन किया है। कविने इस प्रस्तुत रचनामें अपने आभ्यन्तरिक सत्यको देखने और दिखलानेका प्रयास किया है। कविका अनुभूतिका स्रोत आत्मदर्शनसे प्रवाहित है। वह जीवनकी समस्त समस्याओंका एकमात्र समाधान साधना या सयमको बतलाता है। जब-

अनित्यपच्चीसिका

तक विश्वके पदार्थोंमें आसक्ति रहेगी, संयमकी भावना उत्पन्न नहीं हो सकती। इसी कारण कलाकार जगत्‌के वास्तविक क्षणभंगुर रूपको व्यक्त करता हुआ संसारकी स्वार्थ-परता, उसके रागात्मक घिनौने सम्बन्ध, एवं अन्तर्जगत्‌की विभिन्न अवास्तविकताओंका प्रत्यक्षीकरण करता है, क्षणभंगुर शरीरसे अमर आत्माकी ओर अग्रसर होता है तथा मूर्त जीवनमें अमूर्तका एवं स्थूल रूपमें सूक्ष्म रूपका सामीप्य लाभ करनेको उत्सुक है। अनित्य-पच्चीसिकामें बाह्यचित्रणमें इतनी प्रगल्भता नहीं दिखलायी गयी है, जितनी अन्तर्जगत्‌के चित्रणमें। विश्वके अतिरंजित चित्र कविको मोहित नहीं कर सके हैं, अतः वह संसारकी अस्थिरता, अनित्यता एवं निस्सारताका विवेचन करता है। कविकी यह विशेषता है कि उसने निराशाकी भावना कहीं भी व्यक्त नहीं होने दी है। जीवनमें आशा, स्फूर्ति, प्रेम, सन्तोष, विवेक आदि गुणोंको उतारनेके लिए जोर दिया है।

कवि कहता है कि इस दुर्लभ मानव शरीरको प्राप्तकर यदि हमने अपने अन्तस्‌का आलोडन नहीं किया, अपने रहन-सहन, खान-पानकी शुद्धिपर जोर नहीं दिया, क्रोध-मान-माया-लोभ जैसे विकारोंको अपने हृदयसे निकाल बाहर नहीं किया एवं इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त हो नाना प्रकारके कुकृत्य करना नहीं छोड़ा तो फिर इस शरीरका प्राप्त करना निरर्थक है। जीवनमें अपरिमित आनन्द है, अनन्त सुख है, किन्तु इसकी प्राप्ति सच्चे आत्म-बोधके बिना नहीं हो सकती है। हमारे जितने भी रागात्मक सम्बन्ध हैं, वे सब स्वार्थपर आश्रित हैं। हम इन रागात्मक सम्बन्धोंसे ऊपर उठनेपर ही वास्तविक सुख पा सकते हैं। मानव जीवन वास्तविक आत्मदर्शन करनेके लिए मिला है, अतएव इसका सदुपयोग करना प्रत्येक व्यक्तिका कर्त्तव्य है। इस भौतिक जगत्‌में दुःखका मूल कारण अनात्म-भाव ही है। कवि कहता है—

> नर देह पाये कहा, पंडित कहाये कहा,
> तीरथके न्हाये कहा तरि तो न जैहै रे।

लच्छिके कमाये कहा, अच्छके अघाये कहा,
छत्रके धराये कहा छीनता न गैहै रे॥
देसके डुँगाये कहा, भेषके बनाये कहा,
जोबनके आये कहा, जराहू न खैहै रे।
भ्रमको विलास कहा, दुर्जनमें वास कहा,
आतम प्रकास बिन पीछैं पछितैहै रे।

इस रचनामें कुल २६ पद्य हैं, कविने इनमें भक्तिके उज्ज्वल प्रकाश-को अंकित करनेके साथ अतीत और वर्तमानका समन्वय भी करनेका आयास किया है।

उपदेशशतक

कवि द्यानतरायने १२१ पद्योंमें यह मनभावन रचना लिखी है। कविने आत्मसौन्दर्यका अनुभव कर उसे संसारके सामने इस ढंगसे रखा है, जिससे वास्तविक आन्तरिक सौन्दर्यका परिज्ञान सहजमें हो जाता है। यह कृति मानव-हृदयको स्वार्थ सम्बन्धोंकी संकीर्णतासे ऊपर उठाकर लोक-कल्याणकी भावभूमिपर ले जाती है, जिससे मनोविकारोंका परिष्कार हो जाता है। अनेक विकारोंका विश्लेषण करनेके कारण कविकी बहुदर्शिता प्रकट होती है। मानव-हृदयके रहस्योंमें प्रवेश करनेकी अतुल क्षमता विद्यमान है। आरम्भमें इष्टदेवको नमस्कार करनेके उपरान्त भक्ति और स्तुतिकी आवश्यकता, मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी महिमा, गृहवासका दुःख, इन्द्रियोंकी दासता, नरक-निगोदके दुःख, पुण्य-पापकी महत्ता, धर्मका महत्त्व, ज्ञानी-अज्ञानीका चिन्तन, आत्मानुभूतिकी विशेषता, शुद्ध आत्मस्वरूप, नवतत्त्वस्वरूप, आदिका सरस विवेचन विद्यमान है। कविने भवसागरसे पार उतरनेका कितना सुन्दर उपाय बतलाया है—

सोचत जात सबै दिनरात, कछु न बसात कहा करिये जी।
सोच निवार निजातम धारहु, राग विरोध सबै हरिये जी॥

यौं कहिये जु कहा लहिये, सु वहै कहिये करुना धरिये जी।
पावत मोख मिटावत दोष, सु यौं भवसागरकौं तरिये जी॥

ससारमे सुख और शान्ति समताके द्वारा ही स्थापित हो सकती है। जबतक तृष्णा और लालसा लगी रहती है, तबतक शान्ति उपलब्ध नहीं हो सकती। शाश्वतिक शान्ति सन्तोषके बिना नहीं मिल सकती है। जब-तक हमारी प्रवृत्तियाँ बहिर्मुखी रहती है, तबतक आध्यात्मिक प्रभातका उदय नहीं हो सकता। इस आध्यात्मिक समरसताके विवेचनमे कवि प्रत्यक्ष जीवनमे निराश दृष्टिगोचर नहीं होता है, किन्तु आशाकी नवीन राशियाँ उसके मानस क्षितिजपर उदय हो रही है। कवि चरम सत्यमें विश्वास करता हुआ कह उठता है—

काहे कौं सोच करै मन मूरख, सोच करै कछु हाथ न ऐहै।
पूरब कर्म सुभासुभ संचित, सो निहचैं अपनो रस दैहै॥
ताहि निबारनको बलवंत, तिहूँ जगमाहिं न कोउ लसैहै।
तातैं हि सोच तजौ समता गहि, ज्यौं सुख होइ जिनंद कहैहै॥

समदृष्टि अपने आत्मरूपका अनुभव करता है, उसे अपने अन्तस्की यह छवि मुग्ध और अतुलनीय प्रतीत होती है। उसकी यह प्रेयसी अत्यन्त ज्योतिर्मय है, इसके भ्रूसकेतमात्रसे पकज खिलते है, तृण-तरुपात सिहर उठते है, हरित दूर्वादल लहराने लगते हैं और नवीन उमगे, नयी भाव-नाएँ उत्पन्न हो आनन्द-विभोर कर देती हैं। कवि इस अनुपम सुन्दरीकी कल्पनासे ही सिहर जाता है और कह उठता है—

केवलग्यानमई परमातम, सिद्धसरूप लसै सिव ठाहीं।
व्यापकरूप अखंड प्रदेश, लसै जगमैं जगसौ वह नाहीं॥
चेतन अंक लियैं चिनमूरति, ध्यान धरौ तिसकौ निजमाहीं।
राग विरोध निरोध सदा, जिम होइ वही तजिकै विधि छाहीं॥

इस रचनामे कवि द्यानतरायने दानका महत्त्व, आदर्श, उपयोगिता एवं सहकारिताकी भावनाका अकन किया है। कविने कोमल, कमनीय कल्पनाओका सृजनकर जीवनकी विषमताओंका समाधान करनेका आयास नहीं किया है, प्रत्युत

दानबावनी

जीवनकी ठोस भावभूमिमें उतरकर प्रकृत राग-द्वेषोंके परिमार्जनका विधान बताया है। अनन्त आकाक्षाएँ दान, त्याग, सन्तोषके अभावमे वृद्धिंगत होती हुई जीवनको दुखमय बना देती है। कविने अपने अन्तस्मे इस बातका अनुभव किया कि यह मानव जीवन बड़ी कठिनाईसे प्राप्त हुआ है, इसे प्राप्तकर यों ही व्यतीत करना मूर्खता है, अतः 'सर्वजनहिताय'की प्रेरणासे प्रेरित होकर कवि यह कहता है—

> मौन कहा जहाँ साध न आवत, पावन सो भुवि तीरथ होई।
> पाय प्रछालकैं काय लगायकैं, देहकी सर्व विथा नहिं खोई॥
> दान कर्यो नहिं पेट भर्यौ बहु, साधकी आवन वार न जोई।
> मानुष जोनिकौं पायकैं मूरख, कामकी बात करो नहिं कोई॥

मानवकी तृष्णा प्रज्वलित अग्निमें डाले गये ईंधनकी तरह वैभव-विभूतिके प्राप्त होनेपर उत्तरोत्तर वृद्धिंगत ही होती जाती है। जिन बाह्य-पदार्थोंमे मानव सुख समझता है और जिनके पृथक् हो जानेसे इसे दुःख होता है, वास्तवमे वे सब पदार्थ विनाशीक हैं। लोभ और तृष्णा मानव-को अशान्ति प्रदान करती हैं, इन्हीं विकारोंके आधीन होकर मानव आत्म-सुखसे वचित रहता है। सूम व्यक्ति उपर्युक्त विकारोके आधीन होकर ही सम्पत्तिका न स्वय उपभोग करता है और न अपने परिवारको ही उपभोग करने देता है। कविने ऐसे व्यक्तिकी कौएसे तुलना करते हुए इस पामरको कौएसे भी नीच बतलाया है। कवि कहता है—

> सूमकौ जीवन है जगमें कहा, आप न खाय खवाय न जानैं।
> दर्वके बंधन माहिं बँध्यो दृढ़, दानकी बात सुनै नहिं कानैं॥

तातैं बड़ौ गुन कागमै देखियै, जात बुलायकैं भोजन ठानैं।
लोभ बुरौ सब औगुनमैं इक, ताहि तजै तिसको हम मानैं॥

दान देनेकी सार्थकताका निरूपण करता हुआ कवि कितने मर्मस्पर्शी ढंगसे कहता है—

दीनकौं दीजिये होय दया मन, मीतकौं दीजिये प्रीति बढावै।
सेवक दीजिये काम करै बहु, साहब दीजिये आदर पावै॥
शत्रुको दीजिये वैर रहै नहिं, भाटकौं दीजिये कीरति गावै।
साधकौं दीजियै मोखके कारन, 'हाथ दियौ न अकारथ जावै'॥

इसमे कविने अपनी वैयक्तिक आत्मानुभूतिको जागृत करते हुए इस मानव जीवनको सुखी बनानेवाली अनेक बातोका निरूपण किया है।

व्यौहारपचीसी

ज्ञानेन्द्रियोंके माध्यमसे मन जिन भावनाओं, सवेदनाओको ग्रहण करता है, उनका किसी न किसी प्रकारका चित्र हृदयपटलपर अवश्य अकित हो जाता है। वातावरण, परिस्थिति, सस्कार आदिकी विभिन्नताके कारण कविके हृदयपटपर अनेक वस्तुओंके विविध चित्र उतरे है; अतः उसने अपने अन्तस्मे जगत्का अनुभव जिस रूपमें किया है, उसे व्यावहारिक रूप देकर व्यञ्जित करनेका उपक्रम किया है। बाह्यजगत्मे तभी सुख-शान्ति स्थापित हो सकती है, जब मानवका हृदय स्वच्छ हो जाय। व्यक्तित्वके परिष्कारके लिए सयम, त्याग और अहिंसातत्त्वकका अपनाना प्रत्येक व्यक्तिके लिए आवश्यक है। जो व्यक्ति इष्ट-वियोग और अनिष्ट-सयोगमें घवड़ा जाता है, जीवनमे निराश हो जाता है; कविने उसके मनमे सन्ध्या समय सरिताके उस पार सुदूर आकाशके कोनेमे उठे किसी नवीन बादलमे विद्युत्की रेखाओंके समान उज्ज्वल आशाका सचार करते हुए कहा है—

पीतम मरेकौ सौच करै कहा जीव पोच,
तजे तै अनन्त भव सो कछू सुरत है।

एक आवै एक जाय ममतासौं बिललाइ,
रोज मरे देखै सुनै नैक ना झुरत है ॥
पूत सौं अधिक प्रीत वह ठानै विपरीत,
यह तौ महा अनीत जोग क्यों जुरत है।
मरनौ है सूझै नाहिं मोहकी महलमाहिं,
काल है अवैया स्वास नौबति झुरत है ॥

ज्ञानी व्यक्ति जब ज्ञानकी दिशामें बढ़ने लगता है, तो सासारिक आकर्षणके प्रतिकूल झोंके उसे अपने पथसे विचलित नहीं कर सकते। उसके हृदयमें मानव जातिका प्रेम इतना प्रबल हो जाता है, जिससे वह किसी भी व्यक्तिको दुःखी नहीं देखना चाहता है। रम्य इन्द्र-धनुषके समान ऐन्द्रियिक आकांक्षाएँ, वासनाएँ स्वार्थके स्तरसे ऊपर उठा देती हैं, जिससे सर्वप्रकारकी शान्ति उपलब्ध होती है। जिन पदार्थोंके प्रलोभनके कारण राग-बुद्धि उत्पन्न होती है, मनकी भूमिकी सुमन-जैसी कोमल भावनाएँ स्वार्थसे पंकिल होती रहती हैं; कविने उन्हीं पदार्थोंसे उत्पन्न भावनाओंका रसमयी भावतरंगोंके फुहारोंसे सिंचन करते हुए मधुर कामनाओंके साक्षात्कारका आयास किया है। सहृदय कवि लालसाकी लहरोंसे युक्त रसकी नदीके किनारे विचरण करते हुए अनुभव कर कह उठता है—

देस देस धाए गढ़ बाँके भूपती रिझाये,
थलहू खुदाए गिरि ताए पाए ना मस्यो।
सागरकौ तीर धाए मंत्रहू मसान ध्याए,
पर घर भोजन ससंक काक ज्यौं रुल्यौ ॥
बड़े नाम बड़े ठाम कुल अभिराम धाम,
तजिकैं पराये काम करे कान ना सल्यो।
तिसना तिगोड़ीनैं न छोड़ी बात भौंड़ी कोऊ,
मति हू कनौड़ी कर कौड़ी धन ना सस्यो ॥

कविने इस व्यौहारपचीसीमें जीवनको परिष्कृत करनेके साथ गर्व, ईर्ष्या, प्रमाद, क्रोध आदि विकारोंको दूर करनेके लिए जोर दिया है। कवि कहता है कि समष्टि और व्यष्टिके हितके लिए क्रोध, मान, माया और लोभ कषायोंका त्याग करना आवश्यक है। क्रोध प्रीतिका नाश करता है, मान विनयका, माया मित्रताका और लोभ सभी सद्गुणोंका नाश करता है। अतएव शान्तिसे क्रोधको, नम्रतासे अभिमानको, सरलता-से मायाको और सन्तोषसे लोभको जीतना चाहिये। मानवकी मानवता यही है कि वह अपने हृदय और मनका परिष्कारकर समाजको सब प्रकार-से सुखी रखे। जो व्यक्ति अपने ही स्वार्थोंमें रत रहता है, समाजका खयाल नहीं करता है; वह पशुसे भी नीच है। कविने इस बातको अनेक दृष्टान्तो, प्रतिदृष्टान्तों-द्वारा स्पष्ट किया है। नैतिक विधानका निरूपण करते हुए कविने उपदेशकका पद नहीं ग्रहण किया है। कविता सरस है, आचार और लोकहितका निरूपण करनेपर भी सौन्दर्यकी कमी नहीं आने पायी है।

कवि द्यानतरायकी यह सुन्दर सरस रचना है। कविने इसमें मानव जीवनको सुखी और सम्पन्न बनानेके लिए अनेक विधि-निषेधात्मक

पूरण पंचासिका

नियमोंका प्रतिपादन किया है। कवि कहता है कि यदि क्रोध करनेकी आदत पड़ गयी है तो कर्मोंके ऊपर क्रोध करना चाहिये। कर्मोंके आवरणके कारण ही यह सच्चिदा-नन्द आत्मा नाना प्रकारके कष्टोंको सहन कर रही है, अतः इस आत्मा-को स्वतन्त्र करनेके लिए कर्मोंपर क्रोध करना परम आवश्यक है। मान करना यद्यपि हानिप्रद है, परन्तु आत्मिक गुणोका मान करना श्रेष्ठ होता है। जब व्यक्तिको यह अनुभूति हो जाती है कि हमारी अपनी सम्पत्ति अपने पास है, यह ज्ञान, आनन्द रूप सम्पत्ति भौतिक सम्पत्तिकी अपेक्षा श्रेष्ठतम है, उस समय आत्मामे हर्ष और गौरवकी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं तथा आत्मविकासकी प्रेरणा मिलती है। इसी प्रकार माया

संसारके पदार्थोंमे लिप्त कराती है, परन्तु दूसरेके दुःखको देखकर द्रवीभूत हो जाना और ममतावश उसके कष्ट-निवारणके लिए तत्पर हो जाना जीवनकी श्रेष्ठ प्रवृत्ति है। अन्यके संकटको दूर करनेवाली ममता जीवनमें सुख उत्पन्न करती है, अतएव ग्राह्य है।

लोभवश किसी वस्तुको लेनेकी प्रवृत्ति करना तथा धन एकत्रित करनेके लिए समाजका शोषण करना, जघन्य प्रवृत्ति है। यद्यपि लोभके प्रत्यक्ष दोषोसे प्रत्येक व्यक्ति परिचित है, किन्तु यह नैसर्गिक प्रवृत्ति अनेक प्रयत्न करनेपर भी नहीं छूटती है। अतएव कवि कहता है कि तप करनेका लोभ उपादेय है, इस प्रवृत्तिसे जीवका सच्चा विकास होता है, और समष्टि एवं व्यष्टि दोनोके हितके लिए इस प्रकारका लोभ ग्राह्य होता है। जब हम आत्म-शोधनके लिए लालायित रहते है, उस समय हमारे द्वारा लोकका मंगल तो होता ही है, साथ ही हम अपना भी मंगल कर लेते है।

प्रायः देखा जाता है कि अन्य व्यक्तियोके साथ कलह एवं संघर्ष करनेकी प्रवृत्ति हममे निसर्गतः रहती है। लाख प्रयत्न करनेपर विरले व्यक्ति ही इस प्रवृत्तिका परिष्कार कर पाते हैं। कवि इस प्रवृत्तिके परिष्कारका उपाय बतलाता हुआ कहता है कि कषायो—क्रोध, मान, माया और लोभके साथ द्वन्द्व करना उपादेय है। मानव कमज़ोरियोका दास है, अपनी भूलो और प्रवृत्तियोको वह सहसा रोकनेमे असमर्थ है; अतएव वह कषायोके साथ द्वन्द्व, संघर्ष और कलह करता हुआ अपने जीवनको आनन्दमय बना सकता है। यह निश्चय है कि विकारोंको शनैः-शनैः सुप्रवृत्तियोंके अभ्याससे ही रोका जा सकता है। इसी बातको कवि स्पष्ट करता है—

क्रोध सुई जु करै करमौं पर, मान सुई दिढ़ मान बढ़ावै।
माया सुई परकष्ट निवारत, लोभ सुई तपसौं तन तावै॥

राग सुई गुरु देवपै कीजियै, दोष सुई न विषै सुख भावै।
मोह सुई जु लखै सब आपसे, द्यानत सज्जनको कहिलावै॥
पीर सुई पर पीर विडारत, धीर सुई जु कषायसौं जूझै।
नीति सुई जो अनीति निवारत, मीत सुई अघसौं न अरूझै॥
औगुन सो गुन दोष विचारत, जो गुन सो समतारस बूझै।
मंजन सो जु करै मन मंजन, अंजन सो जु निरंजन सूझै॥

कविने इस प्रकार जीवनमें सत्य, शिवं और सुन्दरको उतारनेका उपाय बतलाया है। निम्न पद्यमें बुद्धि और दयाके वार्तालापका कितना सुन्दर सवाद अकित किया गया है। बुद्धि दयासे अनुरोध करती है कि सखि, मैं तेरा अत्यन्त उपकार मानूँगी, तू मेरा एक काम कर दे। यह चैतन्य मानव कुबुद्धि रूपी नायिकाके प्रेम-पाशमें बँध गया है, यद्यपि मैंने इससे विरत करनेके लिए इस मानवको बहुत समझाया है, पर मेरी एक भी बात नहीं सुनता। अतः तू इस मानवको समझा, जिससे यह मोहके बन्धनको तोड़ अपने वास्तविक रूपको समझ सके। री सखी दया! तू जानती है कि सौतका अभिमान किस प्रकार सहन किया जा सकता है? पति यदि अन्य रमणीसे स्नेह करने लगे, तो इससे बड़ा और क्या कष्ट हो सकता है!

बुद्धि कहै बहुकाल गये दुःख, भूर भगे कबहूँ न जगा है।
मेरी कह्यौ नहिं मानत रंचक, मोसौं बिगार कुमार सगा है॥
ये हु री सखि दया तुम जा विधि, मोहकौ तोरि दे जेम तगा है।
गावहुँगी तुमरौ जस मैं, चल री जिस पै निज पेम पगा है॥

मानव-जीवनमें विरक्ति प्राप्त करना सबसे अधिक कठिन कार्य माना गया है। कवि भूधरदासने अपने इस शतकमें वैराग्य-भावना जागृत करनेका विधान बतलाया है। कवि वैराग्यको जीवन-विकासके लिए परम आवश्यक मानता है, उसका अभिमत है कि विश्वकी अव्यवस्था, कलह और प्रतिद्वन्द्विताका मूलोच्छेदन

भूधरशतक

इसी भावनाके द्वारा हो सकता है। यद्यपि कहनेका ढग सिद्धान्त निरूपण जैसा ही है, परन्तु मंजुल भावनाओकी अभिव्यक्ति कविने सरस और हृदयग्राहक ढगसे की है। विषय-प्रतिपादनमें 'दैन्य' या पलायन वृत्तिका अनुसरण नहीं है, प्रत्युत तथ्य-विवेचन है।

भूधरशतकके कवित्त, सवैये, छप्पय बडे ही सरस, प्रवाहपूर्ण, लोकोक्ति समाविष्ट एवं जोरदार हुए हैं। वृद्धावस्था, ससारकी असारता, काल-सामर्थ्य, स्वार्थ-परता, दिगम्बर मुनियोकी तपस्या, आशा-तृष्णाकी नग्नता आदि विषयोका निरूपण कविने बड़े ही अद्भुत ढगसे किया है। विषय-प्रतिपादनकी शैली बड़ी ही स्पष्ट है। भावोको विशद करनेमे कविको अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। जिस बातका कवि निरूपण करना चाहता है, उसे स्पष्ट और निर्भय होकर प्रस्तुत करता है। नीरस और गूढ़ विषयोंका निरूपण भी सरस और प्रभावोत्पादक ढगसे किया गया है। कल्पना, भावना और विचारोका समन्वय सन्तुलित रूपमे हुआ है। आत्मसौन्दर्यका दर्शन कर कवि कहता है कि ससारके भोगोंमें लिप्त प्राणी अहर्निश विचार करता रहता है कि जिस प्रकार भी सभव हो, उस प्रकार मैं धन एकत्रित कर आनन्द भोगूँ। मानव नानाप्रकारके सुनहले स्वप्न देखता है और विचारता है कि धन प्राप्त हो जानेपर अमुक कार्यको पूरा करूँगा। एक सुन्दर भव्य प्रासाद बनवाऊँगा, सुन्दर रत्न, मणियो और मोतियोके आभूषण बनवाऊँगा, अपनी महत्ता और गौरवके प्रदर्शनके लिए धन खर्चकर बड़ेसे बड़ा कार्य करूँगा। अपने पुत्र-पौत्रादिका ठाट-बाटके साथ विवाह करूँगा। इस विवाहमे सोने-चॉदीके बर्तनोका वितरण करूँगा, जगत्मे अपनी कीर्त्तिगाथा सर्वदा स्थिर रखनेका उपाय भी करूँगा। जहाँ अबकी बार धन हाथमे आया कि मैंने अपने यशको अमर करनेका उपाय किया। मानव इस प्रकारकी उधेड-बुनमे सर्वदा लगा रहता है, उसका मनोराज्य निरन्तर वृद्धिंगत होता चला जाता है और एक दिन मृत्यु आकर उसके विचारोकी बीचमे ही हत्या कर देती है,

परिणाम यह निकलता है कि वह शतरजके खिलाड़ीके समान अपनी बाजीको वही छोड चला जाता है। सारे मनसूबे मन-के-मनमे ही समा जाते है। यह विचारधारा किसी एक व्यक्तिकी नही है, प्रत्युत मानव-मात्रकी है, हर व्यक्तिकी यही अवस्था होती है। कवि इस सत्यका उद्घाटन करता हुआ कहता है—

> चाहत है धन होय किसी विध, तो सब काज सरे जियरा जी।
> गेह चिनाय करूँ गहना कछु,ब्याहि सुता सुत बाँटिय भाँजी॥
> चिन्तत यों दिन जाहिं चले, जम आनि अचानक देत दगा जी।
> खेलत खेल खिलारि गये, रहि जाइ रुपी शतरंजकी बाजी॥

इस संसारमें मनुष्य आत्मज्ञानसे विमुख होकर शरीरकी ही सेवा करता है। इस शरीरको स्वच्छ करनेमे अनेक साबुनकी बट्टियॉ रगड़ डालता है तथा सुगन्धित तेलकी शीशियॉ खाली कर डालता है। फैशनके अनेक पदार्थोंका उपयोग शारीरिक सौन्दर्य-प्रसाधनमे करता है, प्रतिदिन रगड़-रगडकर शरीरको साफ करता है, इत्र और सेन्टोंका आस्वादन करता है तथा प्रत्येक इन्द्रियकी तृप्तिके लिए अनेक प्रकारके पदार्थोंका संचय करता है। स्पर्शन इन्द्रियकी तुष्टिके लिए वेश्यालयोंमें जाता है, रसनाकी तृप्तिके लिए अभक्ष्य भक्षण करता है, घ्राणकी सतुष्टिके लिए इत्र फुलेलकी गन्ध लेता है, नेत्रकी तृप्तिके लिए मनोहर रूपका अवलोकन करता है एव कर्ण इन्द्रियकी तृप्तिके लिए मनोहर मधुर शब्दोंको सुननेके लिए लालायित रहता है। इस प्रकारके मानवकी दृष्टि अनात्मिक है, वह शरीरको ही सब कुछ समझ गया है। कवि भूधरदासने अपने अन्तस्मे उसी सत्यका अनुभव कर जगत्के मानवोको सजग करते हुए कहा है—

> माता पिता-रज-वीरज सौं, उपजी सब सात कुधात भरी है।
> माखिनके पर माफिक बाहर, चामके बेठन बेढ़ धरी है॥

नाहिं तो आय लगैं अबहीं, बक बायस जीव बचै न घरी है।
देह दशा यह दीखत भ्रात, घिनात नहीं किन बुद्धि हरी है॥

मनुष्य अपनेको अमर समझ जगत्में नाना प्रकारके पाप और अत्याचार करता है। इस विनाशीक शरीरको अमर बनानेके लिए वह जड़ी-बूटियोंका सेवन करता है, नाना देवी-देवताओंको प्रसन्नकर वरदान प्राप्त करना चाहता है, और विज्ञान-द्वारा ऐसी ओषधियोंका आविष्कार करता है, जिनके सेवनसे अमर हो जाय। इसके लम्बे-चौड़े प्रोग्राम इस शरीरको ही सजाने, सँवारने, और वृद्धिगत करनेके लिए बनते हैं; अनात्मिक दृष्टि रखनेके कारण आत्मकल्याणसे विपरीत सभी वस्तुएँ इसे अच्छी प्रतीत होती है। अतएव कवि विश्वके समक्ष मृत्युकी अनिवार्यताका निरूपण करता हुआ यह बतलानेका प्रयास करता है कि व्यर्थके पाप करनेसे कोई लाभ नहीं, मृत्यु जीवनमें अनिवार्य है, अतः दीनता और पलायनको छोड़ जीवनके मार्गमे अबाधित रूपसे बढ़ते चले जाना यह मानवता है। जीवन-मोह कर्त्तव्य-मार्गसे च्युत कर देता है, इसीसे व्यक्ति साहस, वीरता और नैतिक कार्योंमे गतिशील नहीं हो पाता। कविने अनात्मिक भावनाओंको हृदयसे निकालनेके लिए जोर देते हुए कहा है—

लोहमई कोट केई कोठनकी ओट करो,
काँगरेन तोप रोपि राखो पट भेरिकैं।
इन्द्र चन्द्र चौंकायत चौकस ह्वै चौकी देहु,
चतुरंग चमू चहूँ ओर रहौ घेरिकैं॥
तहाँ एक भौंहिरा बनाय बीच बैठो पुनि,
बोलौ मति कोऊ जो बुलावै नाम टेरिकैं।
ऐसे परपंच पाँति रचौ क्यों न भाँति भाँति
कैसे हू न छोटे जम देख्यो हम हेरिकैं॥

युवावस्थामें मनुष्यकी भावनाएँ एक विशेष तीव्र प्रवाहसे बहती हैं। इस अवस्थामें पतनका गर्त और महत्ताका सोपान दोनों ही विद्यमान रहते हैं, यदि तनिक भी शिथिलता आई तो गर्तमें गिरना निश्चित है और सजग होने पर महत्ताके सोपान पर व्यक्ति चढ़ जाता है। जो युवावस्थामें विषय-वासनाओंमें अनुरक्त रहते हैं, वे एक प्रकार क्षम्य भी हैं; परन्तु वृद्धावस्था आजाने पर भी जो आत्मकल्याणसे विमुख हैं, वे वस्तुतः निन्दाके पात्र हैं। कविने वृद्धावस्थाको बड़ी पैनी और सूक्ष्म दृष्टिसे देखा है। इतना स्वाभाविक और करुणापूर्ण वर्णन अन्यत्र कठिनाईसे मिलेगा—

दृष्टि घटी पलटी तनकी छवि, बंक भई गति लंक नई है।
रूस रही परनी घरनी अति, रंक भयौ परयंक लई है॥
काँपत नार बहै मुख लार, महामति संगति छोरि गई है।
अंग उपंग पुराने परै, तिसना उर और नवीन भई है॥

× × × ×

जोई दिन कटै सोई आवमैं अवश्य घटै,
बूँद बूँद बीतै जैसे अँजुलीको जल है।
देह नित छीन होत नैन तेजहीन होत,
जोबन मलीन होत छीन होत बल है॥
आवै जरा नेरी तकै अंतक अहेरी आवै,
पर भौ नजीक जात नर-भौ बिफल है।
मिलकै मिलापी जन पूँछत कुशल मेरी,
ऐसी माहीं मित्र! काहे की कुशल है॥

भाव, भाषा, कल्पना और विचारोंकी दृष्टिसे यह रचना श्रेष्ठ है।

इस सरस नीतिपूर्ण रचनामे देवानुरागशतक, सुभाषितनीति, उपदेशाधिकार और विराग-भावना ये चार प्रकरण है। प्रथम देवानुराग-

बुधजन-सतसई

शतकमे कवि बुधजनने दास्य भावकी भक्ति अपने आराध्यके प्रति प्रकट की है। यद्यपि वीतरागी प्रभुके साथ इस भावनाका सामंजस्य नही बैठता है, फिर भी भक्तिके अतिरेकके कारण कविने अपनेको दासके रूपमे उपस्थित किया है। आत्मालोचन करना और जिनेश्वरके माहात्म्यको व्यक्त करना ही कविका लक्ष्य है, अतः वह कहता है—

मेरे अवगुन जिन गिनौ, मैं औगुनको धाम।
पतित उधारक आप हौ, करौ पतितको काम॥

सुभाषित खण्डमे २०० दोहे है, ये सभी दोहे नीतिविषयक है। लोक-मर्यादाके संरक्षणके लिए कविने अनेक हितोपदेशकी बाते कही है। कबीर, तुलसी, रहीम और वृन्दसे इस विभागके दोहे समता रखते है। एक-एक दोहेमे जीवनको प्रगतिशील बनानेवाले अमूल्य सदेश भरे हुए हैं। कवि कहता है—

एक चरन हूँ नित पढ़ै, तो काटै अज्ञान।
पनिहारीकी लेज सों, सहज कटै पापान॥
महाराज महावृक्षकी, सुखदा शीतल छाय।
सेवत फल भासे न तौ, छाया तो रह जाय॥
पर उपदेश करन निपुन, ते तौ लखै अनेक।
करै समिक बोलै समिक, ते हजारमें एक॥
विपताकौ धन राखिये, धन दीजै रखि दार।
आतम हितकौ छाँड़िए, धन, दारा परिवार॥

इस खण्डके कतिपय दोहे तो पञ्चतन्त्र और हितोपदेशके नीतिश्लोकोंका अनुवाद प्रतीत होते हैं। तुलसी, कबीर और रहीमके दोहोसे भी

कवि अनुप्राणित-सा प्रतीत होता है। यद्यपि पारिभाषिक जैन शब्दोंके प्रयोग-द्वारा सम्यक्त्वकी महिमा, मिथ्यात्वकी हानि एवं चरित्रकी महत्ता प्रतिपादित की है, फिर भी सामान्य सूक्तियोंका हितोपदेश और तुलसी-दासके दोहोंसे बहुत साम्य है।

उपदेशाधिकारमें विद्या, मित्र, जुआनिषेध, मद्य-मांस-निषेध, वेश्या-निषेध, शिकार-निन्दा, चोरी-निन्दा, परस्त्री-संग-निषेध आदि विषयोंपर अनेक उपदेशात्मक अनुभूतिपूर्ण दोहे लिखे गये हैं। इन दोहोंके मनन, चिन्तन, स्मरण और पठनसे आत्मा निर्मल होती है, हृदय पूत भावनाओं-से भर जाता है और जीवनमें सुख-शान्तिकी उपलब्धि हो जाती है।

विराग-भावना खण्डमें कविने संसारकी असारताका बहुत ही सुन्दर और सजीव चित्रण किया है। इस खण्डके सभी दोहे रोचक और मनोहर हैं। दृष्टान्तों-द्वारा संसारकी वास्तविकताका चित्रण करनेमें कविको अपूर्व सफलता मिली है। वस्तुका चित्र नेत्रोंके सामने मूर्त्तिमान होकर उपस्थित हो जाता है।

को है सुत को है तिया, काको धन परिवार।
आके मिले सरायमें, बिछुरेंगे निरधार॥

परी रहैगी संपदा, धरी रहैगी काय।
छलबलि करि क्यौं हु न बचै, काल झपट लै जाय॥

आया सो नाही रह्या, दशरथ लछमन राम।
तू कैसे रह जायगा, झूठ पापका धाम॥

कविकी चुभती हुई उक्तियाँ हृदयमें प्रविष्ट हो जाती हैं तथा जीवनके आन्तरिक सौन्दर्यकी अनुभूति होने लगती है। इस सतसईकी भाषा ठेट हिन्दी है, किन्तु कहीं-कहीं जयपुरी भाषाका पुट भी विद्यमान है।

यह छोटी-सी सरस रचना कवि विनोदीलालकी है। कविने इसमे नेमिनाथकी बरातका चित्रण किया है तथा पशु-पक्षियोको पिंजडेमे बन्द देखकर उनकी हिंसासे भयभीत हो युवक नेमिनाथ वैराग्य ग्रहण कर लेते है। इसकी कथावस्तुका निर्देश पूर्वमे नेमिचन्द्रिकाके परिशीलनमे किया जा चुका है।

नेमिव्याह

इसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि नेमिनाथके मनमे दुःखी राष्ट्रके दुःखको दूर करनेकी प्रबल आकाक्षा उत्पन्न हो जाती है। यद्यपि उनके मनमें कुछ क्षणोतक सासारिक प्रलोभनोसे युद्ध होता है, परन्तु जब तटस्थ होकर राष्ट्रकी परिस्थितिका चिन्तन करते है, उस समय उनका मोह समाप्त हो जाता है। भौतिक सुखोको छोडकर मानव कल्याणके लिए नेमिनाथका इस प्रकार तपस्याके लिए चला जाना, जीवनसे पलायन या दैन्य नही है। यह सच्चा पुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थको हर व्यक्ति नहीं कर सकता, इसके लिए महान् आत्मिक बलकी आवश्यकता है। जिसकी आत्मामें अपूर्व बल होगा, अन्तस्तलमे मानव-कल्याणकी भावना सुलगती होगी, वही व्यक्ति इस प्रकारके अद्वितीय कार्योंको सम्पन्न कर सकेगा। कविने रचनाके आरम्भमें वरकी वेश-भूषाका वर्णन करते हुए बतलाया है।

मौर धरो सिर दूलहके कर कंकण बाँध दई कस डोरी।
कुंडल काननमें झलके अति भालमें लाल विराजत रोरी।
मोतिनकी लड शोभित है छवि देखि लजें बनिता सब गोरी।
लाल विनोदीके साहिबके मुख देखनको दुनियाँ उठ दौरी।

विरक्त होते हुए नेमिनाथका चित्रण—

नेम उदास भये जबसे कर जोडके सिद्धका नाम लियो है।
अम्बर भूषण डार दिये शिर मौर उतारके डार दियो है॥
रूप धरों मुनिका जबहीं तबहीं चढ़िके गिरिनारि गयो है।
लाल विनोदीके साहिबने तहाँ पाँच महाव्रत योग लयो है॥

कविने इस रचनामें युवकोंके आदर्शके साथ युवतियोंके आदर्शोंका भी सुन्दर अंकन किया है। जबतक देशका नारी-समाज जाग्रत न होगा और "विवाह ही जीवनका उद्देश्य है" इस सिद्धान्तका त्याग न करेगा तबतक राष्ट्रका कल्याण नहीं हो सकता। राजुलने ऐसा ही आदर्श प्रस्तुत किया है। भोग जीवनका जघन्य लक्ष्य है, व्यक्ति जब भोगवादसे ऊपर उठ जाता है, तभी वह सेवा-कार्यमें प्रवृत्त हो जाता है। जब माता-पिता राजुलको पुनः वरान्वेषणकी बात कहकर सन्तुष्ट करते हैं, तब क्या ही सुन्दर उत्तर देती है—

काहे न बात सम्हाल कहौ तुम जानत हो यह बात भली है।
गालियाँ काढ़त हो हमको सुनो तात भली तुम जीभ चली है॥
मैं सबको तुम तुल्य गिनौ तुम जानत ना यह बात रली है।
या भवमें पति नेमप्रभू वह लाल विनोदीको नाथ बली है॥

बारहमासा नेमिराजुल

जैन कवियोंने बारहमासोंकी रचना कर वीरता और राष्ट्रीयताकी भावनाओंका सुन्दर अंकन किया है। यद्यपि बारह-मासोंमें सवाद रूपमे सेवा और वैराग्यकी भावना ही अन्तमें दिखलाई गई है, परन्तु संवादोंके मध्यमें विभिन्न मानवीय भावनाओंका अंकन भी सुन्दर हुआ है। प्रस्तुत बारह-मासा कवि विनोदीलाल-द्वारा विरचित है। इसमे राजुल अपने संकल्पित पति नेमिनाथसे अनुरोध करती है कि "स्वामिन्! आप इस युवावस्थामे क्यों विरक्त होकर तपस्या करने जाते है? यदि आपको तपस्या करना ही अभीष्ट था और आप देशमे अहिंसा सस्कृतिका प्रचार करना चाहते थे तो आपने आषाढ़ महीनेमें यह व्रत क्यो नहीं लिया? जब आप श्रावणमें विवाहकी तैयारी कर आ गये, तब क्यों आप इस प्रकार मुझे ठुकराकर जा रहे है। मैं मानती हूँ कि राष्ट्रोत्थानमे भाग लेना प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है। स्वर्णिम अतीत प्रत्येक सहृदयको प्रभावित करता है। राष्ट्रकी सम्पत्ति

युवक और युवतियाँ है, इन्हींके ऊपर राष्ट्रका समस्त भार है, अतः आपका महत्त्वपूर्ण त्याग वैयक्तिक साधना न बनकर राष्ट्रहित-साधक होगा; फिर भी मै आपके कोमल शरीर और ललित कामनाओका अनुभव कर कहती हूँ कि यह व्रत आपके लिए उचित नहीं है। श्रावण मासमें व्रत लेनेसे घन-घोर बादलोंका गर्जन, विद्युत्की चकाचौंध, कोयलकी कुहुक, तिमिरयुक्ता यामिनी, पूर्वी हवाके मधुर और शीतल झोंके आपको वासनासक्त किये बिना न रहेंगे। इस महीनेमे दीक्षा लेना खतरेसे खाली नही है, अतएव तप साधन करना ठीक नही है।"

राजुलकी उक्त बातोका उत्तर नेमिनाथने बडे ही ओजस्वी वचनोंमे दिया है। वह कहते हैं कि "जब तक व्यक्ति अपना शोधन नहीं करता, राष्ट्रका हित नहीं कर सकता है। आत्मशोधनके लिए समयविशेषकी आवश्यकता होती है। भय और त्रास उन्हीं व्यक्तियोको विचलित कर सकते हैं, जिनके मनमे किसी भी प्रकारका प्रलोभन शेष रहता है। प्रकृति-के मनोहर रूपमे जहाँ रमणीय भावनाओको जाग्रत करनेकी क्षमता है। वहाँ उसमे वीरता, धीरता और कर्त्तव्यपरायणताकी भी भावना उत्पन्न करनेकी योग्यता विद्यमान है। अतः श्रावण मासकी झडी वासनाके स्थान-पर विरक्ति ही उत्पन्न कर सकेगी।"

नेमिनाथके इस उत्तरको सुनकर राजुल भाद्रपद मासकी कठिना-इयोका वर्णन करती है। वह मोहवश उनसे प्रार्थना करती हुई कहती है कि "हे प्राणनाथ! आप जैसे सुकुमार व्यक्ति भाद्रपद मासकी अनवरत होनेवाली वर्षा ऋतुमे मुक्त प्रकृतिमे, जहाँ न भव्य प्रासाद होगा और न वस्त्रवेश्म होगा, आप किस प्रकार रह सकेंगे? झञ्झावात नन्हीं नन्हीं पानीकी बूँदोसे युक्त होकर शरीरमें अपूर्व वेदना उत्पन्न करेगा। यदि आप योगधारण करना चाहते हैं तो घर ही चलकर योगधारण कीजिये। सेवकको वन जाना आवश्यक नही, वह घरमे रहकर भी सेवा-कार्य कर सकता है। प्राणनाथ! मैं यह मानती हूँ कि इस समय देशमे हिंसाका बोलबाला है,

इसे दूर करनेके लिए पहले अपनेको पूर्ण अहिंसक बनाना पड़ेगा, तभी देशका कल्याण हो सकेगा। परन्तु आपका मोह मुझे इस बातकी प्रेरणा दे रहा है कि मैं इस कठिनाईसे आपकी रक्षा करूँ।"

राजुलकी इन बातोंको सुनकर नेमिनाथ हँस पड़ते हैं और कहते हैं कि कष्टसहिष्णु बनना प्रत्येक व्यक्तिको आवश्यक है। ये थोड़ेसे कष्ट किस गिनतीमें हैं, जब नरक, निगोदके भयंकर कष्ट सहे हैं तथा इस समय जब हमारा राष्ट्र-सन्तप्त है, प्रत्येक प्राणी हिंसासे छटपटा रहा है, उस समय तुम्हारी ये मोहभरी बातें कुछ भी महत्त्व नहीं रखतीं। मैंने अच्छी तरह निश्चय करनेके उपरान्त ही इस मार्गका अवलम्बन लिया है।

इसी प्रकार राजुलने बारह महीनोंकी भीषणताका चित्रांकन किया है। नेमिनाथ इन विभीषिकाओंसे भयभीत नहीं होते हैं और वह अपने व्रतमें दृढ़ रहते हैं। इस प्रसंगके सभी पद्य सरल और मधुर हैं। कार्त्तिक मासका चित्रण करती हुई राजुल कहती है—

पिय कात्तिक मैं मन कैसे रहै जब भामिनि भौन सजावैंगी।
रचि चित्र-विचित्र सुरंग सबै, घर ही घर मंगल-गावैंगी॥
पिय नूतन-नारि सिंगार किये, अपनो पिय टेर बुलावैंगी।
पिय बारहिंबार बरै दियरा, जियरा तरसावैंगी॥

नेमिनाथका प्रत्युत्तर—

तो जियरा तरसैं सुन राजुल, जो तनको अपनो कर जानैं।
पुद्गल भिन्न है भिन्न सबैं, तन छाँडि मनोरथ आन सयानैं॥
ढूँढगो मांई कलिधार मैं, जड़ चेतनकों को एक प्रमानैं।
हंस पिवैं पय भिन्न करैं जल, सो परमातम आतम जानैं॥

वसन्त ऋतुके आगमनकी विभीषिका दिखलाती हुई राजुल कहती है—

पिय लागैगो चैत बसंत सुहावनो, फूलैंगी बेल सबै बनमाहीं।
फूलैंगी कामिनी जाको पिया घर, फूलैंगी फूल सबै बनराई॥

खेलहिंगे ब्रजके बन मैं सब, बालगुपाल रु कुँवर कन्हाई।
नेमि पिया उठ आवो घरै तुम, काहेको करहो लोग हँसाई॥

वह पं० दौलतरामकी एक सरस आध्यात्मिक कृति है। कविने जैन-तत्त्वोके निचोड़को इस रचनामें सकलित किया है। सस्कृतके अनेक ग्रन्थो-

छहढाला

को पढ़कर जो भाव कविके हृदयमें उठे, उन्हे जैसेके तैसे रूपमे छहढालामे रख दिया है। इस रचनाकी भाषा गँठी हुई और परिमार्जित है। कविने जीवनमे चिरन्तन सत्य-को और सत्यकी क्रियाको जैसा देखा, जन-कल्याणके लिए वही लिखा। मानवताका चरमविकास ही कविका अन्तिम लक्ष्य है। अतः वह समस्त वन्धनोंसे मानवको मुक्तकर शाश्वतिक आनन्द-प्राप्तिके लिए अग्रसर करता है। कविकी चिन्तनशीलता चन्द्रमाकी चाँदनीके समान चमकती है। प्रथम ढालमे चारो गतियोंका दुःख, द्वितीयमे मिथ्याबुद्धिके कारण प्राप्त होनेवाले कष्ट, तृतीयमे सात तत्त्वके सामान्य विवेचनके पश्चात् सम्यक्त्वका विवेचन, चतुर्थमे सम्यग्ज्ञानकी विशेषता, पञ्चममे विश्वके रहस्योको अवगत करनेके लिए विभिन्न प्रकारके चिन्तन एव षष्ठमें आचार-का विधान है। प्रथम ढालमें कविने नारक, पशु, मनुष्य और देवोंके भव-भ्रमणोंका कथन करते हुए बताया है कि अनादिकालसे यह प्राणी मोह-मदिराको पीकर अपने आत्मस्वरूपको भूल ससार-परिभ्रमण कर रहा है। कविने कितनी गहराईके साथ इस भव-पर्यटनका अनुभव किया है—

मोह महामद पियौ अनादि, भूल आपको भरमत वादि।

× × ×

काल अनन्त निगोद मंझार, बीत्यौ एकेन्द्री तन धार॥
एक स्वासमें अठदस बार, जन्मौ मरयौ भरयौ दु.खभार।
निकसि भूमिजल पावक भयौ, पवन प्रत्येक वनस्पति थयौ॥
दुर्लभ लहि ज्यौं चिंतामणी, त्यौं पर्याय लही त्रसतणी।

तीसरी ढालमे जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्षका तात्त्विक विवेचन है। कल्याणका मार्ग बतलाता हुआ कवि कहता है—

यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा॥

× × ×

ये ही आतमको दुःख कारण, तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बंधे विधि सौं, सो बंधन कबहुँ न सजिये॥
शम दम तैं जो कर्म न आवै, सो संवर आदरिये।
तपबल तैं विधि-झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये॥

आध्यात्मिक कृति होनेके कारण पारिभाषिक जैन शब्दोंकी बहुलता है; फिर भी मानव जीवनको उन्नत बनानेवाले सदेशकी कमी नहीं है। कवि कहता है कि अपने गुण और परके दोषोंको छिपानेसे मानवका विकास होता है। परछिद्रान्वेषणकी प्रवृत्ति समाज और व्यक्तिके विकासमे नितान्त बाधक है। अतएव किसी व्यक्तिके दोषोंको देखकर भी उसे पुनः सन्मार्गमे लगा देना मानवता है। जो व्यक्ति इस मानवधर्मका अनुसरण करता है, वह महान् है

निजगुण अरु पर औगुण ढाँकै, वानिज धर्म बढावै।
कामादिक कर वृषतैं त्रिगतैं, निज परको सु दृढ़ावै॥

चौथी ढालमें वैयक्तिक और सामाजिक जीवनके विकासकी अनेक भावनाएँ अंकित हैं। कवि आत्मविकासका साधन बतलाता हुआ कहता है—'राग-द्वेष करतार कथा कबहूँ न सुनीजै' आगे पुनः कहता है—'धर उर समताभाव, सदा सामायिक करिये' इन पद्योमे जीवनको उन्नत बनानेवाले सिद्धान्तोका कथन है।

पाँचवी ढालमे संसारकी वास्तविकताका निरुपण करता हुआ कवि कहता है—

"जोवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई॥"

छठवी ढालमें जीवनके आदर्शोंको निरूपण करते हुए कहा है—

'यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये'

इस प्रकार इस छोटी-सी कृतिमे जीवनकी यथार्थताका चित्रण किया गया है।

छहढालाकी एक बहुत बड़ी विशेषता यह भी है कि इसमे समूचे जैन दर्शनको, पारिभाषिक शब्दावलिके आधारपर सरस और सरल रूपमे गुम्फित कर दिया गया है।

छठवाँ अध्याय

आत्मकथा-काव्य

आत्मकथा लिखना अन्य काव्योंकी अपेक्षा कठिन है। लेखक निर्भीक होकर सामान्य जगत्के धरातलसे ऊपर उठकर ही आत्मकथा काव्य लिख सकता है। सत्यका प्रयोग करनेमें जो जितना सक्षम है, वह उतना ही श्रेष्ठ आत्मकथा-काव्य लिखनेकी क्षमता रखता है। जैनकवि बनारसीदासका सर्वप्रथम आत्मकथा-काव्य हिन्दी साहित्यमें उपलब्ध है। आजसे लगभग चार सौ वर्ष पूर्व कविने पद्यात्मक यह आत्मचरित लिखा है। इसमें अपने समयकी अनेक ऐतिहासिक बातोंके साथ मुसलमानी राज्यकी अन्धाधुन्धीका जीता-जागता चित्र भी खींचा है। कविने सत्य-प्रियता, स्पष्टवादिता, निरभिमानता और स्वाभाविकताका ऐसा अंकन किया है जिससे यह आत्मकथा आधुनिक आत्मकथाओंसे किसी भी बातमें कम नहीं है। कविने अपने दोष और त्रुटियोंको भी सत्य और ईमानदारीके साथ ज्योंका-त्यों रख दिया है। अपने चारित्रिक दोषोंपर पर्दा डालनेका प्रयास नहीं किया है, बल्कि एक वैज्ञानिकके समान तटस्थ होकर यथार्थताका विश्लेषण किया गया है।

यह आत्मकथा-काव्य 'मध्यदेशकी बोली'में लिखा गया है। भाषामें किसी भी प्रकारका आडम्बर नहीं है। जो भाषा सुगमतापूर्वक सर्व-साधारणकी समझमें आ सके, उसीमें यह आत्मचरित लिखा गया है। आत्मकथाके आदिमें स्वयं कविने लिखा है—

जैनधर्म श्रीमाल सुवंस। बनारसी नाम नरहंस॥
तिन मनमाहिं विचारी बात्त। कहौ आपनी कथा विख्यात॥

जैसी सुनी विलोकी नैन। तैसी कछू कहौं मुख बैन ॥
कहौं अतीत-दोष-गुणवाद। बरतमानताई मरजाद ॥
भावी दसा होइगी जथा। ग्यानी जानै तिसकी कथा ॥
तातै भई बात मन आनि। थूलरूप कछु कहौ बखानि ॥
मध्य देसकी बोली बोलि। गर्भित बात कहौ हिअ खोलि ॥
भाखौ पूरव-दसा-चरित्र। सुनहु कान धरि मेरे मित्र ॥

समूची आत्मकथा इतनी रोचक है और ऐतिहासिक निबन्धनकी दृष्टिसे इतनी महत्त्वपूर्ण है कि इसका कुछ विस्तारसे वर्णन करनेका लोभ सवरण नही किया जा सकता। कवि बनारसीदास एक धनी-मानी सम्भ्रान्त वशमे उत्पन्न हुए थे। इनके प्रपितामह जिनदासका साका चलता था, पितामह मूलदास हिन्दी और फारसीके पडित थे; और ये नरवर (मालवा) मे वहाँके मुसलमान नवावके मोदी होकर गये थे। इनके मातामह मदनसिंह चिनालिया जौनपुरके नामी जौहरी थे और पिता खड्गसेन कुछ दिनोतक बगालके सुल्तान मोदीखाँके पोतदार थे और कुछ दिनोके उपरान्त जौनपुरमे जवाहरातका व्यापार करने लगे थे। इस प्रकार कविका वश सम्पन्न था तथा अन्य सम्बन्धी भी धनिक थे। पर आत्मकथा-लेखकको सुख-शान्ति जीवनमे नहीं मिली। अतः धनार्जनके लिए जीवन भर इन्हें दौड-धूप करनी पडी और तरह-तरहके कष्ट सहने पडे। इस दौडधूप और कष्टोंका निरूपण कविने अत्यन्त विशुद्ध हृदय से किया है।

कविने यद्यपि सामान्यशिक्षा प्राप्त की थी, पर कविता करनेकी प्रतिभा जन्मजात थी। १४ वर्षकी अवस्थामे प० देवदत्तके पास पढना आरम्भ किया था और धनञ्जयनाममालादि कई ग्रन्थोको पढ़ा था—

पढ़ी नाममाला शत दोय। और अनेकारथ अवलोय ॥
ज्योतिष अलंकार लघु कोक। खंडस्फुट शत चार श्लोक ॥

कविके ऊपर माता-पिता और दादीका अतिशय स्नेह था। अतः यौवनारम्भमें यह इश्कबाज हो गये। कवि लिखता है—

तजि कुलकान लोककी लाज। भयो बनारसि आसिखबाज॥
करै आसिखी धरित न धीर। दरदवन्द ज्यों शेख फकीर॥
इकटक देख ध्यानसों धरै। पिता आपुनेको धन हरै॥

कविका कार्य इस अवस्थामे पढना और इश्कबाजी करना था। इन्होने चौदह वर्षकी आयुमे एक सुन्दर 'नवरस' नामक रचना भी एक सहस्र प्रमाण दोहे-चौपाईमे लिखी थी। बोध जाग्रत होनेपर कविने इस ग्रन्थको गोमतीमें प्रवाहित कर दिया।

कबहूं आइ शब्द उर धरै। कबहूं जाइ आसिखी करै।
पोथी एक बनाई नई। मित हजार दोहा चौपई॥
तामें नवरस रचना लिखी। है विशेष बरनन आसिखी॥
ऐसे कुकवि बनारसि भये। मिथ्याग्रन्थ बनाये नये॥

कै पढ़ना कै आसिखी, मगन दुहूं रस माहिं।
खानपानकी सुधि नहीं, रोजगार कछु नाहिं॥

१५ वर्ष १० महीनेकी अवस्थामे कवि सजधजकर अपनी ससुराल खैराबादसे द्विरागमन कराने गया। ससुरालमें एक माह रहनेके उपरान्त कविको पूर्वोपार्जित अशुभोदयके कारण कुष्ठ रोग हो गया, विवाहिता भार्या और सासुके अतिरिक्त सबने साथ छोड़ दिया। कविने इस अवस्थाका निरूपण करते हुए बताया है कि खैराबादके एक नाईने, जो कुष्ठ रोगका वैद्य था, दो महीने अनवरत श्रम और चिकित्साकर उन्हे अच्छा किया।

भयो बनारसिदास तन, कुष्ठरूप सरवंग।
हाड़ हाड़ उपजी व्यथा, केश रोम भुवभंग॥

विस्फोटक अगनित भये, हस्त चरण चौरंग ।
कोऊ नर साले ससुर, भोजन करहिं न संग ॥
ऐसी अशुभ दशा भई, निकट न आवै कोइ ।
सासू और विवाहिता, करहिं सेव तिय दोइ ॥

स्वस्थ होकर कवि पत्नीको बिना ही लिवाये घर आया और पूर्ववत् पढना-लिखना तथा इश्कबाजी करना आरम्भ कर दिया । चार महीनेके के पश्चात् कवि पुनः भार्याको लिवाने गया और विदा कराकर घर रहने लगा । अतः गुरुजन उपदेश देने लगे—

गुरुजन लोग देहिं उपदेश । आसिखवाज सुनैं दरवेश ॥
बहुत पढे बामन और भाट । वनिक पुत्र तो बैठे हाट ॥
बहुत पढ़ै सो माँगे भीख । मानहु पूत बड़ोकी सीख ॥

सवत् १६६० में कविने अध्ययन समाप्त किया तथा कविकी बहन का विवाह भी इसी सवत्में हुआ और कविको एक पुत्रीकी प्राप्ति भी इसी संवत्में हुई । सवत् १६६१ मे एक धूर्त संन्यासी आया और उसने बडे आदमीका पुत्र समझकर इनको अपने जालमे फँसा लिया । संन्यासीने कहा—"मेरे पास ऐसा मन्त्र है कि यदि कोई एक वर्ष तक नियमपूर्वक जपे तथा इस भेदको किसीसे न कहे तो एक वर्ष बीतनेपर मन्त्र सिद्ध हो जाता है, जिससे घरके द्वारपर एक स्वर्णमुद्रा प्रतिदिन पड़ी मिला करेगी ।" इश्कबाजीके लिए धनकी आवश्यकता रहनेके कारण लोभवश कविने मन्त्रकी साधना आरम्भ की । मन्त्र जपते-जपते बड़ी कठिनाईसे समय विताया और प्रातःकाल ही स्नान-ध्यान करके बड़ी उत्कंठासे कवि घरके दरवाजे पर आया और स्वर्णमुद्राका अन्वेषण करने लगा, पर वहाँ सोनेकी तो बात ही क्या, मिट्टीकी भी मुद्रा न मिली । आशावश कविने यह समझकर कि कहीं दिन गिननेमे तो गल्ती न हो गई है अतः उसने कुछ दिनों तक पुनः मन्त्रका जप किया पर कुछ मिला-जुला नहीं ।

कुछ दिनोंके उपरान्त एक योगीने आकर अपना दूसरा रंग जमाया। भोले कविको इस रगमें रँगते विलम्ब न हुआ और योगी-द्वारा प्रदत्त शखरूप सदाशिवकी मूर्तिकी छुपकर पूजा करने लगा। योगी तो अपनी भेंट लेकर चला गया, पर कवि शख बजा-बजाकर सदाशिवके अर्चनमे अनुरक्त रहने लगा। यहाँ यह स्मरणीय है कि यह पूजा वह अपने परिवारसे छिपकर करता था, उसकी इस प्रवृत्तिके सम्बन्धमे किसीको कुछ भी पता नहीं था। संवत् १६६१ मे जब इनके पिता खड्गसेन हीरानन्दजी द्वारा चलाये गये शिखरजी यात्रा सघमे यात्रार्थ चले गये तो इन्होंने कुछ दिनोतक चैनकी वशी बजानेके पश्चात् भगवान् पार्श्वनाथकी यात्रा करनेकी आज्ञा अपनी माँसे माँगी। आज्ञा न मिलनेपर कवि चुपचाप बनारसके भगवान् पार्श्वनाथकी पूजा करनेके लिए चल दिया। वहाँ पहुँचकर गगास्नानपूर्वक दस दिनो तक भगवान् पार्श्वनाथकी पूजा करता रहा ; किन्तु इस समय भी सदाशिवकी पूजा ज्योंकी त्यो होती रही। कविने आत्मकथामे सदाशिव पूजनको उत्प्रेक्षा और आक्षेपालकारमें निम्न प्रकार कहा है—

> शंखरूप शिव देव, महाशंख बनारसी।
> दोऊ मिले अबेव, साहिब सेवक एकसे॥

सवत् १६६२ में कात्तिक मासमें अकबरकी मृत्यु हो जानेपर नगरमें किस प्रकारकी व्याकुलता छा गई, कविने आत्मकथामे सजीव चित्रण किया है—

> घर घर दर दर दिये कपाट, हटवानी नहिं बैठे हाट।
> हँडवाई गाढी कहुँ और, नकदमाल निरभरमी ठौर॥
> भले वस्त्र अरु भूपन भले, ते सब गाढ़े धरती तले।
> घर घर सबनि बिसाहे शस्त्र, लोगन पहिरे मोटे वस्त्र॥
> गाढ़ो कंबल अथवा खेस, नारिन पहिरे मोटे वेस।
> ऊँच नीच कोउ न पहिचान, धनी दरिद्री भये समान॥

सदाशिवका बहुत दिनों तक पूजन करनेके उपरान्त एक दिन कवि एकान्तमे बैठा-बैठा सोचने लगा—

जब मैं गिर्‌यो पर्‌यो मुरझाय। तब शिव कछु नहिं करी सहाय॥

इस विकट शकाका समाधान उसके मनमे न हो सका और उसने सदाशिवकी पूजा करना छोड़ दिया। कुछ दिनोंके पश्चात् एक दिन कवि सन्ध्या समय गोमतीकी ओर पर्यटन करने गया और प्राकृतिक रमणीय दृश्यने कविके अन्तस्तलको आलोडित किया, फलतः कविको विरक्ति हुई और उसने अपनी शृगार रसकी रचना नवरसको उसमें प्रवाहित कर दिया तथा स्वय पापकर्मोंको छोड़ सम्यत्तवकी ओर आकृष्ट हुआ—

तिस दिन सौं बानारसी, करी धर्म की चाह।
तजी आसिखी फासिखी, पकरी कुल की राह॥

× × ×

उदय होत शुभ कर्म के, भई अशुभकी हानि।
तातें तुरत बनारसी, गही धर्म की बानि॥

सवत् १६६७ में एक दिन पिताने पुत्रसे कहा—"वत्स! अब तुम सयाने हो गये, अतः घरका सब काम-काज सभालो और हमको धर्म-ध्यान करने दो।" पिताके इच्छानुसार कवि घरका कामकाज करने लगा। कुछ दिन उपरान्त दो हीरेकी अँगूठी, चौबीस माणिक, चौंतीस मणि, नौ नीलम, बीस पन्ना, चार गॉठ फुटकर चुन्नी इस प्रकार जवाहरात; बीस मन घी, दो कुप्पे तेल, दो सौ रुपयेका कपड़ा और कुछ नकद रुपये लेकर आगराको व्यापार करने चला। प्रतिदिन पॉच कोसके हिसाबसे चलकर गाड़ियॉ इटावाके निकट आई, वहॉ मजिल पूरी हो जानेसे एक बीहड़ स्थानपर डेरा डाला। थोड़े समय विश्राम कर पाये थे कि मूसलाधार पानी बरसने लगा। तूफान और पानी इतनी

तेजीसे वह रहे थे, जिससे खुले मैदानमें रहना, अत्यन्त कठिन था। गाड़ियाँ जहाँकी तहाँ छोड़ साथी इधर-उधर भागने लगे। शहरमे भी कहीं शरण नहीं मिली। सरायमे एक उमराव ठहरे हुए थे, अतः स्थान रिक्त न होनेसे वहाँसे भी उल्टे पॉव लौटना पड़ा। कविने इस परिस्थितिका यथार्थ चित्रण करते हुए लिखा है—

> फिरत फिरत फावा भये, बैठन कहै न कोय।
> तलै कीचसों पग भरें, ऊपर वरसत तोय॥
> अँधकार रजनी विषैं, हिमरितु अगहनमास।
> नारि एक बैठन कह्यो, पुरुष उठा लै बाँस॥

किसी प्रकार चौकीदारोंकी झोपड़ीमें शरण मिली और कष्टपूर्वक वहीं रात बिताई। प्रातःकाल गाड़ियाँ लेकर आगरेको चले, आगरा पहुँचकर मोती कटरेमें एक मकान लेकर उसमे सारा सामान रखकर रहने लगे। व्यापारसे अनभिज्ञ होनेके कारण कविको घी, तैल और कपड़ेमें घाटा ही रहा। इस विक्रीके रुपयोंको हुण्डी-द्वारा जौनपुर भेज दिया। जवाहरात भी जिस किसीके हाथ बेचते रहे, जिससे पूरा मूल्य नहीं मिला। इजहारबन्दके नारेमे कुछ छूटा जवाहरात बॉध लिया था, वह न मालूम कहाँ खिसककर गिर गया। माल बहुत था, इससे हानि अत्यधिक हुई, पर किसीसे कुछ कहा नहीं, आपत्तियाँ अकेले नहीं आती, इस कहावतके अनुसार डेरेमे रखे कपड़ेमे बँधे हुए जवाहिरातोंको चूहे कपड़े समेत न मालूम कहाँ ले गये। दो जड़ाऊ पहुँची किसी सेठको बेची थीं, दूसरे दिन उसका दिवाला निकल गया। एक जड़ाऊ मुद्रिका थी, वह सड़कपर गाँठ लगाते हुए नीचे गिर पड़ी। इस प्रकार धन नष्ट हो जानेसे बनारसीदासके हृदयको बहुत बड़ा धक्का लगा, जिससे सन्ध्या समय जोरसे ज्वर चढ आया और दस लघनोंके पश्चात् पथ्य दिया गया। इसी बीच पिताके कई पत्र आये, पर इन्होंने लज्जावश उत्तर नही दिया। सत्य छिपाये

छिपता नहीं, अतः इनके बडे बहनोई उत्तमचन्द जौहरीने सारी घटनाएँ जौनपुर इनके पिताके पास लिख भेजी। खड्गसेन इस समाचारको पाकर किंकर्त्तव्य विमूढ हो गये और पत्नीको बुरा-भला कहने लगे।

जब बनारसीदासके पास कुछ न बचा तो गृहस्थीकी चीजोंको बेच-बेचकर खाने लगे। समय काटनेके लिए मृगावती और मधुमालती नामक पुस्तकोंको बैठे पढ़ा करते थे। दो-चार रसिक श्रोता भी आकर सुनते थे। एक कचौडीवाला भी इन श्रोताओंमें था, जिसके यहाँसे कई महीनों तक दोनों शाम उधार लेकर कचौड़ियाँ खाते रहे। फिर एक दिन एकान्तमें इन्होंने उससे कहा—

तुम उधार कीनौ बहुत, अब आगे जनि देहु।
मेरे पास कछू नहीं, दाम कहाँसौं लेंहु॥

कचौडीवाला सज्जन था, उसने उत्तर दिया—

कहै कचौडीवाला नर, बीस सवैया खाहु।
तुमसौं कोउ न कछु कहै, जहँ भावै तहँ जाहु॥

कवि निश्चिन्त होकर छः-सात महीने तक दोनो शाम भरपेट कचौडियाँ खाता रहा, और जब पासमें पैसे हुए तो चौदह रुपये देकर हिसाब साफ़ कर दिया। कुछ समयके पश्चात् कवि अपनी ससुराल खैराबाद पहुँचा। एकान्तमें भार्यासे समागम हुआ; पतिव्रता चतुर भार्याने पतिकी आन्तरिक वेदनाको ज्ञात कर अपने अर्जित बीस रुपयोंको भेंट किया और हाथ जोड़कर कहा—"नाथ! चिन्ता न करें, आप जीवित रहेंगे तो बहुत धन हो जायगा।" इसके पश्चात् एकान्तमें उसने अपनी मातासे कहा—

माता काहू सौं जिनि कहौ। निज पुत्रीकी लज्जा बहौ॥
थोरे दिन मैं लेहु सुधि, तो तुम मा मैं धीय।
नाहीं तौ दिन कैकुमै, निकसि जाइगौ पीय॥

ऐसा पुरुष लजालू बड़ा। बात न कहै जात है गड़ा ॥
कहै माइ जिन होहि उदास। हैं से मुद्रा मेरे पास ॥
गुपत देहुँ तेरे कर माहिं। जो वै बहुरि आगरे जाहिं ॥
पुत्री कहै धन्य तू माइ। मैं उनकौं निसि बूझौं जाइ ॥

रातको जब पुनः दम्पति मिले तो उस सती-साध्वीने अपनी माँसे प्राप्त २००) रुपये भी उन्हें दे दिये और आगरे जाकर व्यापार करनेका अनुरोध किया। कविने दूसरे दिनसे ही व्यापारकी तैयारी कर दी तथा माल खरीदने लगा। इसी बीच अवकाश पर्याप्त मिला, अतः कविने नाममाला और अजितनाथ स्तुतिकी रचना यहीं की।

दुर्भाग्यने कविका साथ सदा दिया, अतः इस व्यापारमें भी कविको घाटा ही रहा। इसके पश्चात् कवि अपने मित्र नरोत्तमदासके यहाँ रहने लगा। कुछ दिनके पश्चात् नरोत्तम, उसके श्वसुर और बनारसीदास तीनों पटनेकी ओर चले। रातमें रास्ता भूल जानेसे एक चोरोंके ग्राममें पहुँचे। जब चोरोंके चौधरीने इन्हें देखा तो नाम-ग्राम पूछा। इस अवसरपर बनारसीदासकी बुद्धि काम कर गई और एक श्लोकमे चौधरीको आशीर्वाद दिया। श्लोकयुक्त आशीर्वाद सुनकर चौधरी कुछ मुग्ध हुआ और इन्हें ब्राह्मण समझ दण्डवत् किया तथा हाथ जोड़कर बोला—"महाराज, आप लोग रास्ता भूलकर यहाँ आ गये है। रातभर यहीं रहें, सवेरे आपको रास्ता बतला दिया जायगा। जब चौधरी इनको वहाँ छोड़ शयन करने चला गया तो तीनोंने सूत बटकर यज्ञोपवीत धारण किया तथा मिट्टी घिसकर त्रिपुण्ड लगाया—

माटी लीन्हीं भूमिसौं, पानी लीन्हौं ताल।
विप्र वेष तीनौं धर्यौ, टीका कीन्हौं भाल ॥

इस प्रकार कविने बनारस, जौनपुर, आगरा आदि स्थानोंमें र

व्यापार किया। दो चार जगह लाभ भी हुआ, पर जीवनमें धनोपार्जन कभी नहीं कर सका।

एकबार आगरा लौटते समय कुरी नामक ग्राममें कवि और कविके साथियोंपर झूठे सिक्के चलानेका भयंकर अपराध लगाया गया था तथा इनको और इनके साथी अन्य अठारह यात्रियोंके लिए मृत्युदण्ड देनेको शूली भी तैय्यार कर ली गयी थी। आत्मकथामें इस संकटका विवरण रोमाञ्चकारक है—

सिरीमाल बानारसी, अरु महेसरी जाति।
करहिं मंत्र दोऊ जने, भई छमासी राति॥

पहर राति जब पिछली रही। तब महेसरी ऐसी कही॥
मेरा लिहुरा भाई हरी। नाउँ सुतौ ब्याहा है वरी॥
हम आए थे यहाँ बरात। भली याद आई यह बात॥
बानारसी कहै रे मूढ़। ऐसी बत करी क्यों गूढ़॥

तब महेसुरी यौं कहै, भयसौं भूली मोहि।
अब मोकौं सुमिरन भई, तू निचिंत मन होहि॥

तब बनारसी हरषित भयौ। कछूक सोच रह्यौ कछु गयौ।
कबहूँ चित की चिन्ता भगै। कबहूँ बात झूठसी लगै॥
यो चिन्तवत भयो परभात। आइ पियादे लागे घात।
सूली दै मजूरके सीस। कोतवाल भेजी उनईस॥
ते सराइ मैं डारी आनि। प्रगट पयादा कहै बखानि।
तुम उनीस प्रानी ठग लोग। ए उनीस सूली तुम भोग॥

घरी एक बीते बहुरि, कोतवाल दीवान।
आए पुरजन साथ सब, लागे करन निदान॥

कवि गार्हस्थिक दुर्घटनाओंका निरन्तर शिकार रहा। एकके बाद एक इनकी दो पत्नियोंकी एवं उनके नौ बच्चोंकी मृत्यु हो जानेपर कविने

अशुभोदयको ही अपनी क्षतिका कारण समझा। संवत् १६९८ में अपनी तीसरी पत्नीके साथ बैठे हुए कवि कहता है—

नौ बालक हूए मुए, रहे नारिनर दोइ।
ज्यों तरवर पतझार ह्वै, रहैं ठूँठसे होइ॥

दूसरी स्त्रीकी मृत्युके उपरान्त कविने तीसरी शादी की तथा इसी बीच कविने अनेक रचनाएँ लिखीं—

चले बरात बनारसी, गये चाडसूँ गाय।
बच्छा सुतकौं व्याह करि, फिर आये निजधाम॥
अरु इस बीचि कवीसुरी, कीनी बहुरि अनेक।
नाम 'सूक्तिमुक्तावली', किए कवित सौ एक॥
'अध्यातम बत्तीसिका' 'पपडी' 'फाग धमाल'।
कीनी 'सिन्धुचतुर्दशी' फूटक कवित्त रसाल॥
'शिवपच्चीसी भावना' 'सहस अठोत्तर नाम'।
'करम छत्तीसी' 'झूलना' अन्तर रावन राम॥
बरनी आँखैं दोइ विधि, करी 'वचनिका' दोइ।
'अष्टक' 'गीत' बहुत किए, कहौं कहालौं सोइ॥

इस आत्मकथामें कविने अपना ५५ वर्षोंका चरित स्पष्टता और सत्यतापूर्वक लिखा है। कविने सत्यताके साथ जीवनकी घटनाओंका यथार्थ चित्रण करनेमें तनिक भी कोर-कसर नहीं की है। वस्तुतः कविके जीवनकी घटनाएँ इतनी विचित्र हैं, जिससे पाठकोंका सहजमें मनोरञ्जन हो सकता है। कविमें हास्यरसकी प्रवृत्ति अच्छी मात्रामें विद्यमान है, जिससे हँसी-मजाकके अवसरोंको खाली नहीं जाने दिया है। सिनेमाके चलचित्रोंके समान मनमोहक घटनाएँ प्रत्येक पाठकके मनमें गुदगुदी उत्पन्न किये बिना नहीं रह सकतीं। ६७५ दोहा और चौपाइयोंमें लिखी गयी इस आत्मकथामें कविको अपना चरित्र चित्रित करनेमें पर्याप्त

सफलता प्राप्त हुई है। अपनेको तटस्थ रखकर सत्कर्म और दुष्कर्मोंपर दृष्टि डालना तथा इन्हे जनताके समक्ष खोलकर कच्चे चिट्ठीके रूपमे रखना, कविका बहुत बड़ा साहस है। इसी साहसके कारण उनका यह आत्म-कथा-काव्य आजके पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानोके लिए अनुकरणीय है। आत्मकथाकी सफलताके लिए जिन उपादानोंकी आवश्यकता है, वे सभी उपादान इसमे विद्यमान है। अतः यह हिन्दी साहित्यमें सबसे पुराना आत्मकथा-काव्य है। भाषाकी सरलता और शैलीका सुस्पष्ट विधान इसका प्राण है। हिन्दी ससारको इसका वास्तविक रूपमे अनुसरण करना चाहिए।

सातवाँ अध्याय

रीति-साहित्य

हिन्दीमें रीतिका प्रयोग लक्षण ग्रन्थोंके लिए होता है,। जिस साहित्यमे काव्यके विभिन्न अगोंका लक्षण सोदाहरण प्रतिपादित होता है, उसे रीति साहित्य और जिस वैज्ञानिक पद्धतिपर—विधानके अनुसार यह प्रतिपादन किया जाता है, उसे रीति-शास्त्र कहते हैं। सस्कृत साहित्यमे इसे काव्य-शास्त्र कहा गया है। जैन लेखक और कवियोंने काव्य और साहित्यके विधानको रीतिके अन्तर्गत रखा है। जिस युगमे जैन साहित्यकारोने रीति-साहित्यका विवेचन किया था, उस युगमे देशका राजनीतिक और आर्थिक पराभव अपनी चरम सीमातक पहुँच गया था। भारतकी कला उत्कर्षके चरम विन्दुपर पहुँचनेके उपरान्त अगतिकी ओर अग्रसर हो रही थी। अप्रतिहत मुगलवाहिनी पश्चिमोत्तर प्रान्तोंमें लगातार तीनबार असफल रही, जिससे धन-जनकी हानिके साथ मुग़ल साम्राज्यको भी भारी धक्का लगा। यद्यपि बाहरसे भारत सम्पन्न और शक्तिशाली दिखाई देता था, पर उसके भीतर क्षयका बीज अकुरित होने लग गया था। जहाँगीरकी मस्ती और शाहजहाँके अपव्यय दोनोका परिणाम देशके लिए अहित-कर हुआ।

मुगल सम्राटोंके समान ही हिन्दू राजाओंकी स्थिति थी। बहु-पत्नीत्वकी प्रथा रहनेके कारण राजपूत राजाओके रनिवासमे आन्तरिक कलह और ईर्ष्याका नग्न नृत्य होता था। अहकारकी भावना इन राज-पूत राजाओमे इतनी अधिक थी, जिससे पुत्र भी पिताकी हत्या करनेको तैयार था। फलतः इस विषम राजनीतिक परिस्थितिमे हिन्दू और मुसलमान

दोनों ही अपना नैतिक बल खो बैठे थे। दोनों ही निर्बाध इन्द्रियलिप्सामे रत थे। कवि और कलाकार अमीर, रईस और राजाओंके आश्रममे पहुँच-कर इन्हीं उच्चवर्गके व्यक्तियोकी कामपिपासाको उत्तेजित करनेमे संलग्न थे। उस श्रृंगारिक और विलासिताके युगमे बाह्य और आन्तरिक जीवन-की स्वस्थ अभिव्यक्तिका मार्ग अवरुद्ध हो चुका था। जन-साधारणकी वृत्तियाँ बहिर्मुखी होकर अस्वस्थ कामविलासमे ही अपनेको व्यक्त करती थीं। राजा, महाराजा और रईस बाह्य जीवनसे त्रस्त होकर अन्तःपुरकी रमणियोंकी गोदमें शान्तिका अनुभव करते थे। नैराश्यने अतिशय विला-सिताका रूप ग्रहण कर लिया था।

इस युगमें हिन्दू धर्मकी स्थिति और भी दयनीय थी। जीवनमे विलासिता आ जानेके कारण साधना और तत्त्वचिन्तनमे शैथिल्य आ गया था। धर्मका तात्त्विक विकास बिल्कुल अवरुद्ध हो गया था, भक्ति और सेवा-अर्चनोंमे ऐश्वर्य और विलासने स्थान पा लिया था। विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायोंमे अन्धविश्वास और रूढ़ियोंने घर कर लिया था। जिससे धर्म भी श्रृंगार और विलासके पोषणका साधन बन गया था। भक्तिकालके राधा-कृष्ण एक साधारण नायक-नायिकाके पदपर आसीन हो गये थे। मठ और मन्दिर देवदासियोंके चरणोकी छम-छमसे गूँजते रहते थे। जनताका बौद्धिक ह्रास हो जानेके कारण साहित्यस्रष्टा और कलाकारोको भी विलास और शृङ्गारको उत्तेजित करना आवश्यक-सा हो गया था। फलतः हिन्दी साहित्यमे नायक-नायिका-भेदपर सैकड़ो काव्य लिखे गये तथा हिन्दी कवियोने लक्षण ग्रन्थोंके साथ शृङ्गारका खुला निरूपण किया। जीवनके मूलगत गम्भीर प्रश्नोके समाधानकी ओर कवियोका बिल्कुल ध्यान ही नहीं गया। अतएव हिन्दी रीति-साहित्यमे आध्यात्मिकताका तो पूर्ण अभाव है ही, पर प्रकृतिकी दृढ़ कठोरता भी नही है। जीवनकी अनेकरूपता, जो कि किसी भी भाषाके साहित्यके लिए स्थायी सम्पत्ति है इस युगके साहित्यमे उसका प्रायः अभाव है।

रीतिकालकी सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियोंने भाषा और कविता दोनोको अलकृत किया है। समयकी रुचि और तदाश्रित काव्य-प्रेरणा अलकरणके अनुकूल थी, अतः काव्यके रूप-आकारको सजानेका पूरा प्रयत्न किया है।

हिन्दीके रीतिग्रन्थ प्रायः काव्यप्रकाश, शृङ्गार-तिलक, रसमजरी, चन्द्रालोककी विषय-निरूपण-शैलीपर रचे गये हैं। विषयका पिष्ट-पेषण होनेके कारण कोई नयी उद्भावना रस, अलंकार या शब्द शक्तिके सम्बन्धमें नहीं हुई। सस्कृत साहित्यके समान शृङ्गारको ही रसराज मानते हुए नायक-नायिकाओंके भेद-प्रभेदोमे ही बालकी खाल निकालकर कलाकार कवि-कर्मकी इतिश्री समझते रहे।

परन्तु जैन कलाकारोने इस विलासिताके युगमें भी वहिर्मुखी वृत्तियों-का सकोच और अन्तर्मुखी वृत्तियोंके प्रसार-द्वारा अन्तस्‌के प्रकाशको प्राप्त कर चिर-सत्य एवं चिर-सुन्दरकी आधारभूमिपर आरूढ़ हो शान्तरस-में निमज्जन किया है। महाकवि वनारसीदासने शृंगारी कवियोकी भर्त्सना करते हुए कहा है—

ऐसे मूढ कु-कवि कुधी, गहैं मृषा पथ दौर।
रहै मगन अभिमान में, कहैं औरकी और॥
वस्तु सरूप लखें नहीं, वाहिज दृष्टि प्रमान।
मृषा विलास विलोकके, करें मृषा गुनगान॥

कविने शृगारी कवियोंके मृषा गुनगानका विश्लेषण करते हुए बताया है—

माँस की ग्रन्थि कुच कंचन कलस कहैं,
कहैं मुखचन्द जो सलेपमा को घरु है।
हाड के दशन आहि हीरा मोती कहै ताहि,
माँस के अधर ओठ कहै बिंबफरु है॥

हाड दम्भ भुजा कहे कौलनाल काम जुधा,
हाड ही के थंभा जंघा कहे रंभा तरु है।
यों ही झूठी जुगति बनावैं औ कहावैं कवि,
एते पै कहैं हमें शारदाको वरु है॥

जैन काव्यकी वैराग्योन्मुख प्रवृत्तिका विश्लेषण करनेपर निम्न निष्कर्ष निकलते हैं—

(१) इसका मूलाधार आत्मानुभूति या प्रथम गुण है। इसमे पार्थिव एव ऐन्द्रिय सौन्दर्यके प्रति आकर्षण नही है। अपार्थिव और अतीन्द्रिय सौन्दर्यके रहस्य सकेत सर्वत्र विद्यमान है।

(२) रागात्मिका प्रवृत्तिको उदात्त और परिष्कृत करना तथा जीवनोन्नयनके लिए तत्त्वज्ञानका आश्रय लेना। जीवन-साधना स्वानुभव या तत्त्वज्ञानके अनुभव-द्वारा ही होती है, अतः तत्त्वज्ञानको जीवनमे उतारना तथा जीवनकी वास्तविकताओसे आमने-सामने खड़े होकर टक्कर लेने में सम्पूर्ण चेतनाका उपयोग करना।

(३) वासनाके स्थानपर विशुद्ध प्रेमको अपनाना और आदर्शवादी बलिदानकी भावनाको जीवनमे उतारना।

(४) तरलता और छटाके स्थानपर आत्माकी पुकार एव स्वस्थ जीवन-दर्शनको उपस्थित करना।

(५) जीवनके मूलगत प्रश्नोका समाधान करते हुए उद्बुद्ध जीवनकी गहन मनोवैज्ञानिक और सामाजिक समस्याओसे अभिज्ञ करना।

(६) घोर अव्यवस्थासे क्षत-विक्षत सामन्तवादके भग्नावशेषकी छाया-मे त्रस्त और पीड़ित मानवको वैयक्तिक स्फूर्ति और उत्साह प्रदान करना।

(७) जीवन पथको, नैराश्यके अन्धकारको दूरकर आशाके संचार-द्वारा आलोकित करना एव विलास जर्जर मानवमे नैतिक बलका सचार करना।

कविवर भूधरदासने कवियोको बोध देते हुए बताया है कि बिना सिखाये ही लोग विषयसुख सेवनकी चतुरता सीख रहे हैं, तब रसकाव्य

रचनेकी क्या आवश्यकता ? जो कवि विषय-काव्य रचकर जनता-जनार्दनको विषयोंकी ओर प्रेरित करते है, वे मानव-समाजके शत्रु हैं। ऐसे कुकवियोसे सत्साहित्यके 'जीवनका निर्माण और उत्थान' कभी सिद्ध नहीं हो सकता है। कामुकताकी वृद्धि करना कविकर्मके विपरीत है, अतएव कोरी शृगारिकताको प्रश्रय देना उचित नहीं है।

> राग उदय जग अन्ध भयो, सहजे सब लोगन लाज गँवाई।
> सीख विना नर सीखत है, विषयानिके सेवनकी सुघराई॥
> तापर और रचैं रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई।
> अन्ध असूझनिकी अँखियान मे झोंकत हैं रज रामदुहाई॥

जहॉ शृगारी कवियोंने स्तनोको स्वर्णकलशोकी और उनके श्यामल अग्रभागको नीलमणिकी ढॅकनीकी उपमा दी है, वहॉ कवि भूधरदासने क्या ही सुन्दर कल्पना-द्वारा भावाभिव्यञ्जन किया है—

> कंचन कुम्भनकी उपमा, कहि देत उरोजनको कवि वारे।
> ऊपर श्याम विलोकतके मनिनीलम ढँकनी ढँक ढारे॥
> यो सत वैन कहे न कु-पण्डित, ये युग आमिष पिण्ड उघारे।
> साधन झार दई मुँह छार, भये इहि हेत किधौं कुच कारे॥

जैन साहित्यमे अन्तर्मुखी प्रवृत्तियोंको अथवा आत्मोन्मुख पुरुषार्थको रस वताया है। जबतक आत्मानुभूतिका रस नहीं छलकता रसमयता नहीं आ सकती। विभाव, अनुभाव और संचारीभाव जीवके मानसिक, वाचिक और कायिक विकार हैं, स्वभाव नहीं है। रसोका वास्तविक उद्भव इन विकारोके दूर होनेपर ही हो सकता है। जबतक कषाय—विकारोंके कारण योगकी प्रवृत्ति शुभाशुभ रूपमें अनुरंजित रहती है, आत्मानुभूति नहीं हो सकती। शुभाशुभ परिणतियोके नाश होनेपर ही शुद्धानुभूतिजन्य आत्मरस छलकता है, इसी

रस-सिद्धान्त

कारण लौकिक रूपमे रस-विरस है। महाकवि बनारसीदासने रसकी अलौकिकताका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है—

जब सुबोध घटमें परगासै। नवरस विरस विषमता नासै॥
नवरस लखै एक रस माहीं। तातें विरसभाव मिटि जाहीं॥

अर्थात् जब हृदयमे विवेक—यथार्थ ज्ञानका प्रकाश होता है, तब रसोकी विरसता और विषमताका नाश हो जाता है, और निरन्तर आत्मानुभूति होने लगती है।

तीव्र राग ही क्लान्त होकर जब वैराग्यसे परिणत हो जाता है, तब आत्मचिन्तन उत्पन्न होता है और इच्छा-सुन्दर रमणियोमे प्रीति, मूर्छा—बाह्य वस्तुओंके साथ एकमेक रूप होनेके परिणाम, काम—इष्ट वस्तु अभिलाषा, स्नेह—विशिष्ट प्रेम, गार्ध्य—अप्राप्त वस्तुकी इच्छा, अभिनन्द—इष्ट वस्तुकी प्राप्ति होनेपर सन्तोष, अभिलाषा—इष्ट वस्तुकी प्राप्तिके लिए मनोरथ एव ममत्व—यह वस्तु मेरी है का परिष्कार होता है। रसानुभूति अलौकिक रूपसे प्रशम—रागादिकका उत्कृष्ट शम, गुणके आविर्भूत होनेपर ही होती है। जैन कवियोकी अनुभूतिका धरातल बहुत गहरा है। इन कलाकारोंने अपनी पैनी दृष्टि डालकर सूक्ष्म-तरल भावनाओंके साथ क्रीड़ा करते हुए आत्म-सौन्दर्यको ग्रहण किया और इन्द्रिय-विलाससे दूर रहकर आत्मलोकमें विचरण करनेका प्रयास किया है।

जैन साहित्य-निर्माताओंने इसका प्रयोग आत्मानन्दके अर्थमें किया है। रसको महाकवि बनारसीदासने चिदानन्दस्वरूप माना है। समाधि या ध्यान-द्वारा जिस आनन्दकी अनुभूति होती है, वही आनन्द तत्कालके सहज साक्षात्कार-द्वारा उपलब्ध होता है। यों तो जैन साहित्यमे पुद्गलके रूप, रस, गन्ध और स्पर्श इन चार प्रधान गुणोंमें रसको गुणके रूपमे परिगणित किया है।

लौकिकरूपमें रसका प्रयोग जैनसाहित्यमे अनेक स्थलोपर हुआ है।

"रस्यन्ते अन्तरात्मनाऽनुभूयन्ते इति रसास्तत्सहकारिकारणसन्निधानेषु चेतोविकारविशेषेषु रसाः शृंगारादयः"[1]। अर्थात् अन्तरात्माकी अनुभूतिको रस कहते हैं तथा इसमें सहकारी कारण मिलनेपर जो मनमें विकार उत्पन्न होता है, वह शृङ्गारादिरूप रस कहलाता है। इसीको स्पष्ट करते हुए कहा है—

> बाह्यार्थालम्बनो वस्तुविकारो मानसो भवेत्।
> स भावः कथ्यते सद्भिः तस्योत्कर्षो रसः स्मृतः॥

अर्थात्—बाह्य वस्तुके आलम्बनसे जो मानसिक विकार उत्पन्न होता है, वह भाव कहलाता है और इसी भावके उत्कर्षको रस कहा जाता है। भगवज्जिनसेनने अलंकार-चिन्तामणिमें रसका स्पष्टीकरण करते हुए बताया है—

> क्षयोपशमने ज्ञानाऽऽवृत्तिर्वीर्यान्तराययोः।
> इन्द्रियानिन्द्रियैर्जीवे त्विन्द्रियज्ञानमुद्भवेत्॥
> तेन संवेद्यमानो यो मोहनीयसमुद्भवः।
> रसाभिव्यञ्जकः स्थायिभावश्चिद्वृत्तिपर्ययः॥

अर्थ—ज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशम होनेपर इन्द्रिय और मनके द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह इन्द्रियज्ञान है। इस इन्द्रिय ज्ञानके संवेदनके साथ मोहनीय कर्मका उदय होनेपर विकृत चैतन्य पर्याय, जो कि स्थायी भावरूप है, रसकी अभिव्यक्ति कराती है।

स्थायी भावोंके स्वरूपका निरूपण करते हुए बताया है—

सम्भोगगोचरो वाञ्छाविशेषो रतिः। विकारदर्शनादिजन्यो मनोरथो हासः। स्वस्येष्टजनवियोगादिना स्वस्मिन्दुःखोत्कर्षः शोकः। रिपुकृतापकारिणश्चेतसि प्रज्वलनं क्रोधः। कार्येषु लोकोत्कृष्टेषु स्थिरतरप्रयत्नः उत्साहः। रौद्रविलोकनादिना अनर्थाशङ्कनं भयम्। अर्थानां दोषविलो-

---

1. अभिधानराजेन्द्र 'रस' शब्द।

कनादिभिर्गर्हा जुगुप्सा। अपूर्ववस्तुदर्शनादिना चित्तविस्तारो विस्मयः। विरागत्वादिना निर्विकारमनस्त्वं शमः।

अर्थात्—सम्भोगसम्बन्धी इच्छा विशेषको रति; विकृत वस्तुके देखने पर जो मनोविनोदकी वाञ्छा उत्पन्न होती है, उसे हास; इष्ट व्यक्तिके वियुक्त होनेपर जो शोक उत्पन्न होता है, उसे शोक; शत्रु या अन्य उपकारीके प्रति मनमे जलन—सन्ताप उत्पन्न होना क्रोध, लोकके उत्कृष्ट कार्योंमे दृढ़ प्रयत्न करना उत्साह, भयानक वस्तुको देखकर उससे अनर्थकी आशका करना भय; पदार्थोंके दोष देखनेसे उत्पन्न होनेवाली घृणा जुगुप्सा; अद्वितीय वस्तुके देखनेसे मनको विस्तृत करना विस्मय एवं विरक्ति आदिके द्वारा मनका निर्विकारी होना शम है।

इन स्थायी भावोंकी अभिव्यक्त दशाका नाम रस है। वाग्भटालकारमे जैनाचार्यने इसी तथ्यका प्रकटीकरण करते हुए कहा है—

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
आरोप्यमाण उत्कर्षं स्थायीभावः स्मृतो रसः॥

अर्थात्—हमारे हृदयस्थित रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और शमभाव स्थायी रूपसे निरन्तर विद्यमान रहते हैं। जब ये ही भाव अवसर पाकर–विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी भावोंके द्वारा उत्कर्षको प्राप्त होते हैं—जाग उठते है, तो रसकी अनुभूति होती है। तात्पर्य यह है कि मानव-हृदयमे सदैव प्रसुप्तावस्थामे विद्यमान रहनेवाले मनोविकारोंसे रसकी सिद्धि होती है।

जैन साहित्य-निर्माताओंने लौकिक और अलौकिक दोनो ही अवस्थाओंमें अनिर्वचनीय आनन्दको रस कहा है। कविता पढने या सुनने और नाटक देखनेसे पाठक, श्रोता या दर्शकको अद्वितीय, सासारिक वस्तुओंमे अप्राप्य आनन्द उपलब्ध होता है, जो शब्दोंके द्वारा अभिव्यक्त नही किया जा सकता है, वही काव्यमे रस कहलाता है। वस्तुतः काव्य

या साहित्यमे असाधारण आनन्दको सचारित करनेवाला रस अवश्य रहता है। निश्चय नयकी शैलीके अनुसार आत्मानुभूति ही रस है तथा साहित्यमे यही आत्मानुभूति-विद्यमान रहती है। यद्यपि मानसिक विकार और भाव जो काव्य-द्वारा उद्बुद्ध होते है, विरस हैं; परन्तु लौकिक दृष्टिसे ये भी आनन्दानुभूतिको ही उत्पन्न करते हैं।

जैन हिन्दी रीति साहित्यमें महाकवि बनारसीदासने अपने मौलिक चिन्तन-द्वारा रसोंके स्थायी भावोंके सम्बन्धमें नवीन प्रकाश डाला है। प्राचीन परम्परासे प्राप्त स्थायी भावोंकी अपेक्षा बनारसीदासकी कल्पना कितनी वैज्ञानिक और तथ्यपूर्ण है, यह निम्न विवेचनसे स्पष्ट है। महाकविने श्रृंगार रसका स्थायी भाव शोभा, हास्य रसका आनन्द, करुण रसका कोमलता, रौद्र रसका क्रोध, वीर रसका पुरुषार्थ, भयानक रसका चिन्ता, वीभत्स रसका ग्लानि, अद्भुतका आश्चर्य और शान्त रसका स्थायी भाव वैराग्य माना है। यद्यपि रौद्र, अद्भुत, वीभत्स और शान्त रसके स्थायी भाव प्राचीन परम्परासे साम्य रखते हैं, पर शेष रसोंके स्थायी भावोंकी उद्भावना बिल्कुल नवीन है[1]।

श्रृंगार[2] रसका स्थायी भाव शोभा रति स्थायी भावकी अपेक्षा

---

१. शोभा में श्रृंगार बसे वीर पुरुषारथमें,
कोमल हिये में करुणा बखानिये।
आनन्द में हास्य रुण्ड मुण्ड में विराजे रुद्र,
वीभत्स तहाँ जहाँ गिलानि मन आनिये॥
चिन्ता में भयानक अथाहता में अद्भुत,
मायाकी अरुचि तामें शान्त रस मानिये।
ये ई नव रस भव रूप ये ई भावरूप
इनको विलक्षण सुदृष्टि जगे जानिये॥

२. देखें जैनसिद्धान्त भास्कर, भाग १६ किरण १।

अधिक तर्कसंगत है। क्योकि शोभा शब्दमे जो गूढ़ अर्थ और व्यापक दृष्टिकोण निहित है, वह रतिमें नहीं। रतिको स्थायी भाव मान लेनेसे सबसे बडी आपत्ति यह आती है कि एक ही विषय-भोगसम्बन्धी चित्रके देखनेसे मुनि, कामुक और चित्रकारके हृदयमे एक ही प्रकारकी भावनाएँ उद्बुद्ध नहीं हो सकती। अतएव एकमात्र रतिको शृगार रसका स्थायी भाव नहीं माना जा सकता। शोभाका सम्बन्ध मानसिक वृत्तिसे होनेके कारण इसका विशाल और व्यापक अर्थ ग्रहण किया जाता है। शोभा—सौन्दर्य की ओर मन, वचन और कायकी एकनिष्ठता होनेपर ही शृंगार रसकी अनुभूति होती है। अतएव सौन्दर्यमे ही चित्तवृत्ति तल्लीन होती है, जिससे शृंगारका अनुभव होता है।

हास्य रसका स्थायी भाव आनन्द मान लेनेसे इस रसकी उत्पत्ति अधिक वैज्ञानिक मालूम पड़ती है। हँसी तो कभी-कभी ऊबकर या खीझ-कर भी आती है, पर इस हँसीसे हास्यरसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। हँसना कई प्रकारका होता है, दूसरोको अवाञ्छनीय मार्गपर जाते देखकर दुःखकी स्थितिमे हँसी आ जाती है, पर यहाँ हास्य रसकी अनुभूति नहीं है। क्योकि इस प्रकारकी हँसीमे एक वेदना छिपी रहती है। कभी-कभी कौतूहल होनेपर भी किसी ऊटपटाग कार्यको देखकर यो ही हँसी आ जाती है, परन्तु हास्य रसकी अनुभूति नहीं होती। इस प्रकारके स्थलोंमे प्रायः करुणावृत्ति हमारे हृदयमे उद्बुद्ध होती है तथा करुण रसकी ही अनुभूति होती है।

आनन्द स्थायी भाव स्वीकार कर लेनेपर उक्त दोष नहीं आता। जिन मनोरंजन और भोलेपनसे परिपूर्ण शुभ सवादोंको सुनते हैं और जिन प्रवृत्तियोंके द्वारा किसीकी हानि नहीं होती तथा मनबहलावका वातावरण तैयार हो जाता है, उस समय आनन्दकी अवस्थामे हास्य रसकी उत्पत्ति होती है। अभिप्राय यह कि हास्यरसका सम्बन्ध वस्तुतः आनन्दसे है, केवल हाससे नहीं। जबतक अन्तसमे आनन्दका सचार नहीं होगा,

तबतक हास्य रसानुभूतिका होना सम्भव नहीं। आन्तरिक आह्लादके होनेपर ही हास्य रसानुभूति होती है, अतएव आनन्दको इस रसका स्थायी भाव मानना तर्कसगत और वैज्ञानिक है।

प्राचीन परम्परामे करुण रसका स्थायी भाव शोक माना गया है, परन्तु महाकविने कोमलताको इसका स्थायी भाव माना है। कारण स्पष्ट है कि शोकके मूलमें चिन्ता रहती है तथा चिन्तामे भयकी उत्पत्ति होती है, अतएव केवल शोक करुण रसका संचार नहीं कर सकता है। करुणा-का शब्दार्थ दया है और दया उसी व्यक्तिके हृदयमें उत्पन्न होगी, जिसके अन्तःकरणमे कोमलता रहेगी। कोमलताके अभावमे करुणा वृत्तिका उत्पन्न होना सम्भव नहीं है, अतएव करुण रसका स्थायी भाव कोमलता-को मानना अधिक तर्कसगत है।

कोमलतामें उदारता और समरसताका समन्वय या संतुलन है। यह स्वयं अपने आपमे सरल,निर्मल और निष्कलुष है। आधुनिक मनोविज्ञान-वेत्ताओंने शोकमें अन्तर्द्वन्द्वजन्य चिन्ताका मिश्रण स्वीकार किया है। तात्पर्य यह है कि आन्तरिक कठिनाइयोंके कारण शोकका प्रादुर्भाव होता है, जिससे करुण रसकी अनुभूति नहीं हो सकती। हाँ, कोमलतामे करुणा-वृत्तिका रहना अवश्यभावी है, अतएव शोककी अपेक्षा कोमलता ही करुण-रसका विज्ञान-सम्मत स्थायीभाव है। इस वृत्तिमे चित्तका लचीलापन विशेषरूपसे विद्यमान है।

वीररसका पुरुषार्थ स्थायी भाव मानना अधिक वैज्ञानिक है, क्योंकि उत्साह किसी कारण ठढा भी हो सकता है, किन्तु पुरुषार्थमे आगेकी ओर बढ़नेकी भावना अन्तर्निहित है। किसीके वीररस सम्बन्धी काव्यको पढ़कर उत्साहका आना न आना निश्चित नहीं है, किन्तु पुरुषार्थ— कार्य-साधनकी तीव्र लगनका उत्पन्न होना परम आवश्यक है। पुरुषार्थ एक सजीव प्रवृत्ति है, पर उत्साह अन्यपर अवलम्बित रहनेवाली भावना है।

महाकविने भयानक रसका स्थायीभाव चिन्ताको माना है; क्योंकि

किसी भयानक दृश्यको देखकर भय उत्पन्न हो ही अथवा किसीके द्वारा डराये जानेपर भयकी भावना जाग्रत हो, इसका कोई निश्चय नहीं। जब-तक चिन्ता उत्पन्न नहीं होती तबतक भय उत्पन्न नहीं हो सकता। चिन्ता शब्द भयकी अपेक्षा अधिक व्यापक है। यद्यपि चिन्ता और भय एक दूसरेके पृष्ठपोषक हैं, किन्तु चिन्ताके उत्पन्न होनेपर भयकी भावनाका जाग्रत होना आवश्यक-सा है। इस प्रकार स्थायीभावों और रसोंके विवेचनमे जैनसाहित्यकारोंने मौलिक चिन्तन उपस्थित किया है।

रसराज जैन साहित्यमे शान्तरसको स्वीकार किया है। इस रसका स्थायीभाव वैराग्य या शमको माना है; तत्त्वज्ञान, तप, ध्यान, चिन्तन, समाधि आदि विभाव हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोहके अभाव अनुभाव हैं; धृति, मति आदि व्यभिचारी भाव हैं। वस्तुतः न जहाँ राग-द्वेष हैं, न सुख-दुःख हैं, न उद्वेग-क्षोभ हैं और सब प्राणियोंमे समान भाव है, वहाँ शान्त रसकी स्थिति रहती है। मानव अहर्निश शान्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है, उसका प्रत्येक प्रयत्न शान्तिके लिए होता है। भौतिकवाद और देहात्मवादसे कभी शान्ति नहीं मिल सकती, अतएव शान्तरसको रसराज मानना समीचीन है। जिस प्रकार छोटे-छोटे निर्झर किसी समुद्रमे मिल जाते है, उसी प्रकार सभी रसोका समावेश शान्तरसमे हो जाता है। जैसे नदियों और झरनोंका समुद्रमें मिलना स्वभावसिद्ध है, प्रकारान्तरसे नदियोका उद्गम स्रोत भी समुद्रका जल ही है, इसी प्रकार मानव-जीवनकी समस्त प्रवृत्तियोका उद्गम शान्तिसे तथा समस्त प्रवृत्तियोका विलयन भी शान्तिमे ही होता है। शान्तिका अक्षय भण्डार आत्मा है, जब यह देह आदि परपदार्थोंसे अपनेको भिन्न अनुभव करने लगती है, उस समय शान्त रसकी उत्पत्ति होती है। यह अहकार, राग-द्वेषसे हीन, शुद्ध ज्ञान और आनन्दसे ओत-प्रोत आत्मस्थिति है। यह स्थिति चिरस्थायी है, रति, उत्साह आदि अन्य मनोदशाओंका आविर्भाव इसीमे होता है।

जैन साहित्यकारोने वैराग्योत्पत्तिके दो साधन बतलाये है—तत्त्वज्ञान

और इष्टवियोग तथा अनिष्टसयोग। इनमे पहला स्थायी भाव है और दूसरा सचारी। आजका मनोविज्ञान भी उक्त जैन कथनका समर्थन करता है, क्योंकि इसके अनुसार रागकी क्लान्त अवस्था ही वैराग्य है। महाकवि देवने भी वैराग्यको रागकी अतिशय प्रतिक्रिया माना है। इनके मतानुसार तीव्र राग ही क्लान्त होकर वैराग्यमे परिणत हो जाता है। अतएव शान्त रसमे मनकी विभिन्न दशाओंका रहना आवश्यक है।

डा० श्री भगवानदासने अपने रस-मीमासा निबन्धमे शान्त रसका रसराजत्व अत्यन्त सुचारु ढंगसे सिद्ध किया है। उनका कथन है कि "इस महारसमें अन्य सब रस देख पडते हैं, यह सबका समुच्चय है। श्रेष्ठ और श्रेष्ठ अन्तरात्मा परमात्माका (अपने पर) परमप्रेम, महा-काम, महाशृंगार, (अकामः सर्वकामो वा···), संसारकी विडम्ब-नाओंका उपहास, संसारके महातमस् अन्धकारमें भटकते हुए दीन जनोंके लिए करुणा (संसारिणां करुणयाऽऽह पुराणगुह्यम्), षड्-रिपुओंपर क्रोध (क्रोधे क्रोधः कथन्न ते), इनको परास्त करने, इन्द्रियों-की वासनाओंको जीतने, ज्ञान-दानसे दीनजनोंकी सहायता करनेके लिए उत्साह (युयोध्यस्मज्जुहराणमेन), अन्तरारि षड्रिपु कहीं असावधान पाकर विवश न कर दें इसका भय (नरः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च), इन्द्रियोंके विषयोंपर और हाड-मांसके शरीरपर जुगुप्सा (मुखं लालाक्लिन्नं पिबति चषकं सासवमिव···अहो मोहान्धानां किमिव रमणीयं न भवति), और क्रीड़ात्मक लीला-स्वरूप अगाध, अनन्त जगत्‌का निर्माणविधान करानेवाली परमात्माकी (अपनी ही) शक्तिपर महाविस्मय (त्वमेवैकोऽस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयंभुव ······।)—सभी तो इस रसके अन्तर्भूत हैं।"

महाकवि बनारसीदासने शान्त रसका रसराजत्व सिद्ध करते हुए आत्मामे ही नवो रसोकी स्थिति स्वीकार की है। डा० भगवानदासजीने जिस प्रकार ऊपर शान्तरसको सस्कृत साहित्यके उद्धरणोके साथ रसराज

सिद्ध किया है, उसी प्रकार जैन कविने आत्मानुभूति और मौलिक चिन्तन-द्वारा आत्मस्वरूप शान्त रसमे सभी रसोका अन्तर्भाव किया है—

गुन विचार सिंगार, वीर उद्यम उदार रुख।
करुना समरस रीति, हास हिरदै उछाह सुख ॥
अष्ट करम दल मलन, रुद्र वरतै तिहि थानक।
तन विलेच्छ बीभच्छ, दुन्द मुख दसा भयानक ॥
अद्भुत अनन्त बल चिन्तवन, सान्त सहज वैराग ध्रुव।
नव-रस विलास परगास तव, सुबोध घट प्रगट हुव ॥

अर्थात्—आत्माको ज्ञान गुणसे विभूषित करनेका विचार शृंगार, कर्म निर्जराका उद्यम वीररस, सब जीवोको अपने समान समझना करुण-रस, हृदयमे उत्साह और सुखका अनुभव करना हास्यरस, अष्ट कर्मोंको नष्ट करना रौद्ररस, शरीरकी अशुचिताका विचार करना वीभत्स रस, जन्म-मरणादिका दु.ख चिन्तन करना भयानक रस, आत्माकी अनन्त शक्तिको प्राप्त कर विस्मय करना अद्भुत रस और दृढ वैराग्य धारण करना तथा आत्मानुभवमे लीन होना शान्त रस है।

वैराग्यके साधन तत्त्वज्ञान-प्राप्तिके गुणस्थानरूप चौदह सोपान बतलाये गये हैं। पर रस विश्लेषणमें चार ही सोपान प्रधान हैं। सबसे प्रथम जगत्की वास्तविकताका ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। विभिन्न नामरूपात्मक यह जगत् मानव मनको नाना प्रलोभनो-द्वारा अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है; जिससे अहंकार और ममकारका सयोग होनेसे विभिन्न मानसिक विकारोकी उत्पत्ति होती है। जब षट्द्रव्यों—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालका वास्तविक परिज्ञान होता है और आत्माकी (जीवकी) इन सब द्रव्योसे भिन्नत्व प्रतीति होने लगती है, उस समय प्रथम अवस्था—चतुर्थ गुणस्थान—आत्मानुभूति रूप सम्य-ग्दर्शनकी स्थिति आती है। यह रस अवस्था व्यापक है, इसमे आत्म-

शोधनकी प्रवृत्ति होती है, विभावसे हटकर स्वभाव रूप प्रवृत्ति होने लगती है। ऐन्द्रियिक सुख, उसका राशि-राशि सौन्दर्य सभी क्षणिक प्रतीत होने लगते हैं। मनुष्यका रूप, गौरव, वैभव, शक्ति, अहकार कितने क्षणभगुर है और इनकी क्षणभगुरतामें कितना कारुण्य विद्यमान है। अतः आत्म-दर्शनकी उत्पत्ति होना प्रथम अवस्था है।

प्रमादका, जिसके कारण सासारिक सुख-दुःख, उत्थान-पतन व्यापते हैं तथा स्वोत्थानकी प्रवृत्तिमे अनुत्साहकी भावना रहती है और आत्मोन्मुखरूप होनेवाला पुरुषार्थ ठढा पड़ जाता है, परिष्कार करना और इसे दूर करनेके लिए कटिबद्ध हो जाना वैराग्यकी द्वितीयावस्था है। तत्त्वचिन्तन द्वारा ही प्रमादको दूर किया जा सकता है, अतएव आत्मानुभवी अपने पुरुषार्थ-द्वारा शान्तरसकी उपलब्धिके लिए इस द्वितीय अवस्था को प्राप्त करता है। इस अवस्थामे भी नवो रसोंकी अनुभूति होती है।

तृतीय अवस्था उस स्थलपर उत्पन्न होती है, जब कषाय वासनाओ का पूर्ण अभाव हो जाता है। पूर्ण शान्तिमे बाधक कषाये ही हैं, अतएव इनके दूर होते ही आत्मा निर्मल हो जाती है। तत्वज्ञानकी चौथी अवस्था केवलज्ञानके उत्पन्न हो जानेपर पूर्ण आत्मानुभूति होती है। इस अवस्थामें पूर्णशान्तरस छलकने लगता है, आत्मा ही परमात्मा बन जाती है। आनन्दसागर लहराने लगता है।

महाकवि बनारसीदासने शान्तरसकी इन चारो अवस्थाओका सुन्दर विश्लेषण किया है। कविने अखण्ड-शान्तिको ही सर्वोत्कृष्ट शान्तरस माना है।

> वस्तु विचारत ध्यावते, मन पावै विसराम।
> रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभव याको नाम॥

अर्थात्—अखण्ड शान्तिका अनुभव ही सबसे बड़ा सुख है, यही रस है और इसीके द्वारा मानव अपना अभीष्ट साधन कर सकता है। सर्व-

प्राणी समभाव भी इसीसे हो सकता है। अतएव "नवमो सान्त रसनिको नायक" मानना युक्ति सगत है।

रस-सिद्धान्तके निरूपणमें कवि बनारसीदासने जितनी मौलिकता दिखलाई, उतनी अन्य जैन कवियोंने नहीं। इन्होंने स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और सञ्चारीभाव इन चारो ही रसाङ्गोका नवीन दृष्टिकोणसे विवेचन किया।

रस-सिद्धान्तपर सवत् १६७० मे मानसिंह कविने 'भाषा-कवि-रस मञ्जरी' शृङ्गाररस विषयक रचना लिखी है। इसमें रीति कालके अन्य कवियोंके समान नायिका-भेदपर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि विभाव, अनुभावोका विश्लेषण कषाय और वासनाओके अनेक भेद-प्रभेदोके विवेचन-द्वारा किया है, परन्तु नवीनता कुछ भी नही है। शृङ्गाररस और नायिका-भेदपर मानकविकी सयोग द्वात्रिंशिका (१७३१), उदय-चन्दका अनूप रसाल (१७२८) और उदैराजका वैद्यविरहणि प्रबन्ध (१७७२) भी उपलब्ध हैं।

इन जैन साहित्यस्रष्टाओंने रस-विश्लेषणमें मूलतः स्थायी भावोंकी स्थिति राग-द्वेष मनोविकारमें मानी है। क्योंकि समस्त मनोवेगोका सीधा सम्बन्ध इन्हीं दोनो भावोंसे है। मानवका अहभाव इन्ही दोनोंके रूपमे अभिव्यजित होता है। अतएव रति, हास, उत्साह और विस्मय साधारणतः अहभावके उपकारक होनेके कारण रागके अन्तर्गत और शोक, क्रोध, भय और जुगुप्सा अहभावके उपकारक होनेके कारण द्वेषके अन्तर्गत आते हैं। जब राग और द्वेप दोनोंका परिमार्जन हो जाता है, तब वैराग्य—निर्वेदभावकी उत्पत्ति होती है। यह अहंभावकी समरसता की अवस्था है, आत्मा इसमें स्वोन्मुख रूपसे प्रतिभासित होने लगती है। लौकिक दृष्टिसे प्रथम चार भाव मधुर होनेके कारण सुखकी अभिव्यक्ति और दूसरे चार भाव कटु होनेके कारण दुःखकी अभिव्यक्ति करते है। इसप्रकार जैन लेखकोंने भावोंकी स्थिति राग और द्वेषके अन्तर्गत मान-

कर रसका विश्लेपण किया है। रससख्या और भावोकी संख्या रीति-कालके अन्य कवियोके समान ही मानी है।

सस्कृत साहित्यके जैन कवियोंके समान हिन्दी भापामे भी जैन कवियोने अलकारपर ग्रन्थ-रचना की है। जिस प्रकार भारतीय साहित्यमे अलकार-परम्पराका भी क्रमिक विकास हुआ है उसी प्रकार जैन साहित्यमे भी अलंकारोका क्रमिक विकास विद्यमान है। अलकार-चिन्तामणिमे भगवज्जिनसेनाचार्यने चित्रालकार और यमकालकारके भेद-प्रभेदोकी सख्या पचाससे भी अधिक वतलाई है। हिन्दीभापामे कुँवर-कुशलका लखपतजयसिन्धु और उत्तमचन्द्रका अलकारआशय मजरी प्रसिद्ध है। इन दोनो ग्रन्थोमें अलकार और अलंकार्यका भेद स्पष्ट किया गया है। रस (भाव), वस्तु और अलकार तीनोकी पृथक् स्थिति मानी गयी है। अलंकार रसका उपकार करता है—तीव्रतर वनाता है तथा वस्तुके चित्रणमें रमणीयता या आकर्पण उत्पन्न करता है। अतएव रस (भाव) और वस्तु दोनों अलकार हैं और अलकार उनके अलकरणका साधन है।

अलंकार

रस काव्यकी आत्मा है, पर इसकी वास्तविक स्थिति अलकारके विना वन नहीं सकती। क्योकि भावमे रमणीयता, कोमलता, सूक्ष्मता और तीव्रता साधारण शब्दोके द्वारा नहीं आ सकती है। उक्तिकी चमत्कके द्वारा ही भावमे सौन्दर्य या रमणीयता उत्पन्न होती है। अतएव सुन्दर भावोकी अभिव्यंजनाके लिए सुन्दर उक्तियोंका होना भी आवश्यक है। जैन साहित्यमे ही नहीं, अपितु समस्त भारतीय साहित्यमे शब्द और अर्थको विल्कुल भिन्न नहीं माना है। अतएव अनुभूति और अभिव्यक्तिमे भी पार्थक्य नहीं है। अतः शब्दोमे रमणीयता उत्पन्न करनेवाला साधन अलकार काव्यकी आत्मा न होकर भी काव्यके रूप-प्रसाधनके लिए अनिवार्य है। जिस प्रकार आत्माकी रमणीयताके लिए शरीरका रमणीय होना भी आवश्यक है, उसी प्रकार भावोंकी रमणीयताके लिए शब्दोंका रमणीय

होना भी अनिवार्य है। शब्द और अर्थ दोनो सापेक्ष है, शब्द द्रव्य हैं तो अर्थ भाव; अतः भावके बिना द्रव्यकी स्थिति और द्रव्यके बिना भावकी स्थिति नहीं बन सकती है। दोनो ही परस्परापेक्षित है, एकको सुन्दर बनानेके लिए दूसरेका रमणीय होना आवश्यक है।

व्यावहारिक धरातलपर अलकारोके द्वारा अपने कथनको कवि या लेखक श्रोता या पाठकके मनमे भीतर तक बैठानेका प्रयत्न करता है, बातको बढा-चढाकर उसके मनका विस्तार करता है, बाह्य वैषम्य आदिका नियोजन कर आश्चर्यकी उद्भावना करता है तथा बातको घुमा-फिराकर वक्रताके साथ कहकर पाठककी जिज्ञासाको उद्दीप्त करता है। कवि अपनी बुद्धिका चमत्कार दिखलाकर पाठकके मनमे कौतूहल जाग्रत करता है। स्पष्टता, विस्तार, आश्चर्य, जिज्ञासा और कौतूहल अलकारोके आधार हैं। साधर्म्य, अतिशय, वैषम्य, औचित्य, वक्रता और चमत्कार अलकारोके मूर्तरूप हैं। उपमा, रूपक, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास आदि साधर्म्य-मूलक; अतिशयोक्ति, उदात्तसार आदि अतिशयमूलक; विरोध, विभावना, असगति, व्याघात आदि वैषम्यमूलक; यथासख्य, कारणमाला, स्वभावोक्ति आदि औचित्यमूलक, अप्रस्तुतप्रशसा, व्याजोक्ति आदि वक्रतामूलक एव यमक, श्लेप आदि चमत्कारमूलक हैं। अतएव निष्कर्ष यह है कि अलकारोका मूलाधार अतिशय, वक्रता और चमत्कार है। इन्हीं तीनोंके कारणभेदसे अलंकारोंके सहस्रो भेद किये गये है।

कवि उत्तमचन्दने अभिव्यक्तिको रमणीय बनानेका सबसे प्रबल साधन प्रस्तुतविधानको बतलाया है। प्रस्तुतकी श्रीवृद्धिके लिए अप्रस्तुतका उपयोग। यह अप्रस्तुतविधान प्रधानतः साम्यपर आश्रित रहता है। साम्य तीन प्रकारका होता है—रूपसाम्य, धर्मसाम्य और प्रभावसाम्य। अलंकारोंका प्राण या आधार यही अप्रस्तुतविधान है, इससे विभिन्न रूपों और भेदोंका आलम्बन लेकर अलंकारोंकी संख्याका वितान किया

गया है। भावोंके मानवीयकरणके लिए भी अलकारोका प्रयोग किया जाता है। इन्होंने शब्दालंकार और अर्थालकारोकी संख्या २४३ मानी है। लक्षण और उदाहरण बहुत कम अलंकारोंके दिये है।

जैन कवियोने रीति साहित्यके अन्तर्गत छन्दविधानको भी माना है, अतएव छन्द-शास्त्रविषयक रचनाएँ अनेक उपलब्ध है। स्वयभू कविका छन्दो ग्रन्थ प्रसिद्ध है ही, इसके अतिरिक्त हेम कविका छन्दमालिका (१७०६), चेतन विजयका लघुपिगल (१८४७), ज्ञानसारका मालापिंगल (१८७६), मेघराजका छन्दप्रकाश (१९ वी शती), उदयचन्दका छन्द प्रवन्ध और वृन्दावनका छन्दशतक श्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थोमें हिन्दी और सस्कृतके सभी प्रधान छन्दोके लक्षण आये हैं। जैन कवियोंने भिन्न-भिन्न स्वाभाविक अभिव्यक्तियोके लिए छन्दोंका आदर्श साँचा तैयार किया है। जितने प्रकारकी अभिव्यक्तियाँ लयके सामञ्जस्यके साथ हो सकती हैं, उनका विधान छन्दशास्त्रमे किया है।

छन्दशास्त्र

वास्तविक बात यह है कि लयका स्थान जीवनमें महत्त्वपूर्ण है। मानवकी हृत्तन्त्रियोके अतिरिक्त नदी, निर्झर, पेड़-पौधे, लता-गुल्म आदिमें सर्वत्र लय पायी जाती है। जीवनका सारतत्त्व लय ही है, इसी कारण उत्कट हर्ष, विषादके उच्छ्वासोंमें गुरुत्व और लघुत्वके कारण लयकी लहरे उठती रहती हैं। मधुर स्वर और लयको सुनकर मानवमात्रकी अन्तररागिनी तन्मय हुए विना नहीं रह सकती है। अतः छन्दविधान इसी लयको नियन्त्रित करता है, यह भाषामें रागका प्रभाव, उसकी शक्ति और उसकी गतिके नियमनके साथ अन्तर स्पन्दनको तीव्रतम बनाता है। जिस प्रकार पतग तागेके लघु-गुरु सकेतोंके अनुसार ऊँची-ऊँची उड़ती जाती है, उसी प्रकार कविताका राग छन्दके सकेतोंपर उत्तरोत्तर गतिशील होता है। नादसौन्दर्य और प्रवाहका निर्वाह छन्दमें

ही किया जा सकता है। अतएव कविताको एक सुनिश्चित मार्गपर ले चलनेके लिए जैन-साहित्यकारोने छन्द-व्यवस्था निरूपित की है।

१९ वी शतीके उत्तरार्धमे कविवर वृन्दावनदासने १०० प्रकारके छन्दोके बनानेकी विधि तथा छन्दशास्त्रकी आरम्भिक बाते बड़े सुन्दर और सरल ढगसे लिखी है। इतना सरल और सुपाठ्य पिगल-विषयका अन्य ग्रन्थ अबतक हमें नही प्राप्त हो सका है। आरम्भमे ही लघु-गुरुके पहचाननेकी प्रक्रिया बतलाता हुआ कवि कहता है[1]—

लघुकी रेखा सरल (।) है, गुरुकी रेखा वंक (ऽ)।
इहि क्रम सौं गुरु-लघु परखि, पढ़ियौ छन्द निशंक॥
कहुँ कहुँ सुकवि प्रबन्ध महँ, लघुको गुरु कहि देत।
गुरुहूँको लघु कहत हैं, समुझत सुकवि सुचेत॥

आठों गणोंके नाम, स्वामी और फलका निरूपण एक ही सवैयेमें करते हुए बताया है—

मगन तिगुरु भूलच्छि लहावत, नगन तिलघु सुर शुभ फल देत।
भगन आदि गुरु इन्दु सुजस, लघु आदि यगन जल वृद्धि करेत॥
रगन मध्य लघु, अगिन मृत्यु, गुरुमध्य जगन रवि रोग निकेत।
सगन अन्त गुरु, वायु भ्रमन तगनत लघू नव शून्य समेत॥

छन्दोंमें मात्रिक और वार्णिक छन्दोंका विचार अनेक भेद-प्रभेदो सहित विस्तारसे किया गया है। लक्षणोके साथ उदाहरण भी कविने अत्यन्त मनोज्ञ दिये है। अचलधृत छन्दमे १६ वर्ण माने है, इसमे ५ भगण और १ लघु होता है। कवि कहता है—

करम भरम वश भमत जगत नित,
सुर-नर-पशु तन धरत अमित तित।

---

१. सम्पादक जमनालाल जैन साहित्यरत्न और प्रकाशक मान्यखेट जैन संस्थान, मलखेड (निजाम)

सकल अथिर लखि परवश परकृत,
धरत रतन जिन भनित अचलव्रत ॥

इसी प्रकार गीता प्रकरण सतक और दण्डक प्रकरणमे अनेक रमणीय उदाहरण प्रस्तुत किये है। कविकी इस रचनासे छन्दशास्त्रका ज्ञान प्राप्त करनेमे पाठकोको अत्यन्त सहूलियत होगी। अशोकपुष्पमञ्जरी छन्द, जिसमे ३१ वर्ण एक गुरु एक लघुक्रमसे होते है, का कितना सुन्दर और सरस निरूपण किया है।

केवली जिनेशकी प्रभावना अचिंत मित,
कंज पै रहैं सु अन्तरिच्छ पाद कंज री।
भूप और बिडाल मोर व्याल वैर टाल टाल,
हैं जहाँ सुमीन ह्वै निचीत भीति मंजरी ॥
अंग-हीन अंग पाय, हर्ष सो कहा न जाय,
नैनहीन नैन पाय मंजु कंज विंजरी ॥
और प्रातिहार्यकी कथा कहा कहै सुवृन्द,
थोक शोकको हरै अशोकपुष्पमंजरी ॥

इसी प्रकार अनगशेखर, जलहरन, मनहरन आदि छन्दोका सोदाहरण लक्षण १०९ पद्योमें बतलाया गया है। हिन्दी भापामें जैन कवियोंने छन्दो-विपयक अनेक रचनाऍ लिखी हैं, इनमे कई रचनाऍ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

कोप विपयक हिन्दी ग्रन्थोमे महाकवि बनारसीदासकी नाममाला, केसरकीर्त्तिका नामरत्नाकर, विनयसागरकी अनेकार्थ-नाममाला और चेतनविजयकी आतम-बोधनाममाला प्रसिद्ध हैं।

कोप

बनारसीदासकी नाममाला[1] हिन्दी भापाका शब्दभण्डार बढ़ानेके

१. संपादक जुगलकिशोर मुख्तार, प्रकाशक—वीर सेवामन्दिर सरसावा, जि० सहारनपुर।

लिए एक अद्भुत कृति है इसमे ३५० विषयोंके नामोंका दोहोंमे सुन्दर सकलन किया गया है। नामोंमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाके शब्दोंका भी व्यवहार किया गया है। कविने विषयारम्भ करते हुए तीर्थंकरके नाम लिखे हैं—

तीर्थंकर सर्वज्ञ जिन, भवनासन भगवान।
पुरुषोत्तम आगत सुगत, संकर परम सुजान॥
बुद्ध मारजित केवली, वीतराग अरिहंत।
धरमधुरन्धर पारगत, जगदीपक जयवन्त॥

यद्यपि यह कोष धनजय कविकी सस्कृतनाममालासे बहुत कुछ मिलता-जुलता है, पर उसका पद्यानुवाद नहीं है। अनेक नामोंमे कविने अन्य सस्कृत कोषोंकी सहायता ली है तथा अपने शब्दज्ञान-द्वारा अनेक मौलिक उद्भावनाएँ भी की है। हिन्दी भाषाका शब्दभण्डार इसके द्वारा पूरा किया जा सकता है। कविने जिस वस्तुके नामोका उल्लेख किया है, उसका नाम आरम्भमे दे दिया है। कोषकारकी यह शैली आशुबोधगम्य है, तथा इसके द्वारा वस्तु नामोको अवगत करनेमे कोई कठिनाई नहीं होती है। सोनेके नामोका उल्लेख करता हुआ कवि कहता है—

हाटक हेम हिरण्य हरि, कंचन कनक सुवर्ण।

इसी प्रकार रजत, आभूषण, वस्त्र, वन, मूल, पुष्प, सेना, ध्वजा आदि विषयोंकी नामावलीका निरूपण किया गया है। इस कोषमे कुल १७५ दोहे है। कोशमे कविने अचभा, अडोल, अंब, आढ, आठ, धान, खौरि, चकवा, जयवत, जेहर, झण्ड, टाड, डर, तपा, तलार, नरम, पूतली, पेढ आदि देशी शब्दोंका भी प्रयोग किया है।

भैया भगवतीदासकी अनेकार्थनाममाला भी एक पद्यात्मक कोश है, इसमें एक शब्दके अनेकानेक अर्थोंका दोहोंमे सकलन किया गया है। इस कोशमें तीन् अध्याय है, इनमे क्रमशः ६३, १२२ और ७१ दोहे हैं।

यह कोश भी हिन्दी-भाषा-भाषियोंके लिए अत्यन्त उपयोगी है। रचनाशैली सरस और सुन्दर है। कविने स्वयं ही कहा है—"अर्थ अनेक जु नामकी माला ग्रथित विचारि"; नमूनेके लिए गौ और सारंग शब्दके पर्यायवाची शब्द नीचे दिये जाते हैं—

गो धर गो तरु गो दिसा गो किरना आकास ।
गो इन्द्री जल छन्द पुनि गो वानी जन भास ॥

—गो-शब्द

कुरकटु काम कुरंगु कवि कोकु कुंभु कोदंडु ।
कंजरु कमलु कुठारु हलु क्रोधु कोपु पविदंडु ॥
करटु करसु केहरु कमठु कर कोलाहल चोरु ।
कंचनु काकु कपोतु अहि कंवल कलसरु नीरु ॥
खगु नगु चातिगु हंस जलु खरु खोदनउ कुदालु ।
भूधरु भूरुह भुवनु भगु भट्ठु भेकल अरु कालु ॥
मेखु महिषु उत्तिम पुरुषु वृषु पारस पाषानु ।
हिमु जमु ससि सूरजु सलिल वारह अंग वखानु ॥
दीप रूपु कज्जलु पवनु मेघु सवल सव भृंग ।
कवि सु भगौती उच्चई ए कहियत सारंग ॥

—सारंग

परिशिष्ट

परिशीलित ग्रन्थोंके कतिपय प्रमुख ग्रन्थ-रचयिताओंका अति संक्षिप्त परिचय

महाकवि स्वयम्भूदेव—महाकवि स्वयम्भूदेवके पिताका नाम मारुतदेव और माताका नाम पद्मिनी था। इनका समय ईस्वी सन् ७७० है। यह गृहस्थ थे, इनकी दो पत्नियाँ थी। एकका नाम आदित्याम्बा और दूसरीका सामिअव्वा था। पुष्पदन्तके महापुराणके टिप्पणसे अवगत होता है कि यह 'आपुली सघीय' थे। यह पहले धनञ्जयके आश्रित थे, इस समय इन्होंने पउमचरिउकी रचना की थी। इसके पश्चात् इन्होने धवलइयाका आश्रय ग्रहण किया था और इस समय इन्होने 'रिट्ठणेमिचरिउ' का प्रणयन किया।

स्वयम्भूदेवके अनेक पुत्र थे, इनमे त्रिभुवनदेव बहुत प्रसिद्ध और सुयोग्य विद्वान् थे। यह बचपनसे ही पिताके समान कविता करने लगे थे। पउमचरिउमें बताया गया है कि यदि त्रिभुवनदेव न होता तो पिताके काव्योंका, कुल और कवित्वका समुद्धार कौन करता। अन्य व्यक्ति जिस प्रकार पिताके धनका उत्तराधिकार ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार त्रिभुवनने अपने पिताके सुकवित्वका उत्तराधिकार लिया। स्वयम्भूका वंश ही कवि था। इनके पिता मारुतदेव भी अच्छे कवि थे। स्वयम्भूने अपने छन्दशास्त्रमें 'तहाय माउरदेवस्स' कहकर उनके एक दोहेका उदाहरण स्वरूपमें उल्लेख किया है।

अपभ्रंश भाषाके इस महाकविने पउमचरिउ—जैन रामायण और रिट्ठणेमिचरिउ ये दो महाकाव्य एवं पद्धड़िसाबद्ध, पचमीचरिउ ये दो अन्य काव्य ग्रन्थ रचे थे। इनके अतिरिक्त 'स्वयभूच्छन्दस' नामक अपभ्रंशका छन्द ग्रन्थ तथा अपभ्रंशका एक व्याकरण भी लिखा था। यह व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध तो नही है, पर रामायणमे निम्न प्रकार उल्लेख मिलता है।

तावच्चिय य सच्छंदो भमइ अवब्भंस-मच्च-मायंगो ।
जाव ण सयंभु-वायरण-अंकुशो पडइ ॥—पउमचरिउ १-५

महाकवि पुष्पदन्त—अपभ्रंश भाषाके महान् कवि पुष्पदन्त काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम केशवभट्ट और माताका नाम मुग्धादेवी था। इनके माता-पिता पहले शैव थे, फिर जैन हो गये थे और अन्तमें जैन विधिके अनुसार सन्यास लेकर शरीर त्याग किया था। अभिमानमेरु, अभिमानचिह्न, काव्यरत्नाकर, कविकुलतिलक, सरस्वती निलय और कव्वपिसल्ल (काव्यपिशाच) ये इनकी उपाधियाँ थी। इन उपाधियोंसे प्रतीत होता है कि इनका स्वभाव अभिमानी था और यह अप्रतिम प्रतिभाशाली महाकवि थे। यह पहले किसी वीरराय नामक राजा-के आश्रयमे थे। वहाँ इन्होने काव्यरचना भी की थी, परन्तु राजाद्वारा उपेक्षित होनेपर वहाँसे चलकर क्षीणकाय मान्यखेट आये। वहाँ राष्ट्र-कूटनरेश कृष्णराज (तृतीय) के मन्त्री भरतके आश्रममे रहने लगे और यहीं पर महापुराणकी रचना की। इनकी रचनाओंसे अवगत होता है कि यह विदग्ध दार्शनिक, प्रकाण्ड सिद्धान्तमर्मज्ञ और असाधारण प्रतिभाशाली कवि थे। इनका समय ई० सन् ९५९ माना जाता है। इनकी निम्न रचनाएँ है। तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारु या महापुराण महाकाव्य और णयकुमार चरिउ तथा जसहरु चरिउ खण्डकाव्य है।

महाकवि बनारसीदास—जैनसाहित्यमे हिन्दी भाषाका इतना बड़ा अन्य कवि नहीं हुआ। इनका जन्म एक धनी मानी सम्भ्रान्त परिवारमे हुआ था। इनके प्रपितामह जिनदासका साका चलता था, पितामह मूलदास हिन्दी और फारसीके पंडित थे और यह नरवर (मालवा)मे वहाँके मुसलमान नवाबके मोदी होकर गये थे। इनके मातामह मदन-सिंह चिनालिया जौनपुरके प्रसिद्ध जौहरी थे और पिता खड्गसेन कुछ दिनोंतक बगालके सुल्तान मोदीखाँके पोतदार रहे थे। इनका जन्म जौनपुरमे माघ सुदी ११ सवत् १६४३ मे हुआ था। यह श्रीमाल वैश्य

थे। यह बड़े ही प्रतिभाशाली सुधारक कवि थे। शिक्षा सामान्य प्राप्त की थी, पर अद्‌भुत प्रतिभा होनेके कारण यह अच्छे कवि थे। इन्होने चौदह वर्षकी अवस्थामें एक हजार दोहा चौपाइयोंका नवरस नामक ग्रन्थ बनाया था, जिसे आगे चलकर, इस भयसे कि संसार पथभ्रष्ट न हो, गोमतीमें प्रवाहित कर दिया था।

इनके पिता मूलतः आगरा-निवासी ही थे तथा इन्हें भी बहुत दिनों तक आगरा रहना पड़ा था। उस समय आगरा जैनविद्वानोंका केन्द्र था। इनके सहयोगियोंमें पं० रामचन्द्रजी, चतुर्भुज वैरागी, भगवती-दासजी, धर्मदासजी, कुँवरपालजी और जगजीवनरामजी विशेष उल्लेख योग्य हैं। ये सभी कवि थे। महाकवि बनारसीदासका सन्तकवि सुन्दर-दाससे सम्पर्क था। बताया गया है—"प्रसिद्ध जैनकवि बनारसीदासके साथ सुन्दरदासकी मैत्री थी। सुन्दरदास जब आगरे गये थे तब बनारसी-दासके साथ सम्पर्क हुआ था। बनारसीदासजी सुन्दरदासकी योग्यता, कविता और यौगिक चमत्कारोंसे मुग्ध हो गये थे। तभी इतनी श्लाघायुक्त कंठसे उन्होंने प्रशंसा की थी। परन्तु वैसे ही त्यागी और मेधावी बनारसी-दासजी भी थे। उनके गुणोंसे सुन्दरदासजी प्रभावित हो गये, इसीसे वैसी अच्छी प्रशंसा उन्होंने भी की थी।"

महाकवि बनारसीदासका सम्पर्क महाकवि तुलसीदासके साथ भी था। एक किंवदन्तीमें कहा गया है कि कवि तुलसीदासने अपनी रामायण बनारसीदासको देखनेके लिए दी थी। जब मथुरासे लौटकर तुलसीदास आगरा आये तो बनारसीदासने रामायणपर अपनी सम्मति "विराजै रामायण घट माहीं। मर्मी होय मर्म सो जानै मूरख समझै नाहीं।" इत्यादि पद्यमें लिखकर दी थी। कहते है इस सम्मतिसे प्रसन्न होकर ही तुलसीदासने कुछ पद्य भगवान् पार्श्वनाथकी स्तुतिमें लिखे है। ये पद्य शिवनन्दन द्वारा लिखित गोस्वामीजीकी जीवनीमें प्रकाशित हैं। इनकी निम्न रचनाएँ हैं—

१. नाममाला—एक सौ पचहत्तर दोहोंका छोटा-सा शब्दकोष है। इसकी स० १६७० में जौनपुरमें रचना की थी।

२. नाटक समयसार—यह कविवरकी सबसे प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण रचना है। इसकी रचना संवत् १६९३ मे आगरामें की गयी थी।

३. बनारसी विलास—इसमें ५७ फुटकर रचनाएँ संग्रहीत हैं। इसका संकलन संवत् १७०१ में पं० जगजीवनने किया था।

४. अर्द्धकथानक—इसमें कविने अपनी आत्मकथा लिखी है। इसमें संवत् १६९८ तककी सभी घटनाएँ दी गयी हैं।

भैया भगवतीदास—यह आगराके निवासी थे। ओसवाल जैनी और कटरिया गोत्रके थे। इनके पिताका नाम लालजी था और दशरथ साहू इनके पितामह थे। इनके जन्मसंवत् एवं मृत्युसंवत्के सम्बन्धमें कुछ पता नहीं है। हॉ इनकी रचनाओंमे सवत् १७३१ से १७५५ तकका उल्लेख मिलता है। वि० सं० १७११में हीरानन्दजीने पंचास्तिकायका अनुवाद किया था, उसमे उन्होंने आगरामें एक भगवतीदास नामक व्यक्तिके होनेका उल्लेख किया है। सम्भवतः भैया भगवतीदास ही उक्त व्यक्ति थे। इन्होंने कविता मे अपना उल्लेख भैया, भविक और दासकिशोर उपनामोंसे किया है। इनकी समस्त रचनाओंका संग्रह ब्रह्मविलासके नामसे प्रकाशित है। यह बनारसीदासके समान अध्यात्मरसिक कवि थे। इनकी कवितामें प्रसादगुण एवं अलंकार सर्वत्र पाये जाते हैं। उर्दू और गुजराती भाषाका पुट भी इनकी रचनाओंमे विद्यमान है। थोड़े शब्दोंमें गहन अर्थ और परिष्कृत भावनाओंका निरुपण करना इनकी कविताकी प्रमुख विशेषता है। सरसता और सरलता इनके काव्यका जीवन है।

ब्रह्मगुलाल—यह पद्मावती पुरवाल जातिके थे। यह चंदवार (फिरोजाबाद, जिला आगरा)के पास टापू नामक ग्रामके निवासी थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ कृपणजगावनचरित्र है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिसे अवगत होता है कि कविवर ब्रह्मगुलालजी भट्टारक जगभूषणके शिष्य थे।

टापू गाँवके राजा कीरतसिह थे, यहीपर धर्मदासजीके कुलमे मथुरामल्ल थे। यह ब्रह्मचर्यका पालन करनेमें प्रसिद्ध थे । कविने इन्हींके उपदेशसे सगुण मार्गका निरूपण करनेके लिए सवत् १६७१मे इस ग्रन्थकी रचना की थी। यह अच्छे कवि थे। भाषापर इनका अच्छा अधिकार था।

आनन्दघन या घनानन्द—यह श्वेताम्बर सम्प्रदायके प्रसिद्ध सन्त कवि हैं। यह उपाध्याय यशोविजयजीके समकालीन थे। यशोविजयका जन्म सवत् १६८० बताया जाता है, अतः इनका काल भी वही है। हिन्दीमें इनकी 'आनन्दघनबहत्तरी' नामक कविता उपलब्ध है, यह रामचन्द्र काव्यमालामें प्रकाशित है। यह आध्यात्मिक कवि थे। इनकी रचनाओंमे समतारस और शान्तिरसकी धारा अवश्य मिलती है। रचनाएँ हृदयको स्पर्श करती हैं।

यशोविजय—यह भी श्वेताम्बर सम्प्रदायके प्रसिद्ध आचार्य है। इनका जन्म सवत् १६८० और मृत्यु सवत् १७४५ के आसपास हुई थी। यह गुजरातके डभोई नामक नगरके निवासी थे। यह नयविजयजीके शिष्य थे। सस्कृत, प्राकृत, गुजराती और हिन्दी भाषामें कविता करते थे। संस्कृत भाषामे रचे गये इनके अनेक ग्रन्थ है। यह गुजराती थे, पर विद्याभ्यासके सिलसिलेमें इन्हें काशी भी रहना पड़ा था। इसी कारण यह हिन्दीमे भी उत्तम कविता करते थे। इनके ७५ पदोका एक सग्रह 'जसविलास'के नामसे प्रकाशित है। इनकी कवितामें आध्यात्मिक भावोंकी बहुलता है। भाषा आडम्बर शून्य है, पर भाव ऊचे है।

खेमचन्द—यह तापगच्छकी चन्द्रशाखाके पण्डित थे। इनके गुरुका नाम मुक्तिचन्द्र था। आपने नागर देशमे संवत् १७६१ मे 'गुणमाला चौपई' अथवा 'गजसिहगुणमालचरित'की रचना की है। यह ग्रन्थ अभी-तक अप्रकाशित है। इसकी जो प्रति जैनसिद्धान्त भवन आरामे सुरक्षित उसका लिपिकाल सं० १७८८ है। इनकी कवितामे वर्णनोकी विशेषता है। भाषापर गुजरातीका बहुत बडा प्रभाव है। इनकी अन्य रचनाएँ अज्ञात है।

भूधरदास—कविवर भूधरदास आगराके निवासी थे। इनकी जाति खण्डेलवाल थी। इनका समय अनुमानतः १७ वीं शतीका अन्तिम भाग या १८ वीं शतीका प्रारम्भिक भाग है। इनके द्वारा रचित पार्श्वपुराणकी प्रतिका लिपिकाल १७५४ है, अतः यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि इनका समय १८ वीं शतीका पूर्वार्द्ध ही सम्भव है। इनकी कविता उच्चकोटिकी होती है। श्री प्रेमीजीने इनकी कविताके सम्बन्धमें लिखा है—"हिन्दीके जैन साहित्यमें पार्श्वपुराण ही एक ऐसा चरित ग्रन्थ है, जिसकी रचना उच्चश्रेणीकी है, जो वास्तवमें पढ़ने योग्य है और जो किसी संस्कृत प्राकृत ग्रन्थका अनुवाद करके नहीं, किन्तु स्वतन्त्र रूपमें लिखा गया है। इनकी सभी रचनाओंमें कवित्व है। निम्न तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—१—पार्श्वपुराण (महाकाव्य)—इसमें भगवान् पार्श्वनाथका जीवन वर्णित है। २—जैनशतक—यह नीतिविषयक सुन्दर रचना है। इसमें १०७ कवित्त, सवैया, दोहा और छप्पय हैं। ३—पदसंग्रह—इसमें ८० पदोंका संकलन है।

द्यानतराय—यह कवि आगराके निवासी थे। इनका जन्म अग्रवाल जातिके गोयल गोत्रमें हुआ था। इनके पूर्वज लालपुरसे आकर आगरामें बस गये थे। इनके पितामहका नाम वीरदास और पिताका नाम श्यामदास था। इनका जन्म संवत् १७३३ में हुआ था और विवाह संवत् १७४८ मे हुआ था। विवाहके समय इनकी अवस्था १५ वर्षकी थी। उस समय आगरामें मानसिंहजीकी धर्मशैली थी। कवि द्यानतरायने उससे लाभ उठाया था। कविको प० बिहारीदास और प० मानसिंहके धर्मोपदेशसे जैनधर्मके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई थी। इन्होंने संवत् १७७७ मे श्री सम्मेदशिखरकी यात्रा की थी। इनका महान् ग्रन्थ धर्मविलासके नामसे प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थमे इनकी समस्त कविताएँ संगृहीत हैं, यह सकलन संवत् १७८० मे कविने स्वयं किया है। इस सकलन मे ३३३ पद संग्रहीत हैं, जो स्वयं एक बृहद्काय ग्रन्थका रूप ले सकते है।

पूजाओंके अतिरिक्त ४५ विषयोंपर इनकी फुटकर कविताएँ हैं। इनकी कविताएँ नीति और उपदेशात्मक अधिक हैं। भाषापर उर्दूका प्रभाव है। विचार और भावनाएँ सुलझी हुई हैं। ससारका जीता-जागता चित्र देखिए—

रुजगार बनै नाहिं धन तौ न घर माहिं
खानेकी फिकर बहु नारि चाहै गहना।
देनेवाले फिरि जाहिं मिलै तो उधार नाहिं,
साझी मिलैं चोर धन आवै नाहिं लहना।

कोऊ पूत ज्वारी भयौ घर माहिं सुत थयौ,
एक पूत मरि गयौ ताको दुःख सहना।
पुत्री वर जोग भई व्याही सुता जम लई,
एते दुःख सुख जानै तिसे कहा कहना॥

वृन्दावन—कवि वृन्दावनका जन्म शाहाबाद जिलेके बारा नामक गाँवमे सवत् १८४८ मे हुआ था। आप गोयलगोत्रीय अग्रवाल थे। कविके वंशधर बारा छोड़कर काशीमे आकर रहने लगे थे। कविके पिताका नाम धर्मचन्द्र था। १२ वर्षकी अवस्थामे वृन्दावन अपने पिताके साथ काशी आये थे। काशीमे यह लोग बाबर शहीदकी गलीमें रहते थे।

वृन्दावनकी माताका नाम सिताबी और स्त्रीका नाम रुक्मिणी था। इनकी पत्नी बड़ी धर्मात्मा और पतिव्रता थी। इनकी ससुराल भी काशीके ठठेरी बाजारमें थी। इनके श्वसुर एक बड़े भारी धनिक थे। इनके यहाँ उस समय टकसालका काम होता था। एक दिन एक किरानी अंग्रेज इनके श्वसुरकी टकसाल देखनेके लिए आया। वृन्दावन भी उस समय वहीं उपस्थित थे। जब उस किरानी अंग्रेजने इनके श्वसुरसे कहा—"हम तुम्हारा कारखाना देखना चाहते हैं, कि उसमें कैसे सिक्के तैयार होते हैं। वृन्दावनने उस अंग्रेज किरानीको फटकार दिया और उसे टकसाल नहीं दिखलायी। वह अंग्रेज नाराज होता हुआ वहाँसे चला गया।

दैवयोगसे कुछ दिनोंके उपरान्त वही अंग्रेज किरानी काशीका कलक्टर होकर आया। उस समय वृन्दावन सरकारी खजाचीके पदपर आसीन थे। साहब बहादुरने प्रथम साक्षात्कारके अनन्तर ही इन्हें पहचान लिया और मनमे बदला लेनेकी बलवती भावना जाग्रत हुई। यद्यपि कविवर अपना कार्य बड़ी ईमानदारी, सचाई और कुशलतासे सम्पन्न

करते थे, पर जब अफसर ही विरोधी बन जाय, तब कितने दिनोंतक कोई बच सकता है। आखिरकार एक जाल बनाकर साहबने इन्हें तीन वर्षकी जेलकी सजा दे दी। इन्हें शान्तिपूर्वक उस अंग्रेजके अत्याचारोको सहना पड़ा।

कुछ दिनके उपरान्त एक दिन प्रातःकाल ही कलक्टर साहब जेलका निरीक्षण करने गये। वहाँ उन्होने कविको जेलकी एक कोठरीमे पद्मासन लगाये निम्न स्तुति पढते हुए देखा।

'हे दीनबन्धु श्रीपति करुणानिधानजी।
अब मेरी व्यथा क्यों न हरो बार क्या लगी॥'

इस स्तुतिको बनाते जाते थे और भैरवीमे गाते जाते थे। कविता करनेकी इनमे अपूर्व शक्ति थी, जिनेन्द्रदेवके ध्यानमें मग्न होकर धारा प्रवाह कविता कर सकते थे। अतएव सदा इनके साथ दो लेखक रहते थे, जो इनकी कविताएँ लिपिबद्ध किया करते थे। परन्तु जेलकी कोठरीमे अकेले ही ध्यान मग्न होकर भगवान्‌का चिन्तन करते हुए गानेमें लीन थे। इनकी आँखोसे आँसुओकी धारा प्रवाहित हो रही थी। साहब बहुत देरतक इनकी इस दशाको देखता रहा। उसने "खजाची बाबू! खजाची बाबू" कहकर कई बार पुकारा; पर कविका ध्यान नही टूटा। निदान कलक्टर साहब अपने आफिसको लौट गये। थोड़ी देरमे एक सिपाहीके द्वारा इनको बुलवाया और पूछा "तुम क्या गाटा और रोटा था।" वृन्दावनने उत्तर दिया—'अपने भगवान्‌से तुम्हारे अत्याचारकी प्रार्थना करता था। साहबके अनुरोधसे वृन्दावनने पुनः "हे दीनबन्धु श्रीपति" विनती उन्हें सुनायी और इसका अर्थ भी समझाया। साहब बहुत प्रसन्न हुआ और इस घटनाके तीन दिनके बाद ही कारागृहसे इन्हें मुक्त कर दिया गया। तभीसे उक्त विनती संकटमोचनस्तोत्रके नामसे प्रसिद्ध हो गयी है। इनके कारागृहकी घटनाका समर्थन इनकी कवितासे भी होता है।

"श्रीपति मोहि जान जन अपनो,
हरो विघन दुख दारिद जेल।"

कहा जाता है कि राजघाटपर फुटही कोठीमें एक गार्डन साहब सौदागर रहते थे। उनकी एक बड़ी भारी दुकान थी। आपने कुछ दिन तक इस दुकानकी मैनेजरीका भी कार्य किया था। यह अनवरत कविता रचनेमे लीन रहते थे। जब यह जिनमन्दिरमें दर्शन करने जाते तो प्रति-

दिन एक विनती या स्तुति रचकर ही भगवान्‌के दर्शन करते। इनके साथ देवीदास नामक व्यक्ति रहते थे। इन्हें पद्मावती देवीका इष्ट था। यह शरीरसे भी बड़े बली थे। बड़े-बड़े पहलवान भी इनसे भयभीत रहते थे। इनके जीवनमे अनेक चमत्कारी घटनाएँ घटी हैं। इनके दो पुत्र थे अजितदास और शिखरचद। अजितदासका विवाह आरामे बाबू मुन्नीलालजीकी सुपुत्रीसे हुआ था। अतः अजितदासजी आरा ही आकर बस गये। यह भी पिताके समान कवि थे। इनकी रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। इनके द्वारा रचित निम्न ग्रन्थ है—प्रवचनसार, तीस चौबीसी पाठ, चौबीसी पाठ, छन्दशतक, अर्हत्पासाकेवली और वृन्दावनविलास (फुटकर कविताओका सकलन) इनके द्वारा रचित एक जैन रामायण भी है जिसकी अधूरी प्रति आराके एक सज्जनके पास है।

बुधजन—इनका पूरा नाम विरधीचन्द था। यह जयपुरके निवासी खण्डेलवाल जैन थे। यह अच्छे कवि थे। इनका समय अनुमानतः उन्नीसवीं शताब्दीका मध्यभाग है। कविता करनेकी अच्छी प्रतिभा थी। इनके द्वारा विरचित निम्न चार ग्रन्थ उपलब्ध हैं १—तत्त्वार्थबोध (१८७१), २—बुधजनसतसई (१८८१), पञ्चास्तिकाय (१८९१) और बुधजनविलास (१८९२)। इनकी भाषापर मारवाड़ीका प्रभाव है। किन्तु पदोंकी भाषा तथा बुधजन सतसईकी भाषा हिन्दी है।

मनरंग—इनका पूरा नाम मनरगलाल है। यह कन्नौजके निवासी पल्लीवाल थे। इनके पिताका नाम कन्नौजीलाल और माताका नाम देवकी था। कन्नौजमे गोपालदासजी नामक एक धर्मात्मा सज्जन निवास करते थे। इनके अनुरोधसे ही इन्होने चौबीसीपाठकी रचना की थी। इस प्रसिद्ध पाठका रचनाकाल सवत् १८५७ है। इसके अतिरिक्त इनके ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं—नेमिचन्द्रिका, सप्तव्यसन चरित्र, सप्तर्षि पूजा एव शिखरसम्मेदाचलमाहात्म्य। शिखरसम्मेदाचलमाहात्म्यका रचनाकाल सवत् १८८९ है।

अनुक्रमणिका

ग्रन्थकार एवं कवि

ग्रन्थोंकी अनुक्रमणिका

ज्ञानपीठके सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

ज्ञानपीठके महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रकाशन

पं० सुमेरचन्द्र दिवाकर

महाबन्ध [१] १२)

जैन शासन [द्वि० स०] ३)

पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

महाबन्ध [२,३,४] ३३)

सर्वार्थसिद्धि १२)

पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

तत्त्वार्थवृत्ति १६)

तत्त्वार्थराजवार्तिक [१] १२)

न्यायविनिश्चय विवरण [भाग १-२] ३०)

पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

आदिपुराण [भाग १] १०)

आदिपुराण [भाग २] १०)

उत्तरपुराण १०)

धर्मशर्माभ्युदय ३)

पं० हीरालाल शास्त्री, न्यायतीर्थ

वसुनन्दि-श्रावकाचार ५)

जिनसहस्रनाम ४)

पं० राजकुमार जैन साहित्याचार्य

मदनपराजय ८)

अध्यात्म-पदावली ४॥)

पं० नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि ४)

पं० के० भुजवली शास्त्री

कन्नडप्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थसूची १३)

प्रो० हरिदामोदर वेलणकर

सभाष्य रत्नमंजूषा २)

पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी

नाममाला [सभाष्य] ३॥)

प्रो० ए० चक्रवर्ती

समयसार [अंग्रेजी] ८)

थिरुकुरल [तामिल लिपि] ५)

प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी

करलक्खण [द्वि० स०] ॥)

श्री भिक्षु धर्मरक्षित

जातकट्ठकथा [पाली] ९)

श्री कामताप्रसाद जैन

हिन्दी जैनसाहित्यका संक्षिप्त इतिहास २॥≈)

श्रीमती रमारानी जैन

आधुनिक जैनकवि ३॥)

पं० गुलाबचन्द्र व्याकरणाचार्य

पुराणसारसंग्रह [भाग १-२] ४)

पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल

कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न २)

श्री वीरेन्द्रकुमार एम० ए०

मुक्तिदूत [उपन्यास] ५)